Faith of Islam

The Reverend Canon Edward Sell, D.D

अक़ाईद-ए-इस्लामिया

अल्लामा पादरी केनन एडवर्ड सेल साहब

عقائدِ اسلامیہ

علامہ پادری کینن ایڈورڈ سل صاحب

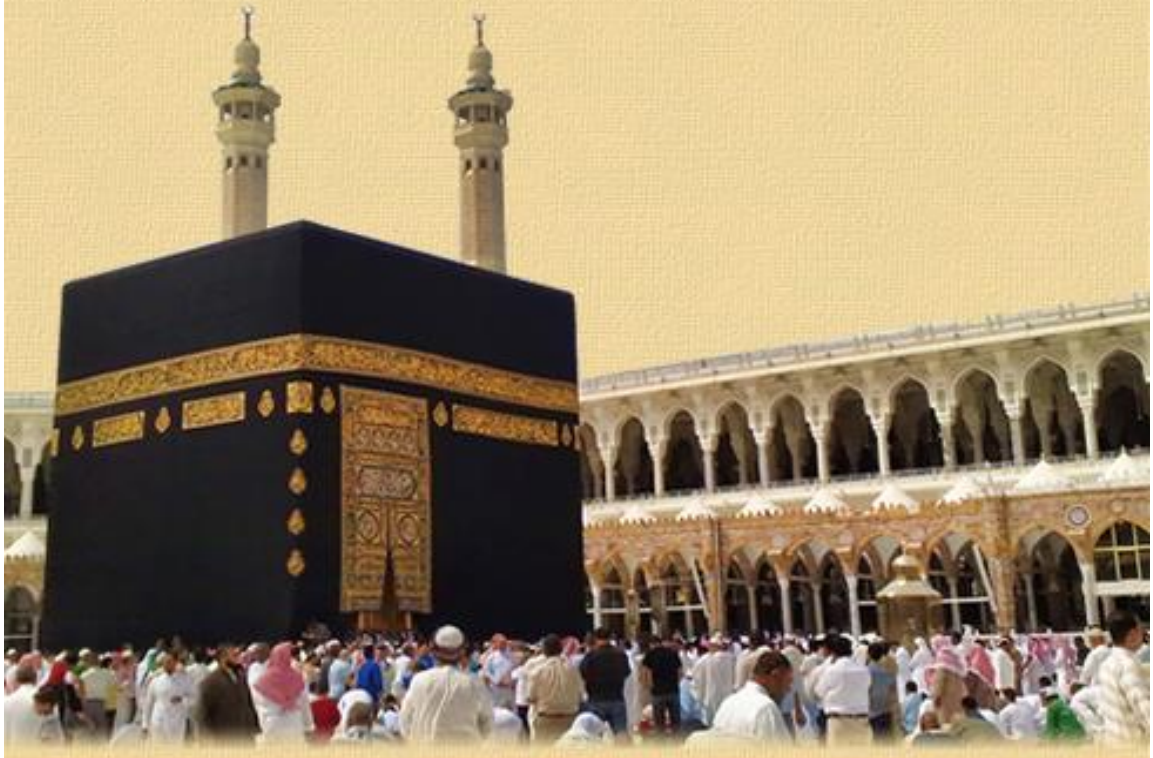

1898

Aqaid-i-Islamiya

The Faith of Islam

BY THE

REV. CANON EDWARD SELL, D.D., M.R.A.S.

Translated By

Maulavi Muhammad Shafaqatu'llah

Supervised By the

REV.T.J.SCOTT, D.D

अक़ाइद-ए-इस्लामीया

अल्लामा पादरी कैनन ऐडवर्ड सेल साहब

जिसको रेवरनड ऐडवर्ड सेल साहब मद्रास यूनीवर्सिटी के फ़ैलो की अंग्रेज़ी किताब फ़ेथ आफ़ इस्लाम से जनाब पादरी टी॰ जे॰ इस्काट साहब (एम॰ ए॰ डी॰ डी॰) प्रिंसिपल मदरिसा इल्म इलाही बरेली ने बाइआनत मौलवी मुहम्मद शफ़क़त उल्लाह साहब के तर्जुमा किया।

लखनऊ
मीथो डेस्ट पब्लिशिंग हाऊस में बाएहतमाम पादरी डी॰ एल॰ थोबर नून साहब
छपा 1898 ई॰

REV. CANON EDWARD SELL, D.D., M.R.A.S.

24 January 1839 – 15 February 1932
He was an Anglican orientalist, writer and missionary in India.

फ़ेहरिस्ते मज़मीन

	मज़मून	सफ़ा
पहला बाब	**उसूल इस्लाम** क़ुरआन, वह्यी, क़ुरआन का मोअजिज़ा होना, तर्तीब, उस्मान का क़ुरआन को जमा करना, सुन्नत, वक़्त सुन्नत के, हदीस, बिद्दत, शीयों की हदीसें, इज्मा (इत्तिफ़ाक़ राय (फ़िक़्ह) मुसलमान मुज्तहिदीन का किसी अम्र शरई पर मुत्तफ़िक़ हो जाना), इज्तिहाद (जद्द-ओ-जहद करना, फ़िक़्ह इस्लामी की इस्तिलाह में क़ुरआन व हदीस और इज्मा पर क़ियास कर के शरई मसाइल का हल दर्याफ़्त करने की कोशिश करना), चार बड़े इमाम अबू हनीफा, मालिक (हज़रत इमाम मालिक जिनके पैरौ मालकी कहलाते हैं) शाफ़ई (अहले सुन्नत वल जमाअत के चार इमामों में से एक इमाम का नाम), हम्बल (हज़रत इमाम हम्बल जिनके पैरौ हम्बली कहलाते हैं), क़ियास जिसे क़दीम मुज्तहिदों ने क़ायम किया, इस्लाम की सख़्त क़ैदें, ज़मीमा बाब अव्वल दर-बाब इज्तिहाद,	
दूसरा बाब	**तफ़्सीर व तशरीह क़ुरआन व अहादीस** इल्हाम, हफ़्त क़रआत, मुफ़स्सिर का काम, क़ुरआन के अल्फ़ाज़ और आयात इन अल्फ़ाज़ का इस्तिमाल, इस्तिख़्राज दलाईल अज़ क़ुरआन, क़ुरआन की हिसस नासिख़ व मंसूख़, हदीस जमा करना अहादीस के, अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्में) अहादीस,	
तीसरा बाब	**मुसलमानों के फ़िरक़े** शीया, इमामत, ख़ारिजी, नूर मुहम्मदी, इमामिया, इस्माइलिया, ग़ैरमहद, दाइरिया, महमूदियह, ख़िलाफ़त, सूफ़ी, नज़्म फ़ारसी, दरवेश, उम्र ख़य्याम, वहाबी, उनका आग़ाज़, हिन्दुस्तान में वहाबियों का फैलना, उनके मसाइल, उनका असर, ज़मीमा बाब सोम दर-बाब वहाबीयाँ,	
चौथा बाब	**अक़ाइद-ए-इस्लाम** ईमान, ख़ुदा, सिफ़ात इलाहीया, बह्स सिफ़ात इलाहीया	

	पर मोतज़िला (रोशन ख़्याल मुसलमानों का एक फ़िर्क़ा जो नक़्ल की बजाय अक़्ल पर ज़ोर देता था, यूनानी फ़लसफ़े से मुतास्सिर था और अक़लियत पसंद कहलाता था) की इब्तिदा, सिफ़ातीया, मुशाबहि, असमा-ए-इलाही, क़ुरआन का वजूद मलाइका, किरामन क़ातबीन, हारूत मारूत, मुन्किर नकीर, जिन्न सहाइफ़, तंसीख़, तहरीफ़, अम्बिया, उनके मुरातिब, नबियों का इल्हाम, नबी व रसूल, इस्मते अम्बिया, अम्बिया-उलुल-अज़िम, मोअजज़ात, मेअराज, क़ियामत, अदालत, सूर, नुज़ूल कुतुब, आमाल का तराज़ू, पुल सिरात, अल-आराफ़, अल्बर ज़ख़, मुहम्मद अरबी की शफ़ाअत, बहिश्त, दोज़ख़ क़द्र ख़ैर व शर, जबरीया, कुदरिया, अशअरी, ख़ुदमुख़तारी, अल-हाद (बेदीन, मुल्हिद), ज़मीमा बाब चहारुम, फ़ल्सफ़ा इस्लाम,	
पांचवां बाब	**अहकाम-ए-इस्लाम** फ़र्ज़, वाजिब, सुन्नत, मुस्तजब, मुबाह, हराम, तशह्हुद, सलवात, वुज़ू, ग़ुस्ल, तयम्मुम, नमाज़, फ़र्ज़, सुन्नत, वित्र व नफील, नमाज़ के औक़ात, जुमा की नमाज़, ख़ुत्बा, सफ़र और जंग की नमाज़, नमाज़ रमज़ान, क़हत व गहन (गरहन) की नमाज़, नमाज़ जनाज़ा, रसूम और दुआएं, रोज़े रखना, रोज़े के अय्याम और इस की असलीयत, ज़कात, निसाब, मिक़दार उस माल की जो बतौर ख़ैरात दिया जाये, ज़कात के लेने वाले, तुज (दस्त-बरदार, किनारा-कशी), अहकाम फ़र्ज़ व सुन्नत व वाजिब व मुस्तहब, मुताल्लिक़ हज, अय्याम हज, हाजियों का मक्का में दाख़िल होना, तवाफ़, रसूम हज के, ख़ातिमा हज का, हईयत मजमूई इस्लाम की, ज़मीमा बाब पंजुम, फ़त्वा दरबाब नमाज़,	
छटा बाब	**मुसलमानों के तहवार और रोज़े** मुहर्रम, आशूरा ख़ाना, मर्सिया, वाक़िया ख़वाँ, इल्म, आशूरा के रसोम, अली, हसन और हुसैन की फ़ातिहा, आख़िरी चहार शंबा, बारह वफ़ात, मीलाद शरीफ़, आसार	

	शरीफ़, शब्ब-ए-बरात, रमज़ान, ईद-उल-फित्र, एतिकाफ़, सदक़ा, ईद-उल-फित्र का ख़ुत्बा, बक़र ईद यानी ईद-उल-अज़हा, क़ुर्बानी, मदार का मेला, साला मसऊद ग़ाज़ी का मेला, ख़्वाजा ख़िज़र का मेला, पिरो दस्तगीर साहब, क़ादिर वली साहब का मेला, इस्तिलाहात	

दीबाचा

इस किताब के मज़ामीन की थोड़ी सी तफ़्सील आग़ाज़ किताब में ज़रूरी है। हमारी ग़रज़ इस की तालीफ़ से मुहम्मद अरबी की वक़ाऐ उम्री या जो मज़्हब उन्होंने निकाला उस के फैलने का ज़िक्र नहीं है। इंग्लिस्तान, फ़्रांस और जर्मनी के लायक़ मुसन्निफ़ बहुत कुछ इस बारे में लिख चुके हैं। इस वास्ते कोई नई बात इस मज़्मून पर नहीं बढ़ा सकता था। मज़्हब के फैलने का ज़िक्र भी तरह तरह से लोगों ने किया है। हाँ अलबत्ता मुहम्मद अरबी की ताअलीमात से जो मज़ाहिब बन गए हैं और इस का असर लोगों पर जो कुछ हुआ है, इस का जानना मेरे नज़्दीक इस ज़माने में बहुत ज़रूरी है। इस वास्ते मैंने मोअतबर किताबों से और नीज़ रसूम मुरव्वजा से अव्वल ये बताना चाहा कि दीन इस्लाम दरअस्ल क्या है और इस का असर लोगों और क़ौमों पर कैसा है। दूसरा जो कुछ इस वक़्त तक इस्लाम की निस्बत लिखा गया है या तो महज़ तास्सुब से या बतौर राय ज़नी के लिखा गया है। इस का ठीक हाल दर्याफ़्त करने के वास्ते इस के उलूम से वाक़िफ़ होना और इन लोगों में रहना ज़रूर है मैंने बहुक्म व कामियत जो कुछ तहक़ीक़ हुआ, लिखा है और जो कुछ यूरोप के मुसन्निफ़ों ने अख़ज़ किया है वो सिर्फ़ बितरीक़ तौज़ीह के है। मैंने बहमा जहत मुसलमान मुसन्निफ़ों से लिया है बल्कि ऐसे शाहिदों से जो हनूज़ ज़िंदा हैं मैंने तहक़ीक़ कर लिया है कि जिन मसाइल और उसूल को मैं मुरव्वज इस्लाम बताता हूँ। अहले इस्लाम लोगों का उन पर अमल है और जैसा अवाइल ज़मानों में इस का असर था, वही अब भी है। पस इस तरह से अज़ अव्वल ता आख़िर जो कुछ मुझे तहक़ीक़ हुआ है, क़लम-बंद किया है और जहां तक मुम्किन हुआ गुज़श्ता को हाल से साबित किया।

मुसलमानों की किताबों से और उन रसूम से जो बिलफ़अल मुरव्वज हैं जो कुछ नतीजा मैंने निकाला है, वही है जो मुझे हक़ और सही मालूम हुआ है। फिर भी बख़ुशी इस मौक़े पर ये बयान करता हूँ कि मैंने बहुतेरे मुसलमानों को उनके मज़्हब से भी बढ़कर पाया और ऐसे लोगों को देखा जिनसे दोस्ती कर के दिल ख़ुश होता है और बहुतेरी ख़ूबियां उनमें ऐसी पाता हूँ जिनके सबब से उनकी ताज़ीम करता हूँ और दोस्त जानता हूँ। मैं

इस मज़्हब की निस्बत राय ज़नी करता हूँ, ये नहीं है कि इस मज़्हब के किसी आदमी की निस्बत लिखता हूँ। हिन्दुस्तान में बहुतेरे रोशन ज़मीर मुसलमान हैं जो हिन्दुस्तानी जमाअत की ज़ीनत और मुल्क के कार-आमद मुलाज़िम और ऐसे लोग हैं जिनकी सरगर्मी जमाअत की इस्लाह में क़ाबिल-ए-तारीफ़ है। यहां तक तो अलबत्ता उनकी इज़्ज़त की बात है, लेकिन ऐसे लोग तादाद में बहुत थोड़े हैं बल्कि वो दीनदार मुसलमानों में भी नहीं शुमार किए जाते। ना में यक़ीन करता हूँ कि इस तरह के लोग और मुसलमान मुल्क के आलिम फ़ाज़िलों में हूँ। दहरियत की मौज जो यूरोप में पहुंची है उसने उन मुल्कों को भी ख़ाली नहीं छोड़ा है। हिंदू और मुसलमान सब पर इस का असर पहुंचा है। चंद आदमी जो आज़ादाना कलाम से अपनी राएं (राय) अंग्रेज़ों के सामने ज़ाहिर किया करते हैं उनसे हिंदू या मुसलमान के मज़्हब पर क़ियास करना दर-हक़ीक़त धोके में पड़ना है। हिन्दुस्तान में पहुंच कर इस्लाम में ग़ैर लोगों की और ग़ैर मज़्हबों की बातें भी आ गई हैं। अगरचे मज़्हब के ईमान व दीन में कुछ तग़य्युर नहीं हो सकता और ऐसा ही है, जैसा कि चौथे और पांचवें बाब में बयान हुआ है। अगर हिन्दुस्तान पहुंच कर इस्लाम की असली तेज़ी कुछ कम हो गई है तो ये भी हुआ कि बहुतेरी बुत-परस्ती की रसूम भी दाख़िल हो गई हैं जिनके ख़िलाफ़ वहाबी दावा करते हैं। बहुतेरे मुसलमान तो बुत-परस्ती में ऐसे ही मुब्तला हैं जैसे उनके हिंदू हमसाया में फिर भी बहुतेरे हिन्दुस्तानी मुसलमानों की मुरव्वत, आदमियत, ख़ुश व ज़ई और इल्मीयत अपने मुल्क के ढंग पर ऐसी है जिससे देखने वाले ख़ुश होते हैं, फ़क़त।

राक़िम

ऐडवर्ड सेल साहब

बाब अव्वल

उसूल इस्लाम

अहले इस्लाम का अक़ीदा यानी कलिमा لا إله إلا الله محمد رسول الله के मअनी हैं "सिवाए ख़ुदा के कोई दूसरा माबूद नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं" बहुत मुख़्तसर है। मगर इसी एक कलिमा से सैंकड़ों बातें निकलती हैं और ये कहना कि क़ुरआन तमाम अहकाम दीनी व दुनयवी का मजमूआ है और ये कि क़ुरआन में इस्लाम की कुल बातें मौजूद हैं यानी क़ुरआन ना सिर्फ अहकाम दीन की किताब है बल्कि मुसलमान जो कुछ करते हैं इसी के मुवाफ़िक़ करते हैं और मुहम्मद अरबी के मज़्हब की कुल बातें इस में मुंदरज हैं या ये कि इस्लाम की पूरी बशारत क़ुरआन में है, ना सिर्फ ग़लत है बल्कि सरासर ख़िलाफ़ नफ़्स-उल-अम्र है। मुजर्रिद क़ुरआन पर तमाम मुसलमानों का ईमान व अमल तो दरकिनार है। ऐसा एक फ़िर्क़ा भी नहीं जिसका ईमान व चलन सिर्फ क़ुरआन पर हो। हाँ ये सच्च है कि मुसलमानों में ऐसा कोई फ़िर्क़ा नहीं जिसे क़ुरआन की हक़ीक़त पर बह्स या उस की सेहत पर कुछ शुब्हा हो। जो कुछ अहकाम इस में हैं वो सब पर फ़ौक़ियत रखते हैं बल्कि तफ़ासीर क़ुरआन जो इल्म फ़िक़्ह और ईलाहीयत का माख़ज़ हैं अक्सर अहादीस पर मबनी हैं। सुन्नी मुसलमानों में ईमान के उसूल चार हैं। क़ुरआन, सुन्नत, इज्मा और क़ियास और इस बात से मुसलमानों के सब फ़िर्क़े सुन्नियों से इस बाब में मुत्तफ़िक़ नहीं हैं। एक और बड़ी बात निकलती है यानी फ़रीक़ इस्लामी में इत्तिफ़ाक़ की एह्तियाज़ है।

(1) क़ुरआन

इस जगह वही व इल्हाम की पूरी बह्स होगी और क़ुरआन की तफ़्सीर व तशरीह के क़वाइद दूसरे बाब में लिखे जाऐंगे। बिलफ़अल इस क़द्र बयान करना काफ़ी है कि हर फ़िर्क़े के मुसलमान इस किताब की निहायत ताज़ीम करते हैं। पढ़ने के बाद किसी ऊंची जगह पर ताक़ या तख़्ते पर रखते हैं

और कोई बग़ैर वुज़ू किए ना इसे पढ़ सकता है ना हाथ लगा सकता है। (لَّا يَمَسُّهُ إِلَّا الْمُطَهَّرُونَ वाकिया आयत 78) और जब तक कोई अशद ज़रूरत ना हो तर्जुमा नहीं करते और तर्जुमें के साथ अरबी मतन ज़रूर छपता है यानी तर्जुमा हमेशा हामिल-उल-मतन होता है। कहते हैं कि रमज़ान के मुबारक महीने को ख़ुदा ने ये शर्फ़ दिया कि तमाम इल्हामी किताबें जो बनी-आदम के वास्ते आईं, इसी मुबारक महीने में नाज़िल हुईं, मसलन पहली रमज़ान को सहाइफ़ इब्राहिम और छठी को मूसा की किताबें और तेरहवीं को इंजील और सत्ताईसवें को क़ुरआन नाज़िल हुआ। कहते हैं कि इस रात यानी शब-ए-क़द्र को क़ुरआन सबसे नीचे के सातवें आस्मान पर उतर चुका था और वहां से जैसा मौक़ा होता था थोड़ा थोड़ा मुहम्मद अरबी के पास आता था।[1] إِنَّا أَنزَلْنَاهُ فِي لَيْلَةِ الْقَدْرِ "बतहक़ीक़ हमने ये (क़ुरआन) उतारा शब-ए-क़द्र में" (सुरह अलक़द्र आयत 1) इस रात को मुबारक रात और हज़ार महीनों से बेहतर रात कहते हैं। इस रात फ़रिश्ते अपने रब के हुक्म से उतरते हैं। इस रात चेन व आराम और बरकतें सुबह के निकलने तक रहती हैं। इस रात दो मर्तबा ग़ार-ए-हिरा में एक आवाज़ आई और दो मर्तबा अगरचे ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने कस के दबाया है और बड़ा भारी बोझ रख दिया है। मैंने इस बोझ से निकलना चाहा। तीसरी मर्तबा ये बातें सुनीं :-

اقْرَأْ بِاسْمِ رَبِّكَ الَّذِي خَلَقَ خَلَقَ الْإِنسَانَ مِنْ عَلَقٍ

"पढ़ अपने रब के नाम से जिसने बनाया। बनाया आदमी को लहू की फुटकी से" (सुरह अलक़ 1,2)

[1] मुहम्मद ﷺ ने यह खूब हिकमत की कि सारा क़ुरआन मजीद एक दफा दुनिया पर नहीं उतारा निचे के आस्मान पर रहने दिया, क्योंकि अगर सारा क़ुरआन एक ही दफा में मुश्तहिर (इशाअत) किया जाता तो बेशुमार एतराजात जिनका दफा अगर गैर-मुम्किन ना होता तो दुश्वार तो बदर्जे गायत होता, लेकिन इस बहाने से की थोड़ा थोड़ा उतरता है और ख़ुदा ने मुनासिब समझा कि लोगो की तालीम व तल्क़ीन के वास्ते जुज्वन जुज्वन (थोड़ा थोड़ा) नाज़िल करे। उन्होंने कुल पेचीदगीयों से सुलझने की राह निकाल ली और समझा की जो मुश्किल पेश आयेगी इस तरीक़से सहल छुट जाऊँगा।

जब वो आवाज़ ये कह कर मौक़ूफ़ हो गई कि आदमी कैसी बे-हक़ीक़त चीज़ से बना है और ख़ुदा-ए-करीम ने आदमी को अपने इल्म व इर्फ़ान से ये शर्फ़ दिया और क़लम से आदमी को वो बातें सिखाईं जो ना जानता था तो मुहम्मद अरबी को होश हुआ और देखा कि मेरे दिल पर एक किताब लिखी है। ये हाल देखकर अव्वल बहुत घबराए। हदीस में आया है कि फ़ौरन बीबी के पास गए और कहा कि ऐ ख़दीजा मुझे क्या हुआ है। मुहम्मद अरबी पर ग़शी की हालत तारी थी और बीबी उनके पास बैठी थी। जब होश हुआ तो कहा ऐ ख़दीजा मैं नहीं जानता कि आया मैं काहिन यानी जादूगर हो गया हूँ या मख़्त-उल-हवास हूँ। ख़दीजा ने जवाब दिया कि ऐ अबू क़ासिम ख़ुदा तेरा मददगार है। वो बिलयक़ीन तेरे साथ ऐसी कोई बात नहीं होने देगा क्योंकि तू सच्च बोलता है, बदी के एवज़ बदी नहीं करता है, तू ख़ुदा पर ईमान रखता है, तेरा चाल चलन दुरुस्त है, तू अपने रिश्तेदारों और दोस्तों पर मेहरबान है, तू बाज़ारों पर बकता नहीं फिरता तुझे क्या हुआ है। क्या तू ने कोई ख़ौफ़नाक चीज़ देखी है? मुहम्मद अरबी ने जवाब दिया कि अलबत्ता और जो कुछ देखा था सबब बयान किया। इस पर ख़दीजा बोली कि ऐ अज़ीज़ ख़ावंद ख़ुश हो जिसके हाथों में ख़दीजा की जान है, वही मेरा शाहिद (गवाह) है कि तू इस उम्मत का नबी होगा। (इम्मानुएल देछ) दूसरी यानी 74 सुरह मक्का में नाज़िल हुई थी। इस के बाद कुछ अर्से तक कोई सूरह नहीं उतरी और इसी अरसे में नबी ने यहूदीयों और ईसाईयों की कुतुब मुक़द्दसा से कुछ वाक़फ़ीयत बहम पहुंचाई। मुसलमानों का अक़ीदा था कि पयाम व सलाम के लाने वाले जिब्रईल थे मगर इस का ज़िक्र सिर्फ एक जगह क़ुरआन में आया है "बताओ जिब्रईल का कौन दुश्मन है। वो ख़ुदा के हुक्म से तुझ पर वही लाता है।" (सुरह 3:91) हिज्रत मदीना से बरसों के बाद ये सुरह नाज़िल हुई थी। बाअज़ और आयात जो क़ुरआन के इल्हामी होने पर दलालत करती हैं ये हैं "और ये क़ुरआन है अवतार (उतरा हुआ) जहान के साहब का, ले उतरे है इस को फ़रिश्ता मोअतबर" (अल-अमीन) (सुरह शुअरा 26:153-192) "ये तो हुक्म है जो पहुंचता है इस को सिखाया सख़्त कुव्वतों वाले ने।" (सुरह नज्म 53:5) इन पिछले फ़िक़्रों से साफ़ नहीं मालूम होता कि जिब्रईल ही वही लाते थे और अगरचे सब नहीं

मानते, लेकिन अक्सरीन का अक़ीदा यही है। अक्सर मुफ़स्सिरीन कहते हैं कि अल्क़ाब रूह अल-अमीन और शदीद-उल-क़वा सिवाए जिब्रईल के और किसी पर नहीं दलालत करते। लफ़्ज़ "इल्म सिखाया" सुरह नज्म आयत 5 और सूरह क़ियामत 75 आयत 18 की ये इबारत कि "फिर जब हम पढ़ने लगें तो साथ रह तो उस के पढ़ने के" दोनों इस अम्र पर दलालत करते हैं कि क़ुरआन वही मत्लू था, मुहम्मद अरबी को इस में कुछ दख़ल ना था बजुज़ इस के कि औरों को पढ़ कर सुना देते थे। मुहम्मदी मुअर्रिख़ इब्ने खुल्दुन इस बाब में यूं कहता है कि "कुतुब इलाहीया में एक क़ुरआन है ऐसा कि इस का एक एक लफ़्ज़ और फ़िक़्रह और आयत नबी को फ़रिश्ते की मार्फ़त पहुंची है। तौरेत व ज़बूर व इंजील और सहाइफ़ इस तरह नहीं पहुंचे हैं। नबियों पर सिर्फ मुतालिब का इलक़ा होता था और वो उन्हें अपने मुहावरात में क़लम-बंद कर लेते थे।" (इब्ने ख़ल्दून की किताब जिल्द अव्वल, सफ़ा 195) इस से तमाम मुसलमानों का अक़ीदा इस बारे में मालूम होता है और इस से ये भी ज़ाहिर है कि इस्लाम बमंज़िला एक कल के है कि बग़ैर मुहर्रिक के मुतहर्रिक नहीं। पस ये क़ुरआन जो इस तरह नाज़िल हुआ है अब उसे इस्लाम का क़ायम मोअजिज़ा जानते हैं और इल्हामी किताबों के सिर्फ मुतालिब इल्हाम से मालूम हो जाते थे। लेकिन क़ुरआन इन सबसे बरतर है क्योंकि वो तो लफ़्ज़ बलफ़्ज़ नबी को सुना दिया गया था, मसलन (सूरह क़ियामत 75 16-19) में लिखा है कि "न चला तू उस के पढ़ने पर अपनी ज़बान कि शिताब उस को सीख ले। वो तो हमारा ज़िम्मा है इस को समेट रखना और पढ़ना। फिर जब हम पढ़ने लगें तो साथ रह तू उस के पढ़ने के, फिर मुक़र्रर हमारा ज़िम्मा है इस को खोल बताना।"

पस मुसलमानों का ये अक़ीदा है कि क़ुरआन बाएतिबार इबारत, मआनी, तर्तीब अल्फ़ाज़, अख़्बार और अहकाम की फ़साहत का मोअजिज़ा है और ये दावा करते हैं कि हर ज़ी इख़्तियार और उलुलअज़्म (बुलंद इरादे वाले) नबी के अह्द में जिस क़िस्म की बातों का चर्चा और आम रिवाज होता था उसी क़िस्म के मोअजज़े दिखाए जाते थे, मसलन मूसा के ज़माने में जादू का बड़ा ज़ोर था तो ख़ुदा ने ऐसा किया कि फ़िरऔन के दरबार के सब जादूगर उस के सामने आजिज़ हो गए। ईसा के ज़माने में तिब्ब का बड़ा

रिवाज था। ईलाज मुआलिजा में लोग अच्छी दस्त-गाह (क़ुदरत, महारत) रखते थे, फिर भी कोई तबीब (हकीम) हज़रत ईसा की बराबरी नहीं कर सका क्योंकि उन्होंने ना सिर्फ बीमारों को सेहत बख़्शी बल्कि मुर्दों को भी ज़िंदा किया। मुहम्मद अरबी के अह्द में शारो सुख़न (कलाम, शेअर, बात) की बड़ी गर्म-बाज़ारी थी। अहले अरब नज़्म में अजब दस्त-गाह (महारत) रखते थे। मुहम्मद अलअमेरी कहते हैं कि "हिक्मत व दानाई ने तीन जगह घर किया है, फ़िरंगियों के दिमाग़ में, चीनियों के हाथों में और अरब की ज़बान में।" अरब फ़साहत में बेनज़ीर और ख़यालात की तर्तीब व इज़्हार में लासानी थे। चुनान्चे इसी फ़न ख़ास में क़ुरआन की फ़ौक़ियत का दावा है। मुहम्मदियों के नज़्दीक फ़साहत क़ुरआनी यक़ीनी शहादत इस अम्र की है कि क़ुरआन मोअजिज़ा है। मुसलमान कहते हैं कि और नबियों की तस्दीक़ रिसालत के वास्ते मुकाशफ़ात के साथ मोअजज़े भी हुआ करते थे। इसी एतबार से क़ुरआन वही और मोअजिज़ा दोनों है। मुहम्मद अरबी ने ख़ुद कहा है कि हर नबी के साथ लोगों के क़ाइल करने को सरीह निशानीयां होती थीं लेकिन जो कुछ निशानी मुझे मिली है, वो क़ुरआन है। इस सबब से मुझे यक़ीन है कि हश्र के रोज़ मेरे पैरौ (मानने वाले) और (दुसरे) नबियों से ज़्यादा होंगे। इब्ने ख़ल्दून कहते हैं कि "इस से नबी का मतलब ये था कि क़ुरआन जो कि वही भी है एक ऐसा अजीब मोअजिज़ा है कि बहुत से लोग इस के क़ाइल होंगे" (इब्ने ख़ल्दून की किताब जिल्द अव्वल, सफ़ा 194)

पस मुसलमान पर ये हक़ीक़त बख़ूबी ज़ाहिर है और इस के नज़्दीक क़ुरआन अगली किताबों से बदर्जहा औला है। कहते हैं कि मुहम्मद अरबी ने अपने ज़माने के नामी शायर लबीद को क़ुरआन मुरव्वजा की दूसरी सूरत की चंद आयतें सुना कर अपनी रिसालत का क़ाइल कर लिया था। बेशक ये इबारत क़ुरआन की निहायत उम्दा है, लेकिन इस क़िस्म का बयान गो वो कैसा ही उम्दा हो अरब जैसी क़ौम की सरगर्मी, ईमान और उम्मीद के बढ़ाने और क़ायम रखने को काफ़ी नहीं। मुहम्मद अरबी से पहले भी शाइरों ने सख़ावत, शुजाअत, मुहब्बत, अदावत और इंतिक़ाम के बयान में और मुर्दों के अहवाल में जिन पर आस्मान सुबह के अब्र से रोता है और ज़िंदगी की बे-सबाती पर जो रेगिस्तान की लहरों की मानिंद आती है और चली जाती

है या कारवानियों के ख़ेमों की तरह कि यकजा नहीं रहते या जैसे फूल कि कभी खिलता है और कभी मुरझा जाता है नज़्म लिखते थे और हजव व तअन तशनीअ (ताने और ज़लील करने वाले शेर) के अशआर कहते थे जो ज़हरदार तीर की मानिंद दुश्मन के जिगर के पार हो जाते थे। लेकिन मुहम्मद अरबी ने इन मज़ामीन पर कुछ नहीं कहा। ना मज़ामीर से शौक़, ना दुनिया के ऐश-ओ-इशरत से कुछ काम, ना तल्वार, ना ऊंट से मतलब, ना बुग़्ज़ व इंतिक़ाम से ग़रज़, ना बाप दादा के जादू हशम से कुछ सरोकार था। उनकी ग़रज़ दावत-ए-इसलाम थी।" जिस क़द्र चिशती से ये काम हुआ है और ऐसी किस्में दिलाईं कि अरब का फ़सीह गो कैसा ही अपने फ़न में कामिल होता कभी नहीं कर सकता और जिस इस्तिक़लाल व यक़ीन से इस नबी ने अपनी रिसालत को शौहरत दी है और जिस जोश-ओ-ख़ुरोश और ख़ुश-बयानी से बातें की हैं इन सभों ने तमाम जहान के मुसलमानों को इस्लाम पर गिर दीदा कर दिया है। उनके दिलों पर क़ुरआन की ताअलीमात को कंक्श-उल-हिजर मुनक़्क़श कर दिया है। क़ुरआन की इबारत को ऐसा मुतबर्रिक जानते हैं कि सिवाए अस्हाब नबी[2] के और कोई उस के समझने और तफ़्सीर करने के लायक़ नहीं समझा जाता है। यही सबब है कि उस वक़्त से आज तक दीनदार आलिम क़ुरआन और अहादीस को और क़दीम मुफ़स्सिरों की तफ़्सीरें और शरहें जो उन पर हुई हैं उनको बर ज़बान याद करते हैं। नुक्ता-चीनी के मामूली क़ाईदों से कोई भी वही व इल्हाम की तहक़ीक़ व आज़माईश नहीं करता है। अगर सनद मुत्तसिल (मिला हुआ, नज़दीक) है या सिलसिला रिवायत का किसी शरह के बाब में दुरुस्त है तो फिर उस शरह के क़ुबूल करने में किसी को गाम (एतराज़) नहीं होता। इस बात पर ईमान लाना फ़र्ज़ है कि तमाम जहान में कोई किताब क़ुरआन के बारे इबारत और मआनी में नहीं हो सकती है। इस में अहकाम बहुत और दलाईल के हैं। इस के अहकाम पर हर वक़्त और हर हाल में ना सिर्फ दिल-ओ-जान से अमल करना फ़र्ज़ है बल्कि हर्फ़ ब हर्फ़ मानना लाज़िम है। जब किसी का अक़ीदा इस किताब की निस्बत ये हो कि अज़ल से है तो

---

2 असहाब नबी से वह लोग मुराद है जो नबी की सोह्बत में रहा करते थे असहाब के शागिर्दों को ताबईन और ताबईन के शागिर्दों को तबअ ताबईन (पैरुओं के पैरू) कहते हैं।

फिर उस के मानने में क्या कलाम हो सकता है। क़ुरआन के मुख़्तलिफ़ अजज़ा को जो मुहम्मद अरबी ने 23 बरस के अह्द रिसालत में पढ़ कर सुनाए थे उनके बाअज़ पैरौओं ने या तो क़लम-बंद कर लिया था या बर ज़बान याद कर लिया था। चूँकि नमाज़ की हर रकअत में कुछ ना कुछ आयतें ज़रूर पढ़नी पड़ती हैं और ऐसे पढ़ने को बड़े सवाब का काम जानते हैं, इस सबब से हर मुसलमान जितना उस से हो सकता था हिफ़्ज़ कर लेता था और जो कोई अच्छा हाफ़िज़ होता था उस की बड़ी ताज़ीम करते थे। अक्सर माल-ए-ग़नीमत से उसे हिस्सा दिया जाता था, मसलन जंग क़ादसिया (14 हिज्री) में जो कुछ माल-ए-ग़नीमत हाथ लगा उसे मामूली हिस्सेदारों में तक़्सीम करने के बाद जो कुछ बचा था वो उन्हें बांट दिया जिन्हें क़ुरआन ख़ूब याद था। (म्यूर की जल्द अव्वल, सफ़ा 5) चूँकि अरब की तबीयत में शेअर-ओ-सुख़न (कलाम, शेअर) के याद करने का शौक़ था इस सबब से उन्हें हिफ़्ज़ करना चंदाँ दुशवार ना गुज़रा। जब नबी ने इंतिक़ाल किया तो वही आना मौक़ूफ़ (बंद) हुआ और कुल क़ुरआन की कोई दुरुस्त नक़्ल उस वक़्त मौजूद ना थी जिससे मालूम होता कि फ़ुलां अहकाम ज़्यादा लिहाज़ के क़ाबिल हैं और फ़ुलां अहकाम कम लिहाज़ के क़ाबिल हैं। ये किसी बात से साबित नहीं होता कि नबी ने किसी हिस्से की कोई ख़ास एहतियात की हो। मालूम होता है कि कोई तर्तीब ना थी जिस पर ब-वक़्त क़ुरआन के जमा करने के इस की सूरतें तर्तीब दी जातीं, क्योंकि क़ुरआन जैसा कि अब मौजूद है तारीख़ी या इबारती तनासुब से बिल्कुल मुअर्रा (आज़ाद) है। नबी की वफ़ात से एक बरस तक कुछ इस का इंतिज़ाम नहीं हुआ लेकिन बाद में यमन की लड़ाई में जब बहुत से क़ारी और हाफ़िज़ मारे गए तो उमर को अंदेशा हुआ और ख़लीफ़ा अबू बक्र से कहा कि मअरका (वह जंग जहाँ लोग इकठ्ठा हो जाएं) जंग में किशत-ओ-ख़ून की फिर गर्म बज़ारी होगी और क़ारी व हाफ़िज़ मारे जाऐंगे तो बड़ा नुक़्सान होगा इस वास्ते मेरी सलाह ये है कि आप बहुत जल्द क़ुरआन जमा करने का हुक्म दे दें। अबू बक्र ने ये बात मंज़ूर कर के ज़ैद से जो नबी के कातिब थे कहा कि तू बालिग़ और आफ़िल है कोई तुझ पर ख़ता व ग़लती का इल्ज़ाम नहीं लगा सकता तू नबी अल्लाह की वही लिखा करता था इसलिए अब जुस्तजू कर के क़ुरआन को

जमा कर। ज़ैद ने बड़े इसरार से इस का एहतिमाम अपने ज़िम्में लिया और खजूर के पत्तों, पत्थर की तख़्तीयों और हाफ़िज़ों के सीनों से क़ुरआन को जमा करना शुरू किया। चंद अरसे में कुल क़ुरआन उस तर्तीब पर जमा हो गया जिस पर कि बिलफ़अल मौजूद है। मुहम्मद अरबी की वफ़ात से कोई 23 बरस के बाद ये नुस्ख़ा मुरत्तिब हुआ और सबने उसे मोअतबर गिरदाना। लेकिन इख़्तिलाफ़ात क़रा (क़ारियों) के सबब से या उस सबब से कि ज़ैद की पहली तर्तीब मुख़्तलिफ़ जगहों से थी, नक़ूल मुरव्वजा में इख़्तिलाफ़ क़रा व इबारत पैदा हो गया। मोमिन इस से बहुत मुतरद्दिद हुए और ख़लीफ़ा उस्मान ने चाहा कि ऐसे ख़तर का इंसिदाद करें। चुनान्चे उन्होंने ज़ैद बिन हारिस को बाइआनत तीन सरदार क़ुरैश के कुल किताब की नज़र-ए-सानी पर मामूर किया और बड़ी एहतियात से कुल किताब की नज़र-ए-सानी कर के मक्का की क़रा (क़िरअत) पर जो तमाम अरब में निहायत ख़ालिस तसव्वुर की जाती थी, उसे तर्तीब दिया। बादह (उस के बाद) सब पुरानी नक़्लें ख़लीफ़ा के हुक्म से जला दी गईं और तर्मीम शूदा नुस्ख़ा से जो कि मोअतबर नक़्ल क़रार दी गई थी और नई नक़्लें तैयार कराई गईं। लेकिन चूँकि ये मसअला उसूल इस्लाम से है कि क़ुरआन नुक़्सान व ग़लती से बिल्कुल मुबर्रा (पाक) है इस सबब से नए तर्जुमा शूदा नुस्ख़े की ज़रूरत का और जिन अस्बाब से ये ज़रूरत लाहक़ हुई थी उस का समझाना सहल ना था। मगर एक हदीस से जो सीना ब सीना पहुंची है सात मुख़्तलिफ़ क़रा (क़िरअत) में क़ुरआन का पढ़ना जायज़ है। इस सबब से सब दिक्कतें बहुत सहल दफ़ाअ हो गईं और जिस सूरत में कि क़ुरआन अब मौजूद है उसे ऐसा समझना चाहीए कि वही नुस्ख़ा है जिसे अबू बक्र ने जमा कराया था और फिर बाद को इस में इस्लाह व सेहत हुई थी और हमको यक़ीन कर लेना चाहीए कि क़ुरआन मुरव्वजा में वही बातें हैं जो मुहम्मद अरबी ने फ़रमाई थीं। इस सबब से इस्लाम की अस्ल व बुनियाद उसी पर हो गई है। अगले मुसलमान आम बोल-चाल में जब अपने नबी का ज़िक्र करते तो ये कहते थे कि आपके औसाफ़ क़ुरआन में हैं। जब लोग अपने प्यारे नबी के हालात-ए-ज़िंदगी की तफ़्सील जानना चाहते और आपकी एक बेवा बीबी आइशा से आपकी निस्बत सवाल करते तो वो यही जवाब दिया थीं **"तेरे पास क़ुरआन**

मौजूद है क्या तू अरब नहीं और अरबी ज़बान नहीं पढ़ सकता है जो मुझे पूछता है? क्योंकि मुहम्मद अरबी के औसाफ़ क़ुरआन से जुदा ना थे।" रहा ये अम्र कि आया मुहम्मद अरबी क़ुरआन को तर्तीब मौजूदा पर मुरत्तिब करते एक ऐसा अम्र है कि इस पर राय लगानी ग़ैर मुम्किन है। बाअज़ अहादीस से ऐसा पाया जाता है कि आपको इस की तामील में शक था। चुनान्चे परसाईओल साहब का बयान इस बाब में ये है कि जब मुहम्मद अरबी ने जाना कि मेरा वक़्त क़रीब आ पहुंचा तो फ़रमाया कि स्याही और क़लम लाओ मैं तुम्हारे लिए एक किताब लिखना चाहता हूँ जो तुम्हें ग़लती से हमेशा महफ़ूज़ रखे, लेकिन मौत ने इतनी मोहलत ना दी कि लिख सकते या लिखवा सकते। इस सबब से ये कहा कि क़ुरआन तुम्हारा हमेशा हादी रहे जो कुछ उस के अहकाम हैं उन पर अमल करो और नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) से मुहतरिज़ (अहितराज़ करने वाला, बचना) रहो। मैं ऐसा समझता हूँ कि इस हदीस के पहले हिस्से की सेहत बहुत मशकूक है अलबत्ता पिछला हिस्सा ऐसा है कि जो कुछ नबी मौसूफ़ को अपनी ताअलीम की निस्बत दावा था इस से बिल्कुल मुवाफ़िक़ है। ग़रज़ कि इस किताब के अहकाम जैसा कि मुहम्मद अरबी ने चाहा था तमाम दुनिया के मुसलमानों के वास्ते एक क़ैद और तमाम दीनदारों के हक़ में ख़यालों की आज़ादी की बड़ी रोक और तमाम मुआमलात में दीनी व अख़्लाक़ी दीनी की तजदीद व ईजाद के वास्ते बड़ी मुज़ाहमत हो गई। इस अम्र के मुताल्लिक़ बहुत सी और बातें हैं जिनकी तफ़्सील दूसरे बाब में अच्छी तरह हो सकेगी। माहसल (खुलासा) इस तक़रीर का ये है कि इस्लाम की अव्वल अस्ल क़ुरआन से है और ये समझना कि फ़क़त क़ुरआन ही इस्लाम की अस्ल है ऐसी ग़लती है कि दीन इस्लाम के बारे में इसी में लोग ज़्यादा धोका खाते हैं। शीया बग़ैर माक़ूल वजह के ये दावा करते हैं कि आयात ज़ेल अली की शान में हमारे दावे के मुईद नज़्म उस्मानी से निकाल डाली हैं। "ऐ ईमान वालों दोनों नूरों (मुहम्मद व अली) पर ईमान लाओ। अली परहेज़गारों की जमाअत से है। हम उसे उस का हक़ इन्साफ़ के दिन देंगे और जो उसे फ़रेब देना चाहते हैं उन्हें छोड़ नहीं देंगे। हमने उसे सारे घराने पर शर्फ़ दिया है। वो और उस के घराने के लोग बड़े साबिर हैं। उनका दुश्मन (यानी मुआवीया) गुनाहगारों का सरदार है। हमने तुझे रास्तबाज़ों की एक नस्ल बता दी है। ऐसे रास्तबाज़ (दवाअज़ दह

इमाम) जो हमारे अहकाम से मुख़ालिफ़त नहीं करेंगे। मेरी रहमत और सलामती उन पर जो ज़िंदा हैं (इमाम महदी को अब भी ज़िंदा बताते हैं) और जो मुर्दा।"

(2) सुन्नत

इस्लाम की दूसरी अस्ल हदीस है (हदीस की जमा अहादीस है) ख़ुदा के अहकाम को जो क़ुरआन में आए हैं उनको फ़र्ज़ व वाजिब कहते हैं और जो हुक्म नबी ने दिया हो या जो फ़ेअल उन्होंने किया हो उसे सुन्नत कहते हैं। सुन्नत के लुगवी मअनी तरीक़ के हैं लेकिन इस्तिलाह शरई में सुन्नत का इतलाक़ दीन के उन कामों पर किया जाता है जो मुहम्मद अरबी के अफ़आल व अक़्वाल के मुताबिक़ हों। **<u>सुन्नत तीन तरह की है। एक फ़अली, दूसरी क़ोली और तीसरी तक़रीरी।</u>** जो काम मुहम्मद अरबी ने ख़ुद किए हैं उन्हें "सुन्नत फ़अली" कहते हैं और जो आपने तो नहीं किए हैं मगर औरों को उनके करने का हुक्म दिया हो उन्हें "सुन्नत क़ोली" कहते हैं और जो काम आपके सामने हुए और आपने उन्हें मना नहीं किया उन्हें "सुन्नत तक़रीरी" कहते हैं। तमाम मुसलमानों का ये अक़ीदा है कि जो कुछ नबी ने किया और कहा है वो सब ख़ुदा की हिदायत से था और उनकी सब बातों और कामों पर ईमान लाना और अमल करना सुन्नत है। हमें जानना चाहीए कि ख़ुदा-ए-क़दीर ने अपने बंदों को अवामिर (अहकामे इलाही, शरई हुक्म व नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) या क़ुरआन के ज़रीये से या अपने नबी की ज़बान से बताए हैं (रिसाला बरकिवी) इलाहियात के निहायत मुम्ताज़ आलम इमाम ग़ज़ाली लिखते हैं कि "मुजर्रिद तौहीद की शहादत से ईमान ख़ुदा की मर्ज़ी के मुवाफ़िक़ कामिल नहीं होता यानी सिर्फ लाईलाहा इल्लल्लाह لَا اِلٰـہَ اِلَّا اللّٰـہ कहें और रिसालत की शहादत का जो कलिमा है उसे छोड़ दें यानी मुहम्मद रसूलुल्लाह (رسول اللّٰہ محمد) ना कहें तो ईमान कामिल नहीं होता।" नबी पर ईमान लाने के ये मअनी हैं कि जो कुछ उन्होंने दुनिया व दीन की निस्बत ख़बर दी है इस सबको मानना ज़रूरी है क्योंकि वही मुसन्निफ़ ये भी लिखता है कि "ईमान मक़्बूल नहीं जब तक कि

उन सब ग़ैब की बातों पर जिनकी निस्बत नबी ने ख़बर दी है कि बाद मौत के वाक़ेअ होंगी, ईमान ना लाए।" लोग अक्सर कहा करते हैं कि वहाबी हदीस को नहीं मानते हैं। लफ़्ज़ हदीस के मामूली मअनी के एतबार से शायद ना मानते हों, लेकिन मुसलमानों की इस्तिलाह शरई में लफ़्ज़ हदीस (जिसका तर्जुमा हम अंग्रेज़ लोग ट्रेडीशन करते हैं) के मख़्सूस मअनी हैं नबी के अक़्वाल को हदीस कहते हैं और जिन लोगों को वही इल्हाम नहीं होता था उनकी बातों को हदीस नहीं कहते हैं। वहाबी उन हदीसों को नहीं मानते हैं जो सहाबा के ज़माने के बाद और लोगों से पहुंची हैं और जिन अहादीस में नबी के अक़्वाल हैं उनको सब मुसलमान फ़िर्क़ों की तरह ये लोग भी जानते हैं कि ख़ुदा की बातें हैं जो इल्हाम से आदमीयों को पहुंची हैं।

वहाबियों की निस्बत ये कहना कि हदीसों को नहीं मानते हैं ऐसा है जैसे कोई कहे कि प्रोटैस्टैंट ईसाई चारों इंजीलों से इन्कार करते हैं। वहाबियों के बड़े मौलवी जिनका कुछ अहवाल आगे आएगा तक्वियतुल ईमान (تقویۃالایمان) में लिखते हैं कि "बेहतरीन तरीक़ों का ये है कि अल्लाह व रसूल के कलाम को अस्ल गर्दानना और इसी पर अमल करना और अपनी अक़्ल को दख़ल ना देना। दीनदार मुसलमान इंजीलों को हदीस के बराबर गिनता है क्योंकि वो ये जानता है कि अनाजील यसूअ के कामों और बातों का नविश्ता है जो उस के सहाबा यानी शागिर्दों से हम तक पहुंचा है और जिस तरह और नबियों की किताबें हैं कि उनमें उन्होंने अपने तौर व मुहावरे पर ख़ुदा की बातों को लिख कर अपने नाम की किताब कर ली है, इसी तरह हमारे नबी को बहुत सी बातें ख़ुदा से पहुंची हैं जो मजमूआ अहादीस में पाई जाती हैं।" (इब्ने ख़ल्दून की किताब जिल्द अव्वल, सफ़ा 195) इस से साबित होता है कि सुन्नत को यहूद व मसीह की कुतुब मुक़द्दसा के बराबर और क़ुरआन को इन सबसे बढ़कर तसव्वुर करना चाहीए। मुसलमानों में ऐसा कोई फ़िर्क़ा नहीं जिसका ईमान सिर्फ क़ुरआन हो। अलबत्ता शीया सुन्नत के मुन्किर हैं, लेकिन उनके पास भी एन बदल हदीसों का मजमूआ है। ख़्वाह इस्लाम को दीन के एतबार से या दुनिया के एतबार से देखो इस बाब में कि सुन्नत किस क़िस्म का इल्हाम है और उसे किस क़द्र मोअतबर जानना चाहीए, अलबत्ता बड़ी बहस है। "मुहम्मद अरबी ने कहा कि मेरी उम्मत में

73 फ़िरक़े होंगे जिनमें सिर्फ एक बहिश्त के लायक़ होगा। इस पर सहाबा ने पूछा कि वो कौनसा एक फ़िर्क़ा है जो बहिश्ती (जन्नती) होगा? नबी ने जवाब दिया कि वो जो मेरे और मेरे अस्हाब के तरीक़ पर क़ायम रहे। इस हदीस से यक़ीनन अहले सुन्नत-वल-जमाअत की तरफ़ इशारा है।" (सुन्नी की किताब तक्मील ईमान, सफ़ा 16)

दीन के कामों में सुन्नत नब्वी की इताअत मुक़द्दम समझते हैं, मसलन क़ुरआन की चौथी सूरत निसा 80 में आया है कि ऐ लोगों जो ईमान लाए हो फ़रमांबर्दारी करो अल्लाह की और कहा मानो रसूल का" और हमने कोई पैग़म्बर नहीं भेजा मगर इस वास्ते कि ख़ुदा के हुक्म से लोग उस की फ़रमांबर्दारी करें।" (सुरह निसा 4 आयत 64) इन आयात से और इसी क़िस्म की और आयात से ये ताअलीम निकलती है यानी ये ज़ाहिर है कि मुहम्मद अरबी (ख़ुदा की रहमत और सलामती उन पर और उनकी औलाद पर) कुल अवामिर नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) के बताने और अक़्वाल व अफ़आल में ख़ता से मुबर्रा थे, क्योंकि अगर ऐसा ना होता तो उनकी इताअत ख़ुदा की इताअत क्योंकर कहलाती। (मदारिज-उन-नबुवह, सफ़ा 285) मोमिनों को ये नसीहत है कि ख़ुदा की इताअत करें यानी उस की उलूहियत की शहादत दें और नबी की मुहब्बत का इक़रार करें। ये मुहब्बत की पहचान है और मुहब्बत क़ुर्ब इलाही का सबब है। कहते हैं कि नबी ने ख़ुद फ़रमाया है कि "तुम मेरी इताअत करो ता कि ख़ुदा तुम्हें दोस्त रखे।" इस क़ौल से ये नतीजा निकालते हैं कि "ख़ुदा की मुहब्बत (इन्सान के साथ नबी की फ़रमांबर्दारी से मशरूअत है।" नबी पर एतिक़ाद रखना और उस की इताअत सच्चे ईमान का ज़रूरी जुज़्व (हिस्सा) है और जिसमें ये दोनों सिफ़तें नहीं वो हक़ से दूर है। इस इताअत की ज़रूरत बताने को कहते हैं कि ख़ुदा ने मुहम्मद अरबी को अपने और अपने आदमीयों के दर्मियान एलची मुक़र्रर किया बल्कि सुन्नत नब्वी के बाद चारों ख़ुलफ़ा अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली जो आदमीयों के हादी-ए-बर-हक़ हैं उनकी सुन्नत की पैरवी सब मोमिनों को लाज़िम है।

मुसलमान के नज़्दीक जो कुछ मुहम्मद अरबी ने किया ऐन ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ था। तहज़ीब-व-अख़्लाक़ के क़वाइद जब उनसे मंसूब होते

हैं तो उनके मआनी मुख़्तलिफ़ लिए जाते हैं। यहूद के गिरोहों के साथ उनका ग़ुस्सा, बेरहमी, शहवत परस्ती, औरतों से इशरत और अपने हुक्मों को ख़ुदा के बराबर बनाना, ग़रज़ कि उनका हर क़ौल व फ़ेअल गुनाह से पाक था और जब तक दुनिया क़ायम है लोगों के वास्ते हिदायत है। मुहम्मद अरबी की निस्बत उज़्र करने वाले को ये कहना सहल है कि मज़्हब के आसान करने को ये इफ़रात बाद को जायज़ हो गई, अव्वल ना थी। हालाँकि ये बात ना थी बल्कि ये सब बातें इस मज़्हब के लाज़मात से हैं। चुनान्चे मुहम्मद अरबी ख़ुद कहते हैं कि जो कोई मेरी सुन्नत को दोस्त नहीं रखता वो मेरा पैरौ (मानने वाला) नहीं, जिसने मेरी सुन्नत को ज़िंदा (जारी किया) उसने मुझे ज़िंदा किया और मेरे साथ बहिश्त में होगा, जो मेरी सुन्नत को मज़्बूत पकड़ता है वो सो शहीदों का सवाब पाएगा। चूँकि मुहम्मद अरबी के क़ौल-व-फ़ेअल ऐसे उसूल इस्लाम हैं जिनमें तग़य्युर-व-तबद्दुल को मुतलक़ दख़ल नहीं तो इस से सिवाए उस के कि मुसलमान इस से बाहर क़दम नहीं रख सकते और बातें भी लाज़िम आती हैं क्योंकि ये हमेशा याद रखना चाहीए कि इस्लाम में दीन-व-मुल्क मुत्तहिद हैं। "अल-मुल्क वद्दीन (الملک والدین) तो ईमान" (सल्तनत और मज़्हब दोनों बिरादरान तवाम हैं) अरब की मशहूर मिस्ल है जिससे साफ़ ज़ाहिर है कि दीन बग़ैर सल्तनत के क़ायम नहीं रह सकता। मुसलमान के नज़्दीक दीन-व-हुकूमत एक चीज़ है। बाअज़ मुदब्बिराने-ए-सल्तनत जो तुर्की से इस्लाह से मुतवक़्क़े होते हैं और सल्तनत उस्मानिया की बहाली की उम्मीद करते हैं उन्हें ये बात याद नहीं रहती। कोई क़ानून ख़्वाह मुताल्लिक़ मुल्क के हो या जमाअत या तहज़ीब या दीनदारी के हो क़ुरआन ही की तरह सुन्नत के ख़िलाफ़ भी नहीं हो सकता। इस ज़माना में एक मुसन्निफ़ जो इस्लाम से ख़ूब वाक़िफ़ है लिखता है कि "अगर इस्लाम आइंदा बाइस ख़ैर हो तो ये अशद ज़रूरी है कि मज़्हब को नज़्म अख़्लाक़ से जुदा रखें। इस में ये बड़ी मुश्किल है कि मज़्हब को रसूम अख़्लाक़ी से अज़ रोए क़ुरआन ऐसा इलाक़ा है और दोनों एक दूसरे से ऐसे वाबस्ता हैं कि बग़ैर दोनों की बर्बादी के एक का दूसरे से जुदा देखना दुशवार है।" साहब दुशवार कहते हैं और मैं उसे ग़ैर मुम्किन जानता हूँ और इस सूरत में और भी उम्मीद नहीं रहती, जब ये याद आता है कि अहकाम

क़ुरआन की तरह सुन्नत भी वाजिब-उल-तामील है। इस की भूलना गुमराही है क्योंकि इब्ने ख़ल्दून साफ़ लिखता कि "शरीअत की बातें क़ुरआन व सुन्नत से निकली हैं और मुसलमानों की बातों का उसूल नस क़ुरआन और ताअलीमात अहादीस हैं।[3]

मुहम्मद अरबी को नई बात (बिद्दत) का बड़ा ज़ोर रहता था। इस्तिलाह शरई में दीन में नई बात निकालने को बिद्दत कहते हैं और उसी की निस्बत कहा गया है कि बदल डालने वाली सुन्नत की है या यूं समझना चाहीए कि अगर आदमी नई बातें ढूंढें और ताज़ा ख़यालात पकाएं और जमाअत की हालत में तग़य्युर वाक़ेअ होने से जदीद (नए) तरीक़े निकालने की ज़रूरत हो और नए नए क़ानून इस जमाअत के इंतिज़ाम के वास्ते निकलें अगर ज़ाहिर या बातिन कोई नई बात यानी बिद्दत दीन में निकाल ली जाये तो इस से दूर रहना चाहीए। शरअ क़ुरआन से मालूम होती है और सुन्नत नुक़्स-व-ऐब से पाक है। जो बात क़ुरआन-व-सुन्नत से जुदा है, बिद्दत है और कुल बिद्दत गुमराही है। बाअज़ बिदआत जैसे सर्फ़-व-नहव का सीखना और मदारिस मुक़र्रर करना, मुसाफ़िर ख़ाने वग़ैरह बनवाना जायज़ हैं और बिद्दत इस सबब से कहते हैं कि नबी के वक़्तों में उनका वजूद ना था। लेकिन ये साफ़ मालूम होता है कि ज़रा सी सुन्नत का इत्तिबा (नबी के हुक्मों में से किसी एक का मानना गो वो कैसा ही हो) नई बात करने से बदर्जा बेहतर है, अगरचे वो नई बात बड़े फ़ायदे और हाजत की हो। बहुत सी रिवायत इस क़िस्म की हैं जिनसे ज़ाहिर होता है कि अस्हाब नबी सुन्नत को किस क़द्र अज़ीज़ रखते थे।

ख़लीफ़ा उमर ने मक्का के संग-ए-असवद को देखकर कहा बख़ुदा मैं जानता हूँ कि तू महज़ पत्थर है, ना नफ़ा पहुंचा सकता है, ना नुक़्सान। अगर मुझे ये मालूम होता कि तुझे नबी ने बोसा दिया है तो मैं हरगिज़ ऐसा ना करता, सिर्फ इस सबब से कि नबी ने ऐसा किया है मैं भी ऐसा

---

[3] जून 1827 ई॰ सुल्तान महमूद ने एक कुतब अदम मदाखलत दर मालूमात सलतनत उस्मानिया जारी किया था मालूमात से मुराद वह अहकाम थे जिन का माखुज़ शरिअत पाक के उसूल हैं और वह इंतजामात थे जो उसूल दीन से वाबस्ता हैं, इन उसूलों की तामिल बदस्तूर जारी है क्योंकि वह फतवा जो जमाअत उलेमा ने जुलाई 1879 ई॰ को उन इस्तलाहात के जवाब में दिया था जो खैरुद्दीन अहमद ने चाही थी, इसमें गैर मुतगय्यर उसूल शरई का ज़िक्र मौजूद है।

करता हूँ। अब्दुल्लाह इब्ने उमर एक दफ़ाअ ऊंट पर सवार बार-बार एक जगह के गर्द घूमते थे। जब लोगों ने सबब पूछा तो फ़रमाया कि मैं और कुछ नहीं जानता सिवाए इस के नबी को ऐसा करते देखा है। कहते हैं कि अहमद इब्ने हम्बल जो चार बड़े इमामों में से गुज़रे हैं और हम्बली फ़िर्क़े के बानी हैं इसी सबब से इमाम मुक़र्रर हुए कि सुन्नत के बड़े पाबंद थे। एक रोज़ किसी मजलिस में बैठे थे और तमाम हाज़िरीन में से फ़क़त वही नबी की किसी सुन्नत फ़ाअली को अमल में लाए। फ़ौरन जिब्रईल ने आकर ख़बर दी कि तुम्हारे इस काम के सबब से ख़ुदा ने तुम्हें इमाम मुक़र्रर किया। अल-हासिल ये साफ़ मालूम होता है कि सब कामों से बेहतर सुन्नत की पैरवी है। एक दीनदार आलिम बयान करता है कि "दीन की अस्ल तीन चीज़ें हैं। अव्वल अख़्लाक़-व-अफ़आल में नबी की पैरवी, दूसरा अकल हलाल (हलाल की रोज़ी) और तीसरा तमाम कामों में ईमानदारी को हाथ से ना जाने देना।" सुन्नत मुसलमानों को मजमूआ-ए-अहादीस से मालूम होती है और जिन लोगों ने उन्हें जमा किया है उन्हीं के नाम से मारूफ़ हैं। **कुल मजमूआ-ए-अहादीस को "सहाह सत्ता" यानी छः सही किताबें कहते हैं।** तीसरी सदी हिज्री से पहले कोई मजमूआ मौजूद ना था और इसी सबब से बाआसानी समझ सकते हैं कि वो भी एतराज़ से महफ़ूज़ नहीं। सुन्नीयों के दर्मियान भी अहादीस के एतबार पर किसी तरह इत्तिफ़ाक़ राय नहीं। बायं हमा ये सब तस्लीम करते हैं कि सही हदीस वाजिब-उल-तामील है और इस बात पर कि जो कुछ उन अहादीस में मुंदरज है, वो नबी का कलाम है जिसे उन्होंने बज़बान इल्हाम फ़रमाया था। इस का ज़िक्र बाब माबाअ्द में होगा लेकिन वो ज़िक्र चंदाँ कार-आमद नहीं। अहादीस का मर्तबा जो कुछ हो लेकिन मुसलमानों के एतिक़ाद में वो सब इल्हामी हैं और नबी का हर फ़ेअल व क़ोल उनके नज़्दीक ऐसा क़ानून है जिसकी पैरवी को वो ऐसा ही लाज़िम जानते हैं जैसा कि मसीह के नमूने पर चलने को मसीही। शीया सुन्नीयों की छः सही किताबों सहाह सत्ता को नहीं मानते, लेकिन इस से ये साबित नहीं होता कि उन्हें हदीस से इन्कार है। उनके यहां भी हदीसों की पाँच किताबें हैं। पहली किताब को अबू जाफ़र मुहम्मद ने 329 हिज्री में यानी सही बुख़ारी से जो सुन्नीयों की निहायत मोअतबर किताब है सो बरस के बाद

जमा किया था। ग़रज़ कि मुसलमानों के सब फ़िर्क़े पहले और दूसरे अस्ल ईमान यानी क़ुरआन-व-हदीस को ख़ुदा की तरफ़ से जानते और मानते हैं। सुन्नीयों के मजमूआ-ए-अहादीस की जगह शीयों ने और मुक़र्रर कर लिया है। पस बड़ी बात जिस पर क़ायम रहना ज़रूर है, ये है कि सिर्फ क़ुरआन किसी मुसलमान के वास्ते काफ़ी नहीं।

3. इज्मा

ईमान की तीसरी अस्ल को इज्मा कहते हैं। इज्मा के मअनी जमा करने और जलसा करने के हैं। इस्तिलाह शरअ में इस के मअनी हैं "मुत्तफ़िक़ होना ख़ास आलिमों का किसी अम्र दीन पर।" मसीहीयों में इसी को बुज़ुर्गों का इत्तिफ़ाक़ राय कहते हैं, लेकिन अक़्लन ताबईन और तबअ ताबईन सहाबा के मजमूआ अरा (राय) का नाम इज्मा है। इब्ने ख़ल्दून कहता है कि "शरीअत की बिना (बुनियाद) सहाबा और उनके पैरौओं (मानने वाले) के आम इत्तिफ़ाक़ पर है यानी जिस बात को ताबईन और तबअ ताबईन क़ुबूल करें वही दाख़िल शरीअत है।" अबू बक्र का तक़र्रुर ख़िलाफ़त पर इज्मा-ए-उम्मत से था यानी तमाम गिरोह की इत्तिफ़ाक़े राय से हुआ था। नबी के अस्हाब को ख़ुदा व रसूल की बातों से ख़ास वाक़फ़ीयत थी। सिर्फ यही जानते थे कि क़ुरआन में आयात नासिख़ कौन सी हैं और मंसूख़ कौन सी हैं। इन बातों का और बहुतेरे और मुआमलात का इल्म उनसे फिर उस के जांनशीनों को पहुंचा, यानी ताबईन से तबा ताबईन को दीन का इल्म पहुंचा। बाअज़ मुसलमान मसलन वहाबी सिर्फ़ इज्मा सहाबा को मानते हैं, लेकिन और सब फ़िर्क़े इस इज्मा को अव्वल मर्तबा का मोअतबर जानते हैं और बाअज़ मुसलमान इज्मा मुहाजिरीन के भी क़ाइल हैं। मुहाजिरीन उन्हें कहते हैं जो हिज्रत कर के मदीना चले गए थे। आलिमों में बाअज़ ऐसे भी हैं जिनकी राय में इज्मा हर ज़माने में जायज़ है लेकिन अभी तक ऐसा अमल में नहीं आया क्योंकि अब कोई मुज्तहिद नहीं रहा। सबसे बड़ा मर्तबा जिस पर मुसलमान आलिम पहुंच सकता है मुज्तहिद का है। मुज्तहिद इज्तीहाद करने वाले को कहते हैं। इज्तीहाद का माद्दा वही है जो जिहाद का है। इस के इस्तिलाही मअनी मुंतक़ीयाना और अक़्ली नताइज के हैं और तारीफ़ लफ़्ज़

मज़्कूर की ये है कि उसूल-ए-फ़िक़्हा की तहक़ीक़ में ख़ास दर्जे का इख़्तियार हासिल करना। असलीयत इज्तिहाद की ये थी कि मुहम्मद अरबी ने एक शख़्स मसमाई मुआज़ को इस काम पर मामूर किया था कि यमन जा कर जो कुछ ज़कात का माल जमा हुआ हौ ले आए ताकि मुहताजों को तक़्सीम किया जाये और मुक़र्रर करते वक़्त कहा कि ऐ मुआज़ तू किस क़ायदे पर अमल करेगा? उसने जवाब दिया कि क़ुरआन के हुक्म के मुवाफ़िक़। फिर नबी ने कहा कि अगर इस क़िस्म की हिदायत तू क़ुरआन में ना पाए (तो)? मुआज़ ने कहा तो फिर नबी की सुन्नत के मुवाफ़िक़ अमल करूँगा और अगर सुन्नत से भी मालूम ना हो तो? मैं इज्तिहाद करूँगा और इसी पर कारबंद हूँगा। तब नबी ने हाथ उठा कर कहा कि सब तारीफ़ ख़ुदा को है जो अपने नबी के क़ासिद को जिस तरह चाहता है हिदायत करता है। (मदारिज-उन-नबुवाह सफ़ा 1009)

जवाज़ इज्तिहाद की भी दलील है क्योंकि इस हदीस से इज्तिहाद की इजाज़त पाई जाती है। जब नबी ज़िंदा थे तो लोग उनके पास जा कर शकूक (शक) को रफ़ा (दूर) कर सकते थे और जब चाहते ऐसी हिदायत पा सकते थे कि जिसमें ख़ता-व-ग़लती का इम्कान ना था। ख़लीफों को जो नबी के जांनशीन थे मुहम्मद अरबी के उन रावियों के मुवाफ़िक़ जो उन्हें मालूम थीं शरअ पर कारबंद होना पड़ा। वो मुल्कों की फ़ुतूहात में मसरूफ़ थे, ना उन्होंने जदीद आईन बनाने चाहे, ना उस शख़्स के तरीक़ों से जिसकी वो कमाल ताज़ीम करते थे रुगिरदानी की। आग़ाज़ इस्लाम में शरअ का इल्म महज़ हदीस से था किसी मसअले को निकालने में नज़र-व-फ़िक्र और दलाईल से जो क़ियास पर मबनी हों काम नहीं लेते थे (इब्ने ख़ल्दून की किताब जिल्द दोम, सफ़ा 469) मगर जब सल्तनत ने तरक़्क़ी पकड़ी और नई नई सूरतें पैदा हुईं और वो बातें पेश आईं जिनकी निस्बत मुहम्मद अरबी ने साफ़ हिदायत नहीं की थी तो इज्तिहाद की ज़रूरत हुई। अह्द ख़िलाफ़त ख़ुलफ़ाए राशिदीन यानी अबू बक्र व उमर उस्मान व अली में मोमिनों का ये दस्तूर था कि जब कोई नई सूरत पेश आती तो उनसे पूछते कि किस तरह अमल करना चाहीए, क्योंकि इन के बराबर नबी की बातें और काम कोई नहीं जानता था। जब कभी किसी मसअले में पेचीदगी वाक़ेअ होती तो वो

नबी के किसी क़ौल व फ़ेअल को ऐसा याद कर के ऐसा तस्फ़ीया कर सकते थे कि वो मसअला हल हो जाता। इस तरीक़ से सब मुसलमान उनकी मर्ज़ी व हिदायत पर अमल करने को राह-ए-हक़ की पैरवी जानते थे। लेकिन चौथे ख़लीफ़ा हज़रत अली की वफ़ात के बाद ख़ाना जंगियों और फ़साद बाहमी से दीन में रख़्न पड़ गया। मदीना में जहां के लोगों को मुहम्मद अरबी के हालात ख़ूब मालूम थे और जिस जगह के लोग मुम्ताज़ नबी समझ कर बड़ी ताज़ीम व तकरीम करते थे, दीनदार आदमीयों ने क़ुरआन और सुन्नत और चारों ख़लीफों के इज्तिहाद का हिफ़्ज़ करना शुरू की। इन आदमीयों को हिदायात दीन में लोग ज़ी एतबार जानते और उनके फ़ैसलों को रसूम मदीना कहते थे। ये समझना कुछ दुशवार नहीं कि जिस मज़्हब में कुल मुआमलात व इबादात का मदार जो नई बातें और जदीद सूरतें पेश आईं उनका इंतिज़ाम सुन्नत व इज्तिहाद ठहरा तो इस मज़्हब में ना सिर्फ जाअली (मन घड़त) हदीसें बनाने की रग़बत पैदा होगी बल्कि चंद ही मुद्दत में इस पर अमल करना दुशवार हो जाएगा। इस वास्ते निहायत ज़रूरी हुआ कि तमाम हदीसों को जो बे-तर्तीब थीं और ख़लिफ़ा व मुज्तहिदीन के अहकाम को तर्तीब दिया जाये। चुनान्चे यही इल्म फ़िक़्ह की इब्तिदा हुई जिसे चार बड़े आलिम इमामों ने निकाला। सिवाए शीयों के और सब मुसलमान चार इमामों में किसी एक के पैरौ (मानने वाले) ज़रूर होते हैं। ये चारों इमाम यानी अबू हनीफ़ा, इब्ने मालिक, शाफ़ई और इब्ने हम्बल बहुत बड़े मुज्तहिद गुज़रे हैं। सुन्नीयों के एतिक़ाद में इनके बाद फिर कोई मुज्तहिद नहीं हुआ, मसलन फ़िक़्ह की एक किताब में जो हिन्दुस्तान में बहुत मुरव्वज है लिखा है कि "इज्मा के ये मअनी हैं कि चारों इमामों के सिवाए और किसी की पैरवी जायज़ नहीं। इस ज़माने में ना क़ाज़ी कोई हुक्म, ना मुफ़्ती कोई फ़त्वा ख़िलाफ़ राय चारों इमामों के दे सकता है। किसी दूसरे की पैरवी जायज़ नहीं है। पस जहां तक कि सुन्नत का ताल्लुक़ है तग़य्युर व तरक़्क़ी ग़ैर-मुम्किन है।"

इमाम अबू हनीफा बसरा में 80 हिज्री को पैदा हुए लेकिन उन्होंने बहुत ज़माना अपनी उम्र कुफ़ा में बसर किया। ये शख़्स अहले शरअ के अव्वल गिरोह का बानीमबानी (मुबिना की जमा, बुनियादें) और मुअल्लिम

था जो फुक़्हा ए इराक़ के नाम से मशहूर थे। उनका मज़्हब इमाम मालिक से बहुत मुख़्तलिफ़ है। इमाम मालिक ने मदीना में रह कर आपको ख़ासकर हदीस पर महदूद रखा यानी उनके इज्तिहाद की बिना (बुनियाद) ख़ास कर हदीस पर है। मदीना वालों को नबी के क़ौल व फ़ेअल ख़ूब याद थे, बख़िलाफ़ इस के कूफ़ा जो हनीफा का घर था मुहम्मद अरबी की वफ़ात के बाद आबाद हुआ। इस सबब से वहां कोई ऐसा ना था जिसे नबी की बातें याद होतीं। वहां पर अहले इस्लाम को बहुतेरी और क़ौमों से ताल्लुक़ हुआ। अगर ये लोग मुसलमान हो गए तो ख़ैर अच्छा हुआ और अगर ऐसा ना था तो भी उनकी और मोमिनों की शरअ मुहम्मद अरबी की ताअलीम थी। क़ुरआन की बहुतेरी आयात इस अम्र की सेहत पर दलालत करती हैं। "और उतारी हमने ऊपर तेरे किताब बयान करने वाली हर चीज़ की" (सुरह नहल 16 आयत 89) "नहीं कम की हमने इस किताब में कोई चीज़" (सुरह अन्आम 6 आयत 9) इन नुसुस से ये सबूत निकालते हैं कि कुल शरीअत पहले से क़ुरआन में रख दी थी। अगर कोई मसअला ऐसा हो कि वो किसी आयत क़ुरआनी से साफ़ नहीं मालूम होता हो तो उस वक़्त अक़्ल से सोचा जाता था, मसलन सूरह बक़रह आयात 29 में आया है कि "वो है जिसने पैदा किया तुम्हारे वास्ते जो कुछ ज़मीन के बीच सारा" हनफ़ी मज़्हब वाले इस के ये मअनी लेते हैं कि ये ख़ुदा की बख़्शिश है जिसने सब हुक़ूक़ मिल्कियत को साक़ित कर दिया है। तुम्हारे मुसलमानों से ख़िताब है और ज़मीन तीन हैसियत पर मुनक़सिम हो सकती है।

(1) ज़मीन जिसका कभी कोई मालिक ना था।

(2) ज़मीन जिसका कोई मालिक तो था मगर उसने उसे छोड़ दिया है।

(3) फ़िरों की जान-ओ-माल।

अख़ीर तक़्सीम से वही फ़क़ीह गुलामी और ग़ारतगरी और कुफ़्फ़ार से हमेशा जंग करने को जायज़ रखते हैं। अब और हाल अबू हनीफा का सुनिए। एसी हदीसें बहुत थोड़ी हैं जिन्हें हनफ़ी मज़्हब ने मोअतबर तस्लीम किया है और इस मज़्हब का ये दावा है कि वो बदलायल अक़्ली क़ुरआन से अख़ज़ किया गया है। इस से इन्कार नहीं हो सकता कि ये मज़्हब बहुत बेबाकी से

दलाईल अक़्ली को काम में लाता है। लोगों की हाजतों और ख़्वाहिशों पर और फ़िल-हक़ीक़त उन सब बातों पर जिन्हें यूरोप के लोग क़ानून बनाने के आला उसूल समझते हैं इराक़ के फ़क़ीह बेकार समझ कर मुतलक़ लिहाज़ नहीं रखते हैं। उनके नज़्दीक वज़ा करना क़वानीन का कोई ऐसा इल्म नहीं है जो क़ुरआन और तजर्बों पर मौक़ूफ़ हो बल्कि महज़ अक़्ली और यक़ीनी है। (इसबर्न की किताब दरबाब इस्लाम बाद ख़ुलफ़ा, सफ़ा 29)

इमाम मालिक (39 हिज्री) मदीना में पैदा हुए और उनका इज्तिहाद जैसा कि होना चाहीए था इस सबब से कि उन्हें इस मुतबर्रिक शहर से ताल्लुक़ था मदीना के दस्तुरात के मुवाफ़िक़ है। उन्होंने ये काम किया कि जो हदीसें मदीना में मुरव्वज थीं उन्हें तर्तीब देकर और जमा कर के उनसे और नीज़ दस्तुरात मदीना से शरीअत का ऐसा इल्म निकाला जो मुआमलात दुनिया में कार-आमद हो। जो किताब उन्होंने तालीफ़ की थी उसे मुवत्ता कहते हैं। मुवत्ता के मअनी हैं "ख़ूब छानी हुई राह।" बेशतर मज़ामीन इस के वो शरई उसूल और आईन हैं जो अस्हाब ने बताए थे। इस वास्ते उन्होंने जो कुछ तरीक़ इज्तिहाद बयान किया है मुअर्रिख़ाना (तारीख़ लिखने वालों तरह) और समाई (सुना हुआ) रिवायती है। अबू जाफ़र मुहम्मद ने उनके मरने पर एक मर्सिया कहा है जिसका मज़्मून ये है कि "उनकी रिवायत निहायत मोअतबर थीं। उनकी संजीदगी और मितअनत मोअस्सर थी। जब वो हदीसें और रिवायतें बयान करते तो तमाम सुनने वाले हैरत में डूब जाते।" (इब्ने ख़ुलक़ान की किताब अलग़ात फ़ी अहवाल अस्लाफ़ जिल्द 2, सफ़ा 594) "हदीसों से आप बहुत ख़ुश होते थे और कहते थे कि नबी अल्लाह की बातों की ताज़ीम से मेरा दिल ख़ुश होता है और कोई हदीस बग़ैर वुज़ू नहीं पढ़ता हूँ।" (इब्ने ख़ुलक़ान की किताब जिल्द 2, सफ़ा 546) जब मौत क़रीब आई तो भी उन्हें ये अंदेशा रहा कि मबादा हुक्म शरअ में कोई बात अपनी तरफ़ से कह दी हो। जब अख़ीर मर्ज़ में एक दोस्त उनसे मिलने गए और रोते देखकर सबब पूछा तो ये जवाब दिया कि क्यों नहीं रोना चाहीए और मुझसे ज़्यादा और कौन मुस्तहिक़ रोने का है? बख़ुदा मैं चाहता हूँ कि शरीअत के जिस मसअले पर कोई हुक्म अपनी तरफ़ से मैंने दिया इस पर मकररसा

करर (बार-बार, दुबारा तिबारा) चाबुक लगाए जाएं।" (इब्ने ख़ुलक़ान की किताब जिल्द 2, सफ़ा 548)

इमाम शाफ़ई क़ौम क़ुरैश से 150 हिज्री में पैदा हुए थे। उनकी जवानी मक्का में गुज़री लेकिन आख़िर को क़ाहिरा में सुकूनत इख़्तियार की और वहां ही 204 हिज्री में वफ़ात पाई। इब्ने ख़ुलक़ान उनकी निस्बत लिखते हैं कि "क़ुरआन और सुन्नत व अक़्वाल अस्हाब का इल्म उन्हें इस क़द्र था कि अपना नज़ीर नहीं रखते। इमाम इब्ने हम्बल कहते हैं कि कभी एक शब भी ऐसी नहीं गुज़री कि इमाम शाफ़ई के वास्ते मैंने ख़ुदा से रहमत व बरकत ना मांगी हो।" अबू तुहूर कहते हैं **"जो कोई कहे कि मैंने शाफ़ई के मिस्ल दूसरा भी इल्म व फ़ज़्ल में देखा तो वो काज़िब (झूठा) है।"** उन्होंने दोनों इमामों के इजतिहादात को बग़ौर पढ़ने के बाद जो कुछ बेहतर जाना उस से अख़ज़ कर के अपना इज्तिहाद अलैहदा (अलग) क़ायम किया। उनका इज्तिहाद अबू हनीफा के तरीक़ से मुख़ालिफ़ था। शाफ़ई इत्तिबा अहादीस में बेशतर इब्ने मालिक के मुवाफ़िक़ हैं। हनफ़ी को दर सूरत अदमे मौजूदगी किसी साफ़ और सरीह क़ौल के अगर क़ुरआन का एक फ़िक़्रह या फ़क़त एक हदीस भी ऐसी मिल जाये जिससे मसअला मतलूबा निकल आए तो वो काफ़ी समझता है, लेकिन शाफ़ई ऐसी सूरतों में अगरचे उस के क़ियास का माख़ज़ हदीस ही हो जब तक मुतअद्दिद हदीसें इस बाब में नहीं पाता मुत्मइन नहीं होता है।

चारों में आख़िरी इमाम हम्बल थे। ये बग़दाद में 164 हिज्री में पैदा हुए थे। इस तरीक़ से साफ़ ज़ाहिर होता है कि उन्होंने फिर बिल्कुल हदीस की तरफ़ रुजू किया है। (सफ़ा 28) बाद ख़िलाफ़त ख़लीफ़ा मामूं रशीद बग़दाद में रहते थे। उस अह्द में माअक़ूलियों (माअक़ूली मंतक़ी, फ़ल्सफ़ी) की कस्रत से और हुक्काम की ऐश-ओ-इशरत के रिवाज से दीनदारी मारिज़-ए-ख़तर में थी। फ़ुक़हा अदालत के तरफ़दार मज़्हब के हनफ़ी थे। उन्होंने आज़ाद ख़लीफ़ा को ख़ुश करने को इमामों के इजतिहादियात की ख़ूब तहक़ीक़ की और उयूब (एब) निकाले और ऐसा मालूम हुआ कि इन्सान की तहक़ीक़ दीन की जरूरतों को ज़ईफ़ कर देती है। इब्ने हम्बल ने उस वक़्त का ये जबर किया कि जिस तरीक़ पर और इमाम हदीस व क़ुरआन से अक़्ली मुतालिब निकालते थे इस से अहितराज़ किया। उन्होंने देखा कि तरीक़ मालकी जो

रसूम मदीना पर मबनी था इतनी वसीअ और तरक़्क़ी पज़ीर सल्तनत के कुल अग़राज़ को काफ़ी नहीं है। इस में ज़रूरत कुछ और बढ़ाने की है। पस उन्हें हदीस से बेहतर और यक़ीनी सूरत कोई नज़र नहीं आई और कुछ ना था तो हदीसें इल्हामी तो ज़रूर थीं। पस ये एक ऐसी महफ़ूज़ बुनियाद थी जिस पर उन्होंने अपने मज़्हब की बुनियाद क़ायम करना बनिस्बत उस तरीक़ के जो अबू हनीफा ने इख़्तियार किया था, जाना।

इब्ने हम्बल का मज़्हब अब क़रीब माअदूम (गायब होने) के है। इस फ़िर्क़े का कोई मुफ़्ती मक्का में नहीं है। अगरचे और तीनों के मज़ाहिब मौजूद हैं। मगर उनके इज्तिहाद का असर ख़ुसूसुन अहादीस पर अमल करने में आज तक बाक़ी है। चारों इमामों के दर्मियान इम्तियाज़ इस तरह किया जाता है कि अबू हनीफा ने अक़्ल और राय से काम लिया। मालिक और हम्बल ने रिवायत और सुन्नत को तर्जीह दी। बाअज़ अहादीस के एतबार व ग़ैर एतबार में उनके दर्मियान इख़्तिलाफ़ है। लेकिन सही हदीस के मुस्तनद होने में किसी को कलाम नहीं। मसाइल व अहकाम शरई में इमामों की राएं ईमान का तीसरा रुक्न हैं। ये गुमान किया जाता है कि जिस तरह अगले मुसलमानों की सल्तनत की जदीद जरूरतों के पेश आने से ये मज़ाहिब निकले ऐसे हाल की अख़्लाक़ी और तमद्दुनी जरूरतों के वाक़ेअ होने से नए इमाम पैदा हो जाएं जो अज़ सर-ए-नौ इज्तिहाद करें, लेकिन फ़िल-हक़ीक़त ऐसा नहीं है। सुन्नीयों का अक़ीदा ये है कि चारों इमामों के वक़्त से आज तक कोई मुज्तहिद नहीं गुज़रा जो उनकी मानिंद कुछ कर सका हो। इत्तिफ़ाक़ से कोई नई सूरत पैदा हो तो जो शख़्स फ़ैसला करने वाला हो उसे चाहीए कि अपने इमाम के मज़्हब के मुवाफ़िक़ तस्फ़ीया करे। इस से किसी क़िस्म का तग़य्युर नहीं होने पाता और नई बात ख़्वाह अच्छी हो निकालना सख़्त मना है तो इस से दीने इस्लाम सिर्फ एक हालत पर रहता है, कुछ तरक़्क़ी नहीं होने पाती। कोई क़ानून अपनी तरफ़ से नहीं बता सकते। कोई बात चारों इमामों के इज्तिहाद के ख़िलाफ़ नहीं कर सकते। इस सबब से मुसलमानों के किसी मुल्क में इस्लाह क़ानूनी मुम्किन नहीं। कोई ऐसा ज़रीया नहीं कि नई तहज़ीब और उम्दा उसूल सीखें। सुल्तान या ख़लीफ़ा की इताअत लोग तभी तक कर सकते हैं जब तक कि वो अहकाम शरअ पर है।

पस हमारा सवाल शर्क़ी मसअला हुकूमत की निस्बत ये नहीं है कि आया मुहम्मद अरबी ने फ़रेब दिया या ख़ुद फ़रेब खाया। आया फ़िल-हक़ीक़त रसूल थे या अय्यार थे, आया क़ुरआन फ़िल-जुम्ला अच्छा है या बुरा और जो तग़य्युर मुहम्मद अरबी के सबब से हुआ उस से अरब बेहतर हो गया या बदतर, बल्कि बहस इस पर है कि मज़्हब और तमद्दुन के एतबार से इस्लाम का क्या असर हुआ और है और अब इस का अमल किस तरह पर हुआ करता है और सुन्नी मुसलमानों का क्या अक़ीदा है और किस तरह इस अक़ीदा पर अमल करते हैं। ख़ुलासा इस अक़ीदों का ये है कि जो तरीक़ मुहम्मद अरबी ने और उनके अस्हाब ने और चारों इमामों ने बताया है निहायत मुकम्मल है।[4] नई बात निकालना ग़लती से बदतर है। ये सरासर ख़ता और गुनाह है। सच्चे मुसलमान का बड़ा फ़ख़रो शौकत यही है कि दीन व दुनिया दोनों के वास्ते ये मज़्हब ऐसा मुकम्मल है कि कुछ तरक़्क़ी व तग़य्युर की गुंजाइश नहीं। इन क़वाइद में जिनसे इस्लाम का दुनयवी निज़ाम है ख़ुदा के मज़ीद इर्फ़ान या उक़्बा के अज़ दियाद (ज़्यादती) इल्म का मुतवक़्क़े होना मुहम्मद अरबी के कशफ़ व इल्हाम को ग़ैर मुकम्मल जानना है जिसे कोई मुसलमान कभी क़ुबूल नहीं करेगा। निहायत पुख़्तगी से ये कहा जाता है कि तुर्की की दुरुस्ती के वास्ते जो कुछ चाहीए वो ये है कि सुल्तान के अहकाम बजाय शरीअत के क़रार दीए जाएं। अगर ऐसा हो सके तो दरहक़ीक़त तुर्की की इस्लाह हो जाये लेकिन फिर वो मुसलमानों की अमल-दारी नहीं कहलाएगी। ये बात कि अबू हनीफा का तरीक़ ज़माना-ए-हाल के

---

4 जुनूबी हिन्दुस्तान के मुसलमान सर्राफों ने इसलिए कि दीन का ख़िलाफ़ ना हो अजब तरीक़ा जवाज़ का निकाला है। रुपया से रुपया का नफ़ा जायज़ नहीं मसलन फ़र्ज़ करो कोई शख़्स एक आना रुपया के सूद से चार रुपया क़र्ज़ ले और एक महीने के बाद एक रुपया और एक चवन्नी क़र्ज़ख़्वाह को अदा करे तो जायज़ नहीं क्योंकि रुपया से रुपया लेना हराम है। लेकिन अगर वो शख़्स चार रुपया और एक चवन्नी के पैसे दे तो जायज़ है क्योंकि रुपया से ताँबा लेना गो मूल से कितना ज़्यादा हो बमंज़िला तिजारत के तसव्वुर किया जाएगा और ये जायज़ है। इसी तरह जानदार चीज़ों की तस्वीरें हराम हैं। जब अंग्रेज़ी रुपया अव्वल हिन्दुस्तान में जारी हुआ तो दीनदार मुसलमानों को इस के इस्तिमाल में कलाम हुआ। लेकिन बड़ी बहस के बाद आलिमों ने ये फ़त्वा दिया कि चूँकि इस रुपया में आँखें ऐसी छोटी बनी हैं कि अच्छी तरह नहीं मालूम होती हैं इस वास्ते इस रुपया का इस्तिमाल जायज़ है। पस इस क़िस्म की तावीलें मुसलमानों में अक्सर हुआ करती हैं जिनसे दीन पर बड़ा धब्बा आ गया है और ये ज़ाहिर होता है कि ये शरीअत किस सख़्त क़द्र है।

मुनासिब नहीं ज़न (गुमान) व यक़ीन के मर्तबा से ज़्यादा है, लेकिन ख़लीफ़ा इस्लाम का यही दावा सुल्तान को भी है इसी लिए होता है कि मिल्लत हनफ़ी को क़ायम रखे और दीन की हिफ़ाज़त करे।

सुल्तान मुज्तहिद नहीं है क्योंकि सुन्नीयों में के तुर्क भी इसी फ़िर्क़े में हैं। अब ऐसा कोई नहीं है, अब अगर कोई सूरत ऐसी वाक़ेअ हो कि नया क़ानून बनाने की ज़रूरत पड़े तो चाहीए कि इमामों की राय से ज़रा ख़िलाफ़ ना हो। शीया बमुक़ाबला सुन्नीयों के ये अक़ीदा रखते हैं कि मुज्तहिद अब तक होते हैं। लेकिन ये राय इमामत के अजीब मसअले के सबब से पैदा हुई है जिसकी बह्स आगे आएगी। पहली नज़र में ऐसा मालूम होगा कि अगर ऐसे मुज्तहिद हो सकते हैं जो अपने इख़्तियार से अहकाम जारी कर सकते हैं और अपनी तरफ़ से ज़माने की मुनासिब राय दे सकते हैं तो शीयों में जिनसे फ़ारसी में तरक़्क़ी की कुछ उम्मीद हो सकती है इस में शक नहीं कि उनमें मज़हबी इज़तिराब और वहम की बातें और इत्तिहाद ज़्यादा है। लेकिन तरक़्क़ी की राह में कुछ अपने हमसाइयों से बेहतर नहीं हैं और मुज्तहिद के होने से जो नफ़ा बज़ाहिर मालूम होता था वो इस सबब से मादूम (गायब) है कि ये ज़रूरी है कि इस के सब फ़ैसले क़ुरआन-ओ-सुन्नत के या जिस चीज़ को शीया बजाय सुन्नत के क़रार देते हैं उस के मुवाफ़िक़ हों।

शीया और सुन्नी दोनों गुज़श्ता ज़माने के मुर्दा तरीक़ पर तमाम आईन व क़वानीन बनाते हैं और ज़माना-ए-हाल की जरूरतों का कुछ लिहाज़ नहीं करते। पुराना क़ानून अपनी हुकूमत से दोनों हुक्मरानी करता है। वहाबी मुतलक़ इज्मा से इन्कार करते हैं लेकिन इज्मा अस्हाब के वो भी क़ाइल हैं। सो जब कभी उन्हें इस्लाम के पियो रुटीन यानी ख़ालिस सुन्नत पर चलने वाले कहा जाये तो ये ज़रूर याद रखना चाहीए कि वो भी ना सिर्फ क़ुरआन को बल्कि सुन्नत और कुछ इज्मा को अरकान-ए-ईमान समझते हैं। इज्मा उस वक़्त वाजिब-उत्ताअमिल होता है कि सब मुज्तहिदीन मुत्तफ़िक़-उल-राए या बिलअमल हों। इज्तिहाद के कुल मज़्मून को सल्तनत इस्लाम की इस्तिलाहात से बहुत बड़ा ताल्लुक़ है। इस ज़माना के एक मुहम्मदी मुसन्निफ़[5] ये साबित

[5] वक़ाऐ मुहम्मद साहब मुसन्निफ़ सय्यद अमीर अली, सफ़ा 209

करना चाहते हैं कि इस्लाम में अलबत्ता तरक़्क़ी की गुंजाइश है और ये कि सख़्त व तंग राह होने से इस क़द्र दूर है कि तरक़्क़ी की नई सूरतें इस में बख़ूबी दाख़िल हो सकती हैं क्योंकि नबी ने अमली उसूल के ज़माने में पीशीनगोई की थी और फिर एक रिवायत जो असलीयत इज्तिहाद के बयान में क़ब्ल अर्ज़ीं बयान कर चुका हूँ अपने क़ौल के इस्बात सेहत में नक़्ल करते हैं। लिखते हैं कि "मुआज़ ने कहा कि पहले मैं क़ुरआन को देखूँगा और फिर नबी के अक़्वाल को और जो इन दोनों में नहीं पाऊँगा तो जो कुछ मेरी अक़्ल में आएगा वो करूँगा।" ये सच्च है कि इज्तिहाद के लफ़्ज़ी मअनी कोशिश बलीग़ के हैं और ये भी दुरुस्त है कि अव्वल दर्जा के सहाबा और मुज्तहिदीन मशकूक सूरतों में अपनी अक़्ल को काम में लाने के मजाज़ और चीज़ों की हैसियत के मुवाफ़िक़ इन सूरतों के तस्फ़ीया के मुख़्तार थे। लेकिन इस के साथ ये शर्त हमेशा रही कि वो तस्फ़ीया क़ुरआन या सुन्नत के किसी हुक्म के ख़िलाफ़ ना हो। लेकिन इस से ये किसी तरह साबित नहीं होता कि इस्लाम में तरक़्क़ी की गुंजाइश है या ये कि मुहम्मद अरबी ने अमली उसूल के ज़माने में ख़बर दी थी या ये कि उनकी बातें सरगर्मी और जोश दिलाती हैं कि इन्सान के दिल मुर्दा में जान ताज़ा डालते हैं, क्योंकि अगरचे कलिमा इज्तिहाद बनिस्बत उन आदमीयों के जिनका ज़िक्र कर चुका हूँ किसी क़द्र वुसअत से तर्जुमा किया जाये यानी उस के मअनी अक़्ल के मुवाफ़िक़ काम करने के लिए जाएं। लेकिन दर-हक़ीक़त इस ज़माने में इस लफ़्ज़ के ये मअनी नहीं रहे हैं। अब वो लफ़्ज़ महज़ इस्तिलाही हो गया है और फ़ी ज़मानन इस का इस्तिमाल ख़ालिअन क़ुरआन-ओ-सुन्नत के मुवाफ़िक़ इस मअनी में है कि किसी पेचीदा मुआमले में इज्तिहाद किया जाये। लेकिन बिलफ़र्ज़ इस लफ़्ज़ के ये महदूद मअनी ना होते और अब भी वही मअनी होते जो अव्वल किसी ज़माने में लिए जाते थे। तो भी सय्यद का दावा साबित ना होता दर हाल ये कि चारों इमामों के अह्द से दीनदारों का ये अक़ीदा है कि अव्वल मर्तबे का मुज्तहिद इस वक़्त तक कोई नहीं हुआ है और बजुज़ इस दर्जे के आदमीयों के और किसी को ये इख़्तियार नहीं मिला है और अगर फ़क़त दलील के लिए फ़र्ज़ भी कर लें कि सय्यद साहब का तर्जुमा अज़रूए सर्फ़-ओ-नहव और मुहावरे के दुरुस्त है तो जो कुछ नतीजा इस से निकलेगा वो ये है कि अमली उसूल का ज़माना फ़क़त दो सौ बरस

तक रहा। मैं तस्लीम करता कि इस्लाम में कभी भी ऐसा ज़माना ना था और बिलयक़ीन ना मुसलमानों की ईलाहीयात ना मुआमलात की तरक़्क़ी हमारे मुख़ालिफ़ दावे का इन्कार कर सकती है यानी ये कि मुहम्मद अरबी ने उसूल नहीं बताए बल्कि नसीहतें कीं। तुर्क भी सुस्त निहाद और मुर्दा-दिल आदमीयों में शामिल हैं। लेकिन नहीं मालूम होता है कि नबी की ज़बान एजाज़ और अजीब बातों से क्या सरगर्मी और जोश उनमें हुआ या कौन सी जान ताज़ा और नई ज़िंदगी उनमें डाली या अमली उसूल के ज़माने ने कौन सी पायदार नेकी की।

4. क़ियास

क़ियास इस्लाम की चौथी अस्ल है। इस लफ़्ज़ के लुगवी मअनी सोचने और मुक़ाबले के हैं। हिन्दुस्तानी और फ़ारसी में इस का आम इस्तिमाल बमाअनी जानने और ख़्याल करने वग़ैरह के है। ईस्तलाहन इस के मअनी ये हैं कि उलमा क़ुरआन, सुन्नत और इज्मा की ताअलीम से सोच सोच कर बातें निकालें, मसलन क़ुरआन में आया है कि अपने माँ बाप की ताज़ीम करो और उनकी नाख़ुशी के मूजिब मत हो। इस से ज़ाहिर है कि वालदैन की ना-फ़रमानी ममनू है और जो कोई इस हुक्म को ना माने तो मुस्तौजिब सज़ा का होगा। इसी तरह अगर औलाद आमदनी के मुवाफ़िक़ अपने बाप के क़र्ज़े की ज़िम्मेदार हो तो इस से ये भी निकलता है कि जो काम वालदैन पर फ़र्ज़ हैं अगर वो किसी वजह से इस की तामील से क़ासिर हों, मसलन हज वग़ैरह ना कर सकते हों तो उन बेटों पर जो आक़िल और बालिग़ हैं इस की तक्मील वाजिब है। सहाबा से ये रिवायत है कि एक रोज़ कोई औरत नबी के पास आकर कहने लगी कि मेरा बाप बग़ैर हज किए मर गया है। नबी ने पूछा कि अगर तेरा बाप कुछ क़र्ज़ छोड़ मरता तो तू क्या करती? उसने कहा कि मैं इस क़र्ज़ को अदा करती। अच्छा तो ये भी अदा कर। क़ुरआन में ख़मर (शराब) यानी मुस्किर (नशा आवर) का इस्तिमाल मना है तो इस से क़ियास किया जाता है कि शराब और अफ़यून भी हराम है। अगरचे उस का नाम क़ुरआन में नहीं आया है। वहाबी इस मुमानिअत को तंबाकू के इस्तिमाल तक वुसअत देते हैं यानी ये कहते हैं कि तंबाकू

मुस्किरात में दाख़िल है, इस सबब से हराम है। फुक़हा समझते हैं कि इसी क़िस्म की सूरतों से अगले मुज्तहिदों ने ईमान की चौथी अस्ल क़रार दिया है। इस को एतबार अलअम्साल भी कहते हैं जिसके मअनी मुताबअत मिस्ल के हैं।

ये ख़्याल सुरह हश्र 59 आयत 2 की इस इबारत से कि "इबरत पकड़ो ऐ आँखों वालो" पैदा हुआ है। क़ियास के बाब में सख़्त क़वाइद वज़ाअ किए गए हैं और ये अशद ज़रूरी है कि क़ियास किसी सूरत से क़ुरआन और सुन्नत और इज्मा के ख़िलाफ़ ना हो। फ़िल-हक़ीक़त इस में इस्लाम का अस्ल ख़्याल ये है कि शरीअत मुकम्मल है किसी बात की इस में कमी नहीं। अख़्लाक़ी और मुल्की कुल मुआमलात की तफ़्सील इस में है। जो पेचीदगी पैदा हो उस का दफ़ईया मुहम्मद अरबी की ताअलीमात में मौजूद है जो क़ानून नबी ने साफ़ बताया हो वो इज्तिहाद व क़ियास से ज़रूर निकलता है। इस से सब बातें एक ढंग पर रहती हैं और इख़्तिलाफ़ नहीं पड़ने पाता। लेकिन इस सबब से है कि ज़हन से ख़ुदा की बातों में काम लेना मौक़ूफ़ है और तहज़ीब की तरक़्क़ी मादूम हो गई है, मसलन जो कोई इस तरीक़ में दाख़िल होगा इस पर मुल्क व हुकूमत की गुलामी लाज़िम होगी। जो कुछ इल्म व यक़ीन से बोसीदा क़वानीन की हदूद से मुतजाविज़ है वो बिल्कुल दूर कर दिया है। मुसलमान सल्तनतों के ज़वाल में अजीब मुमासिलत व क़राबत है जो इसी आम सबब पर दलालत करती है यानी ऐसा मालूम होता है कि इसी सबब से मुसलमानों के तमाम मुल्कों में ज़वाल आ गया है। तमाम उसूल क़ुरआन-ओ-सुन्नत में मौजूद हैं और जो कुछ उनसे मुवाफ़िक़ नहीं बिलज़रूर नादुरुस्त है।

क़ुरआन-ओ-सुन्नत दोनों ख़ता व ग़लती से ख़ाली हैं। पस क़ियास भी ऐसी चीज़ नहीं जिससे तरक़्क़ी की कुछ उम्मीद हो या पुरानी बेड़ियाँ इस से दूर हो सकें क्योंकि ये ज़रूरी है कि क़ियास को भी जो फ़िल-हक़ीक़त मौजूदा जरूरतों को ग़ैर मतकफ़ी और फ़ी नफ़्सही एक हाल पर है अज़ रूए उसूल मुतलक़ अलैह्दगी ना हो। निहायत अलमुराद में लिखा है कि हम मुक़य्यद हैं चारों इमामों की तक़्लीद पर। तफ़्सीर अहमदी में हमने पढ़ा है कि चारों इमामों के सिवाए दूसरे की तक़्लीद हराम है। शायद कोई

मोअतरिज़ कहे कि ये ताज़ीम ऐसी है जैसी बुत-परस्त अपने मुर्दा बुज़ुर्गों के साथ करते हैं। इस का जवाब दीबाचा शरह दिक़ाया में मुसन्निफ़ ने इस तरह दिया है कि ये इस क़िस्म की ताज़ीम नहीं है। मुज्तहिद शरीअत के अहकाम अपने पास से नहीं देते थे बल्कि वो तो उन अहकाम के हम तक पहुंचाने में बमंज़िला वसाइल के हैं, मसलन इमाम अबू हनीफा का क़ौल है "अव्वल क़ुरआन से और फिर अहादीस से और फिर अस्हाब के अहकाम से हम अख़ज़ करते हैं जिस पर अस्हाब मुत्तफ़िक़ थे, इस पर अमल करते हैं और जिसमें उन्हें शक था इस में हमको भी शक है।" मुफ़स्सिर जलाल उद्दीन महली कहते हैं कि "अवामुन्नास और नीज़ उन लोगों को जो मुज्तहिद के मर्तबे तक नहीं पहुंचते हैं चारों इमामों में से एक की तक़्लीद ज़रूर है और जब वो एक मज़्हब में दाख़िल हो यानी जिस मसलक को इख़्तियार करे फिर उसे ना छोड़े।" यहां पर ये एतराज़ वारिद हो सकता है कि इन इमामों की तक़रीरी की निस्बत ख़ुदा ने कोई हुक्म नहीं दिया था। इस के जवाब में ये कहा जाता है कि एक हदीस में आया है कि "फ़रमाया नबी ने कि पैरवी करो उस राह की जिस पर बहुत सी जमाअत हो और जो कोई इस से तजावुज़ करेगा जहन्नम में दाख़िल होगा।" इमामों के मुक़ल्लिद बहुत से लोग हैं। इलावा अज़ीं बिलइत्तफ़ाक इज्मा-ए-उम्मत ये क़रार पा चुका है कि इमाम इस मर्तबे के लायक़ हैं जो उन्हें दिया गया है। तफ़्सीर अहमदी में लिखा है कि ये बड़ी बरकत है और ख़ुदा का फ़ज़्ल है कि हम इन इमामों के मुक़ल्लिद हैं। ख़ुदा को ये तक़्लीद पसंद है। इस में सबूत व इस्तिदलाल की कुछ ज़रूरत नहीं है। अगर कोई ये एतराज़ करे कि नबी के अह्द में मुज्तहिद नहीं था, हर शख़्स उसी पर अमल करता था जो उसने नबी से सुना था, किसी ने अपने अक़ीदे या तरीक़ को किसी मख़्सूस सहाबा के राय पर महदूद नहीं रखा था तो इस का जवाब इस तरह दिया जाये कि नबी की वफ़ात के बाद मुद्दत तक अस्हाब ज़िंदा रहे और इसी सबब से जो अहादीस उस वक़्त मुरव्वज थीं मोअतबर समझी जाती थीं। लेकिन अब ये सूरत नहीं है, इस वजह से इमामों की और उनके सालिक (राह चलने वाला या पैरोकार) की ज़रूरत है।

ये चारों उसूल क़ुरआन, सुन्नत, इज्मा और क़ियास दीनदार मुसलमानों के इल्म व यक़ीन में पुख़्ता मज़्हब और हुकूमत की कामिल बुनियाद हैं और इस से तरीक़ इस्लाम क़ायम रहता है लेकिन माक़ूल तरक़्क़ी के मानेअ (रुकावट) हैं। इन सब बातों को जो कुछ हाल के मुआमला-ए-हुकूमत से ताल्लुक़ है वो बख़ूबी ज़ाहिर है। तुर्की के मुक़द्दमे पर फिर रुजू करो। उनकी हुकूमत की वज़ा दीनी यानी ख़ुदा की हिदायत के बमूजब है। आज़ादी की कमी जैसी इस मुल्क में है ऐसी यूरोप के किसी मुल्क में कभी नहीं हुई। इस हुकूमत को अपनी हालत बदलने की कुछ ख़्वाहिश नहीं। किसी ख़्याल का पैदा करना या अपनी तबईत से कोई माक़ूल हुक्म देना सख़्त ममनू (मना) है तुर्को[6] ने दुनिया के लिए कभी कोई भलाई नहीं की। कोई क़ौम जिसके दीन के उसूल ये हों जो इस बाब में मज़्कूर हैं किसी तरह तरक़्क़ी नहीं कर सकती। जब ख़ारिजी और तिजारती मुआमलात की तरफ़ ख़्याल करो तो बमुक़ाबला इन मुल्कों के जिनमें ये हिम्मत और क़ुव्वत है कि क़ौम बन कर आज़ादी से रह सकते हैं मुसलमानों की सल्तनतें मुद्दत से नाकाम और पसमांदा हैं। किसी ने ये ख़ूब कहा है कि सिर्फ स्पेन अलबत्ता ऐसा मुल्क है जिसमें रूमी तहज़ीब जो मसीही सल्तनत से बिल्कुल जुदा है एक दफ़ाअ बिल्कुल फैल गई थी। लेकिन ये जुदाई भी अगरचे मुद्दत तक रही नापायदार और ग़ैर मुस्तक़िल थी। आठ सौ बरस की जद्द-ओ-जहद के बाद आला क़िस्म के अख़्लाक़ी इंतिज़ाम ने अदना पर ग़लबा पाया और इस्लाम की ग़ासिब हुकूमत को निकाल बाहर कर दिया। ऐसा ही होना चाहीए था और ऐसा ही हमेशा होता रहेगा क्योंकि आज़ादी शख़्सी हुकूमत को ज़रूर दूर कर देगी। वो मसीही जो महकूम हो कर रहते हैं उनमें पोशीदा जान ऐसी है जो जल्दी या

---

6 गोथ ने इटली को बर्बाद किया लेकिन जो आग ख़ुद गोथ ने जलाई थी वही आख़िरश उस की साफ़ करने वाली हुई। सैक्शन ने बर्तानिया को ताख़त व ताराज किया लेकिन केलटक के गीतों ने सैक्शन की सख़्त तबीयत को मुलाइम कर दिया। दसेगाथ और फ्रैंक हर दिली और दंदल की बेरहमीयाँ इसी तहज़ीब की रोशनी ने मादूम कर दीं जिसके मिटाने पर वो बदल मसरूफ़ थी बल्कि सतहेअ के मैदान का वहशी तातारहन भी उस ज़माने में सख़्ती और वहशत से दस्त कश हुआ जब उसने पुनो नया के मैदान में खम्बे गाड़ दिए थे। लेकिन तुर्क ऐसी क़ौम है कि जहां कहीं उस की तल्वार पहुंची तबाही और वीरानी, ज़िल्लत और बदनामी साथ गई। यूनान, रुम और इटली की तहज़ीब सब उसने हमेशा के लिए मिटा दी और जब सब खूबियां मादूम (ख़त्म) हुईं तो वहशत से सैर हो कर दो सौ बरस से मायूसाना पीरी में मुअत्तल बैठा है। (करनैल टियार की किताब मत्बूआ सितंबर 1880 ई॰)

बदीर वहशी हुकूमत का जुआ (बोझ) उतार देगी और वहशी क़ौम गो कैसी अच्छी हो फिर भी बोसीदा और नाक़ाबिल तरक़्क़ी के है। मसीही जमाअत कैसी ही ज़लील हालत को पहुंच जाये मगर उस में हमेशा फिर उठने का इम्कान है क्योंकि निहायत उम्दा नमूना इस के सामने मौजूद है। इस के दिली अक़ीदे आगे की और ऊपर की राह बताते हैं यानी मसीहीयों का अक़ीदा इसी क़िस्म का है कि इस से ख़्वाह-मख़्वाह दीन व दुनिया की तरक़्क़ी होती है। इस्लाम में कोई ऐसी बात नहीं जिससे बिगड़ी हुई सल्तनत सँभल सके। इस्लाम की मुरफ़्फ़ा अलहाली (ख़ुशहाली) का ज़माना गुज़र गया। जब हुकूमत जाती रही और जफ़ाकशी, होशयारी और किफ़ायत-शिआरी से बसर करना पड़ा है तो सख़्त परेशानी में मुब्तला हैं। इस बाब में जो ख़त्म पर है मैंने सही और मोअतबर वसाइल से ये साबित कर दिखाया कि अकेला क़ुरआन ही मुसलमानों का हादी नहीं बल्कि एक नादुरुस्त तरीक़ की बेड़ियाँ हर शख़्स और हर जमाअत की गर्दन में पड़ी हैं। इस्लाम महज़ बे-सुमर (बेफल) है जिससे इन्सान की रूह को कोई नई ज़िंदगी हासिल नहीं हो सकती, ना हक़ीक़त की नई सूरतें इस से पैदा हो सकती हैं और इसी सबब से इस्लाम हक़ीक़ी ज़िंदगी और पायदार क़ुदरत किसी क़ौम[7] को नहीं दे सकता है।

ज़मीम-ए-बाब अव्वल

[7] बाद मुरफ़्फ़ा अलहाली के अब हर जगह मुसलमान मारज़ ज़वाल में हैं क्योंकि उनके मज़्हब और अक़ीदों में ऐसा कोई वस्फ़ नहीं जो उन्हें गुलामी की हालत से आगे बढ़ने दे। ऐसी हालत इन्सान को नौबत बह नौबत घटा कर तनज़्ज़ुल ही के मर्तबे में रखती है। बरख़िलाफ़ इस के ईसाई हर जगह बदइंतिज़ामी और ज़वाल को दफ़ाअ करता और जिस ज़मीन पर इस का साया पड़ता है तरक़्क़ी के आसार दिन-ब-दिन बढ़ते हैं क्योंकि उनके मज़्हब में ऐसी मख़्फ़ी (छिपी) तासीर है जो हमेशा ना मालूम तरीक़ों से तरक़्क़ी के मैदान में क़दम मारने और इस क़ुदरत और हुकूमत से मुत्तसिफ़ (वस्फ़ किया गया मौसूफ़) होने की तहरीक दी है जो इंजील ने मसीहीयों के वास्ते बमंज़िला इन्आम के तज्वीज़ की है। कामिल मुसलमान वो है जो ख़ुदा का फ़रमांबर्दार ग़ुलाम हो लेकिन मसीही का कमाल ये है कि मसीह की मानिंद फ़र्ज़ंद ख़ुदा हो। (ब्रिटिश क्वार्टरली नंबर 130)

दर-बयान इज्तिहाद

इज्तिहाद को इस्लाम से ऐसा लाज़िमी ताल्लुक़ है कि जो कुछ बाब अव्वल में इस की बहस गुज़री है उस से ज़्यादा तफ़्सील के साथ उर्फ़ शरई के मुवाफ़िक़ बतौर ज़मीमा के अलेहदा (अलग) बहस लिखनी मुनासिब जानता हूँ जो बहस मैं यहां नक़्ल करता हूँ चूँकि वो एक फ़ाज़िल मुसलमान की है इस सबब से बड़े एतबार के लायक़ है। मैंने उसे एक आर्टीकल से जो मिर्ज़ा काज़िम बैग प्रोफ़ैसर दार-उल-ताअलीम सेंट पीटर्सबर्ग (बैत-उल-सल्तनत रूस) ने तबाअ कराया था बतौर ख़ुलासे के नक़्ल किया है। जो कुछ मुहम्मदी शरीअत की निस्बत और जो मज़ाहिब इस शरीअत से वज़ा किए गए हैं उनके ग़ैर मुतग़य्यर (बदला हुआ) होने की निस्बत मैंने लिखा है, वो बख़ूबी मिर्ज़ा की बहस से साबित होता है। दीनदार मुसलमान जिन बातों को दीन के उसूल समझते हैं, वो ये हैं :-

अव्वल : ख़ुदा तआला ने कि वही शारअ हक़ीक़ी है अपने मक़्बूल लोगों को एक आसान राह बताई है और इसलिए कि लोग इस राह पर चल सकें वो अहकाम बख़्शे हैं जो अबदी व अज़ली क़ुरआन में मौजूद हैं और जुज़न अहादीस नब्वी में पाए जाते हैं, जो पिछलों को अस्हाब से पहुंची और मजमूआ-ए-सुन्नत में मुंज़ब्त हैं। इस राह को शरीअत और उस के क़ाईदों को अहकाम कहते हैं।

दोम : क़ुरआन-ओ-सुन्नत अहकाम शरअ का माख़ज़ हैं। उनसे दो इल्म निकले हैं। एक को "इल्म तफ़्सीर" कहते हैं जिससे क़ुरआन के मआनी व मुतालिब मालूम होते हैं। दूसरे को "इल्म हदीस" कहते हैं जिससे पैग़म्बर की बातें मालूम होती हैं।

सोम : शरीअत के कुल अहकाम मुकल्लिफ़ों[8] के दीन व ईमान से मुताल्लिक़ हैं।

चहारुम : जिस तरह क़ुरआन-ओ-सुन्नत अस्ल माख़ज़ हैं जिससे शरअ के अहकाम निकले हैं, इसी तरह जो क़ाएदे शरअ के ख़ास उसूल क़रार दीए गए हैं वो इल्म फ़िक़्ह (शरीअत के इल्म का) मौज़ूअ हैं यानी इल्म फ़िक़्ह में उसूल शरअ की बह्स होती है।

फ़िक़्ह के लुगवी मअनी जानने और समझने के हैं। जब मुहम्मद अरबी ने इब्ने मस्ऊद के वास्ते दुआ की थी तो इस लफ़्ज़ को इन्हीं माअनों में इस्तिमाल किया था। ख़ुदा उसे क़ुरआन की तफ़्सीर समझाए (फ़क़्हु فَقِّهْ) और बताए। मुहम्मद अरबी मुंसिफ़ और हाकिम होने की हैसियत से मोमिनों के तमाम मुआमलात तै किया करते थे जिसके ख़िलाफ़ मुराफ़ा (अपील, निगरानी) नहीं होता था। उनके अक़्वाल अस्हाब के वास्ते बमंज़िल-ए-हिदायत के थे। नबी की वफ़ात के बाद ख़लीफ़ा अव्वल ने अहादीस के अहकाम पर अमल किया। इसी असना में दीन व शरअ के ख़ास उसूल क़ुरआन व सुन्नत में रफ़्ता-रफ़्ता इख़्तिलाफ़ पड़ा। तब लोगों ने मुस्तइद हो कर क़ुरआन व हदीस का हिफ़्ज़ करना शुरू किया और तब ही से शरअ एक जुदा इल्म हो गया। उस वक़्त तक कोई इल्म ब-तर्तीब नहीं सिखाया जाता था और इब्तिदाई ज़माने के मुसलमानों के पास किताबें नहीं थीं जो इस मतलब के लिए मुफ़ीद होतीं मगर बहुत जल्द तग़य्युर वाक़ेअ हुआ। जिस सन में मुल्क-ए-शाम के बड़े आलिम फ़िक़्ह ने वफ़ात (80 हिज्री) इसी सन में नोमान बिन साबित जिनका लक़ब अबू हनीफा था, पैदा हुए। इल्म फ़िक़्ह के बानीयों में ये निहायत मशहूर शख़्स गुज़रे हैं। इस आलिम की ताज़ीम मुसलमानों में अव्वल मर्तबा होती है। इस ज़माने तक और तीस बरस बाद तक मुफ़स्सिर, मुहद्दिस और फ़क़ीहा सब अपने उलूम को बर ज़बान याद किया करते थे और जिनको ख़ूब याद होता था उनकी बड़ी क़द्र की जाती

---

8 मुकल्लिफ़ उसे कहते हैं जो पाबंद शराअ हो। ग़ैर मुकल्लिफ़ वो है जो पाबंद ना हो जैसे सग़ीर सन (छोटी उम्र का) और दीवाना और मिस्ल उस के। पस मुकल्लिफ़ का लफ़्ज़ उस मुसलमान के वास्ते मौज़ू हुआ जो अहकाम दीन में तक्लीफ़ उठाता है यानी उन्हें बजा लाता है।

थी। उनमें बड़े सारा क़ुरआन मअ तफ़्सीरों के जो नबी से और उनके अस्हाब से मालूम होती थीं हिफ़्ज़ कर लेते थे और अहादीस मअ शरहों के और तमाम अहकाम क़ुरआन और सुन्नत को भी जानते थे। ऐसे शख़्स मुज्तहिदीन का मन्सब रखते थे। ये लोग अपने शागिर्दों को ज़बानी ताअलीम देते थे। दूसरी सदी हिज्री के क़रीब वस्त तक उलूम शरअ की किताबें नहीं लिखी गई थीं। इस के बाद छः मज़्हब बन गए। इन मज़ाहिब के बानी जो अव्वल दर्जे के इमाम कहलाते थे ये हैं। अव्वल अबू हनीफा इमाम-ए-आज़म (निहायत बड़े इमाम), 150 हिज्री में बंसियान अलसावरी, 168 (? नाक़िल) हिज्री में, मालिक 179 हिज्री में, शाफ़ई 204 हिज्री में, हम्बल 241 हिज्री में और इमाम दाऊद अलज़हरी 270 हिज्री में। वो मज़्हब जिनकी बिना (बुनियाद) सावरी और ज़ुहरी ने डाली थी 800 हिज्री में जाते रहे। बाक़ी चार अब तक मौजूद हैं। ये सब इमाम एक दूसरे की निहायत ताज़ीम करते थे। छोटे बड़े का निहायत ताज़ीम से नाम लेते थे, मसलन इमाम शाफ़ई ने कहा है कि "दुनिया में अबू हनीफा की मानिंद कोई फ़िक़्ह से वाक़िफ़ ना था और जिस शख़्स ने उनकी या उनके शागिर्दों की किताबें नहीं पढ़ी हैं वो इल्म फ़िक़्ह कुछ नहीं जानता था।" इमाम हम्बल जब बीमार हुए तो उन्होंने शाफ़ई का जामा इसलिए पहना कि बीमारी जाती रहे। लेकिन बावजूद इन सब बातों के सबने अपने अपने नाम के मज़्हब जारी किए क्योंकि जो लोग फ़िल-हक़ीक़त मुज्तहिद हैं उन्हें इज्तिहाद का मन्सब हासिल है। इज्तिहाद तीन तरह का होता है :-

अव्वल : इज्तिहाद-फ़ील-शरअ यानी अहकाम शरअ में इख़्तियार कुल्ली होना।

दोम : इज्तिहाद-फ़ील-मज़्हब अव्वल दर्जे के मुज्तहिदों के इल्म फ़िक़्ह में इख़्तियार हासिल होना।

सोम : इज्तिहाद-फ़ील-मसाइल जिन मसाइल का तस्फ़ीया चारों इमामों ने नहीं किया उन्हें अपने इख़्तियार से निकालना। पहला इज्तिहाद कामिल और मुतलक़ है। दो सरामन वजह् कामिल और मन वजह गैर कामिल। तीसरा मख़्सूस इज्तिहाद है।

इज्तिहाद का पहला मर्तबा

इख़्तियार मुतलक़ अहकाम शरअ में जिसे ख़ुदा तौफ़ीक़ दे उस को मिलता है और जिसे ये मन्सब हो उसे ख़ुदा की शरीअत के दर्याफ़्त मुतालिब में दूसरे की तक़्लीद ज़रूरी नहीं है। वो अपनी अक़्ल व राय से जो चाहे कर सकता है। ये मन्सब अव्वल सदी के लोगों को था और दूसरी और तीसरी सदी के बाअज़ लोगों को भी ख़ुदा ने ये मर्तबा दिया था। लेकिन अस्हाब जो नबी से निहायत क़ुर्बत (नज़दिकी) रखते थे जिनसे उनके ऐन बाद के लोगों को शरअ के अहकाम पहुंचे थे। दूसरी और तीसरी सदी के लोगों से एतबार व इख़्तियार बहुत ज़्यादा रखते थे, मसलन अबू हनीफा कहते हैं कि जो कुछ अस्हाब से हमको पहुंचा है, वो हमारे सर और आँखों पर है और जो कुछ ताबईन से मिला है इस में जैसे वो आदमी वैसे हम भी हैं। ताबईन के ज़माने से सिर्फ छः बड़े इमामों को मन्सब इज्तिहाद हासिल था। अगरचे क़ियासन हर मुसलमान ये मर्तबा हासिल कर सकता है। लेकिन ये भी उसूल मज़्हब से है कि हुसूल इस मन्सब का बहुत सी शराइत पर मौक़ूफ़ है। इस सबब से कोई ये मर्तबा नहीं पा सकता है और वो शराइत ये हैं :-

1. क़ुरआन का इल्म और जो कुछ उस के मुताल्लिक़ है उस का इल्म हो यानी अरबी ज़बान से बख़ूबी वाक़िफ़ हो। क़ुरआन के अहकाम, उस की जुज़ईयात और ताल्लुक़ात बाहमी को और अहकाम सुन्नत से जो ताल्लुक़ात हों, उन्हें ख़ूब जानता हो।

2. ऐसे शख़्स को ये भी जानना चाहीए कि किस वक़्त में और किस वास्ते क़ुरआन की हर आयत लिखी गई थी और अल्फ़ाज़ क़ुरआन के लफ़्ज़ी माअनों से बख़ूबी वाक़िफ़ हो और ये भी जानता हो कि ये फ़िक़्रह आम है या ख़ास, नासिख़ है या मंसूख़, आयात-ए-मुतशाबिहात (मुतशाबेह की जमा) क़ुरआन शरीफ़ की वो आयतें जिनके मअनी ख़ुदाए तआला के सिवा कोई नहीं जानता, वो आयात जिनके एक से ज़ाइद मअनी हो हैं।) के मअनी साफ़ बता सकता हो। हक़ीक़ी व मजाज़ी और आम व ख़ास में फ़र्क़

कर सकता हो। क़ुरआन और कुल अहादीस और उनके मुतालिब उसे ज़रूर हिफ़्ज़ हों।

3. इल्म अहादीस में पुख़्ता हो और अक़ल्ल (निहायत कम, बहुत थोड़ा) मर्तबा 3 हज़ार हदीसें ख़ूब जानता हो।

4. परहेज़गार और नफ़्सकुश हो।

5. इल्म शरअ से ख़ूब वाक़िफ़ हो। जो कोई इस ज़माना में ऐसे मर्तबा का ख़्वास्तगार हो उस के वास्ते एक शर्त ये भी है कि :-

6. चारों मज़ाहिब से आगाह हो। ये ऐसी मुश्किलात हैं जिन पर ग़ालिब आना निहायत दुशवार है। दूसरी जानिब उलमा की सख़्त शराइत ऐसी हैं कि उनकी तामील इम्कान से बाहर है।

फिर एक दिक़्क़त ये है कि उलमा अपने इमामों के इज्तिहाद पर ऐसे गरवीदा हैं कि अगर कोई शख़्स ऐसा पैदा भी हो तो कोई उस की सुनता नहीं। इमाम हम्बल ने कहा कि जहां से और इमामों ने इल्म पाया है तुम भी वहां से हासिल करो और दूसरों की तक़्लीद पर भरोसा मत रखो क्योंकि ये बिलयक़ीन अंधापन है। पस हज़ार बरस गुज़र गए हैं कि अब तक किसी ने उनके मन्सब में अब तक दख़ल नहीं दिया है और इसी सबब से उलमा ये समझते हैं कि इमामों के वक़्त से अब तक कोई अव्वल मर्तबे का मुज्तहिद नहीं हुआ। इब्ने हम्बल आख़िरी इमाम थे। जो शख़्स इस मर्तबे को हासिल करता उस के इख़्तयारात बहुत होते थे। उसे दूसरे की शागिर्दी लाज़िम नहीं थी। वो शरीअत के और अपने मुक़ल्लिदों के दर्मियान वास्ता होता था। किसी को ये मन्सब नहीं होता था कि उस के इजतिहादियात पर एतराज़ कर सके। उसे अपनी समझ के मुवाफ़िक़ क़ुरआन, सुन्नत और इज्मा के समझाने का इख़्तियार होता था। वो नबी के अहकाम पर अमल करता था और उस के मुक़ल्लिद फ़क़त उसी की बातों पर अमल करते थे। अगर कोई अपने इमाम के हुक्म में क़ुरआन-ओ-हदीस से कुछ फ़र्क़ पाए तो भी उसे चार विना चार उस पर अमल करना चाहीए। शरअ से अपनी अक़्ल व समझ के मवाक़िफ़ मअनी निकालने की इजाज़त नहीं। अगर कोई शख़्स एक इमाम के मज़्हब में दाख़िल हो गया हो तो उसे छोड़कर दूसरे मज़्हब में नहीं जा सकता है। उसे

ये मन्सब नहीं रहता कि अहकाम शरअ में अपनी अक़्ल को दख़ल दे सके क्योंकि इमामों के इजतिहादियात में बजुज़ अव्वल मर्तबे के मुज्तहिद के और कोई बहस नहीं कर सकता है अगरचे क़ियासन मुम्किन है कि अब भी कोई मुज्तहिद पैदा हो, लेकिन जैसा कि मैं क़ब्ल अर्ज़ीं बता चुका हूँ ऐसा अब तक वक़ूअ में नहीं आया।

इज्तिहाद का दूसरा मर्तबा

ये मर्तबा बड़े इमामों के ऐन शागिर्दों को जिन्हों ने अपने इमामों के मज़्हब पर बड़ी जाँ-फ़िशानी की हो हासिल है। उन्हें अपने हम-असर उलमा का और अपने इमामों का लिहाज़ रहता था और इमाम बाअज़ सूरतों में अपनी राय के मुवाफ़िक़ अमल करने की इजाज़त देते थे। इस क़िस्म के आदमीयों में निहायत मशहूर दो शख़्स अबू हनीफा के शागिर्द अबू यूसुफ़ और मुहम्मद इब्ने अल-हसन गुज़रे हैं। दूसरे दर्जे के इज्तिहाद में उनकी राय निहायत मोअस्सर है और बड़ी वक़अत रखती है। ये अम्र बतौर क़ायदे के क़रार पाया गया है कि जिस मसअले पर ये दोनों मुत्तफ़िक़ होंगे ख़्वाह वो अबू हनीफा के ख़िलाफ़ हो, मुफ़्ती उसी पर अमल करेगा।

इज्तिहाद का तीसरा मर्तबा

ये भी एक मर्तबा ख़ास इज्तिहाद का है। इस क़िस्म के मुज्तहिद को लाज़िम है कि चारों मज़ाहिब से बख़ूबी वाक़िफ़ हो और अरबी ज़बान में मुफ़्ती हो। जो मसाइल पेश आएं उनको ऐसे लोग बता सकते हैं और जो मसाइल अगले मुज्तहिदों ने तैय नहीं किए हों उनका तस्फ़ीया नहीं कर सकते हैं। लेकिन दोनों सूरतों में अव्वल व दोम मर्तबे के मुज्तहिदों की राइयों (राय की जमा) से और उन उसूलों से जो उन्होंने बताए हैं मुवाफ़िक़त ज़रूरी है। इस क़िस्म के बाअज़ आदमीयों ने अपनी हयात में शौहरत पाई, लेकिन

अक्सरों ने मरने के बाद ये मर्तबा पाया। इमाम क़ाज़ी ख़ान के बाद जिन्हों ने 592 हिज्री में वफ़ात पाई। सुन्नियों के नज़्दीक तीसरे मर्तबे का मुज्तहिद भी कोई नहीं हुआ। तीन और अदना दर्जे फ़िक़हियों के हैं जिन्हें मुक़ल्लिदीन यानी मुज्तहिदों के पैरौ (मानने वाले) कहते हैं। लेकिन इस दर्जे वालों में सबसे बड़ा आलिम जो कुछ कर सकता है वो यही है कि क़दीम फ़िक़्ह की तसानीफ़ में जो पेचीदा बातें हैं, उनकी शरह कर सकता है और मुतालिब बयान कर सकता है। बाअज़ उलमा इस दर्जे के उलमा को भी तीसरे दर्जे के मुज्तहिदों में समझते हैं। अगर किसी मसअला में इख़्तिलाफ़ राय हो तो इस दर्जे के लोग जिस राय को बेहतर जानें उसी पर अमल कर सकते ही। मुजर्रिद क़ाज़ी को ये इख़्तियार भी नहीं है। ऐसी सूरतों में उन्हें उन लोगों का या उनकी तसानीफ़ का हवाला देना चाहीए। मालूम होता है कि इन लोगों ने बग़ैर इख़्तिरा किसी नई बात के मसाइल शरई पर शरहें लिखी हैं। हदाया का मुसन्निफ़ जो अख़ीर छठी सदी में गुज़रा है, मुक़ल्लिद था। पस मिर्ज़ा काज़िम बेग ने ऐसा ही बयान किया है। कुल दर्स जिससे ख़ास बातें मैंने अख़ज़ कर ली हैं क़ाबिल इस के है कि बग़ौर पढ़ा जाये। इस से साबित है कि इस्लाम फ़िल-जुम्ला ऐसा तरीक़ है कि तजुर्बा को जो बहुतेरे दक़ाइक़ (अच्छी बुरी बात के वह पहलु जो गौर करने से समझ कर आएं) और मआरिफ़ (मार्फ़त की जमा) की तरफ़ हिदायत करता है इस में मुतलक़ दख़ल नहीं, बल्कि पुरानी लकीर पीटी जाती है। इख़्तिलाफ़ आब-ओ-हवा और मिज़ाज और वाक़ियात का कुछ इस तरीक़ में लिहाज़ नहीं होता बल्कि ये तरीक़ मजरू हक़ायक़ का मजमुआ है जिसके एक शोशे और नुक्ते का इन्कार भी बग़ैर इस के नहीं हो सकता है कि हमेशा के वास्ते मोर दअताब इलाही हो। (आसबरुन की किताब दरबार-ए-इस्लाम बाद ख़ुलफ़ा, सफ़ा 72)

बाब दोम

तफ़्सीर व तशरीह क़ुरआन व अहादीस

मुसलमानों की इलाहियात की ये मिस्ल है जिसे ईस्तलाहन "इल्म उसूल" कहते हैं। मुक़तज़ी (तक़ाज़ा करने वाला) इस की ये है कि इस के साथ तरीक़ इस्लाम के मुवाफ़िक़ इल्हाम की हक़ीक़त बयान की जाये। अगरचे फ़िल-हक़ीक़त इल्म उसूल से इस बयान को चंदा ताल्लुक़ नहीं है। इल्हाम के इज़्हार मुरातिब के वास्ते दो लफ़्ज़ वह्यी और इल्हाम मुस्तअमल हैं। क़ुरआन के इल्हाम को वह्यी कहते हैं और इस के ये मअनी हैं कि लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ ख़ुदा का कलाम है। वह्यी दो तरह की है एक को वह्यी ज़ाहिर और दूसरी को वह्यी बातिन कहते हैं। जिब्रईल बताने वाले और मुहम्मद अरबी महज़ एक ज़रीया थे जिनसे वह्यी ज़ाहिर इन्सानों को पहुँचती थी। वही क़ुरआन जिसे आला मर्तबे का इल्हाम समझना चाहीए जिब्रईल हमेशा मुहम्मद अरबी को सुना जाते थे। मुसलमानों के अक़ीदे में जिब्रईल इसी ख़ास काम पर मामूर थे, मसलन एक हदीस में आया है कि 12 दफ़ाअ आदम के पास और 4 मर्तबा हनूक़ (हनोक) और 50 मर्तबा नूह के पास और 42 मर्तबा इब्राहिम के पास और 4 सौ मर्तबा मूसा के पास और दस दफ़ाअ मसीह के पास और 4 हज़ार दफ़ाअ मुहम्मद अरबी के पास जिब्रईल आए।

इल्हाम उस कशफ़ को कहते हैं जो वली और नबी को होता है और वो उस के नफ़्स-ए-मतलब के मुवाफ़िक़ हिदायत हक़ के अपने मुहावरा व ज़बान में अदा करता है। ये नहीं है कि जिब्रईल सुनाने के महज़ एक कुल हो। वह्यी ज़ाहिर की एक अदना क़िस्म भी है जिसे इशार-उल-मलक कहते हैं (इस के लफ़्ज़ी मअनी हैं फ़रिश्ते का इशारा) जब मुहम्मद अरबी ये कहते थे कि रूहुल-क़ुद्दुस मेरे दिल में दाख़िल हुई है तो इस से जो कुछ उनका मतलब होता था वो इस से ज़ाहिर है। इस का मतलब ये है कि कभी जिब्रईल की वसातत से महज़ इल्हाम होता था। वह्यी की तरह लफ़्ज़ ब

लफ़्ज़ नाज़िल नहीं होता था। इस क़िस्म का इल्हाम वह्यों के इल्हाम से बरतर है और हमेशा अहादीस के इल्हाम की निस्बत इस का इतलाक़ होता है। जो लोग ये कहते हैं कि आप हमेशा बज़बान इल्हाम फ़रमाते थे, ना बज़बान वह्यी उन्हें इस से इन्कार है, मगर अमल इसी अक़ीदे पर है कि अहादीस भी वह्यी हैं। इसी सबब से क़ुरआन की मिस्ल मोअतबर हैं। शहर आस्तानी ने नबी की इन आयात का ज़िक्र किया है जिन पर अलामात वह्यी के हैं (दबिस्ताँ, सफ़ा 214) बाअज़ मुसलमान आलिम कहते हैं कि त्रिपेन 53 सुरह जिसे नज्म कहते हैं इस क़ियास की मोइद है :-

وَالنَّجْمِ إِذَا هَوَىٰ مَا ضَلَّ صَاحِبُكُمْ وَمَا غَوَىٰ وَمَا يَنطِقُ عَنِ الْهَوَىٰ إِنْ هُوَ إِلَّا وَحْيٌ يُوحَىٰ

बहरनहज (तरीक़ा, क़ायदा) मुहम्मद अरबी का इल्हाम मसीहीयों के इल्हाम से बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है और मुसलमान उसे निहायत नाक़िस क़िस्म का इल्हाम जानते हैं। ये बात कि इल्हाम जिस तरह मुस्तल्ज़िम (कोई काम अपने ऊपर लाज़िम करने वाला) जानिब इलाही को है ऐसे जानिब इन्सान को भी है। (इस का ताल्लुक़ दोनों से है) मुहम्मदियों को ना सिर्फ ग़ैर मालूम है बल्कि बिल्कुल उनके मुख़ालिफ़ है। क़ुरआन ख़ास अहकाम की किताब है। ये नहीं है कि हिदायत के आम उसूल बग़ैर क़ैद अहकाम के बताए गए हों और मूसा को जो इल्हाम हुआ था उस का ज़िक्र क़ुरआन में था कि :-

"हमने लिखा है उस के वास्ते बिच तख़्तों के हर चीज़ से नसीहत और हर चीज़ की तफ़्सील पस पकड़ उस को क़ुव्वत के साथ और अपनी क़ौम को हुक्म करें कि इस के बेहतर के साथ अमल करें।" (सूरह आराफ़ 142)

ये इसी क़िस्म का इल्हाम है जिसका दावा क़ुरआन को अपनी निस्बत है। मुहम्मद अरबी के ज़हन में ये बात थी कि तमाम बनी-आदम के जितने मुआमलात हैं उन सब के वास्ते हिदायात का मुकम्मल और आख़िरी मजमूआ होना चाहीए। क़ुरआन ख़ुदा के नबी का कलाम नहीं, वो ऐन ख़ुदा का कलाम है और ख़ुदा ही से निकला है और हर जुम्ले के शुरू में लफ़्ज़ क़ाल

(قال) या क़ोला तआला (قولہ تعالیٰ) का मुक़द्दर मानते हैं। ये मुसलमानों के नज़्दीक आला क़िस्म इल्हाम की है और फ़क़त यही किताब के इल्हामी होने की बड़ी पहचान है। मुसलमान उस को मानते हैं कि इंजील ईसा ने दी थी लेकिन चूँकि उनके अक़ीदे में उसे भी माह रमज़ान में जिब्रईल आस्मान से लाए थे, उसी सबब से ये दावा किया जाता है कि वो गुम हो गई है और अह्दे जदीद की चारों अनाजील जो फ़ीज़मानिना मुरव्वज हैं सिर्फ रिवायत हैं जिन्हें इन मुसन्निफ़ों ने जमा किया है जिनके नाम से मौसूम हैं। इस वास्ते वक़अत में अहादीस के बराबर हैं।

दूसरी बह्स इस बाब में ये है कि जिब्रईल किस तौर से मुहम्मद अरबी के पास पयाम लाते थे। ईलाहीयात की किताब मदारिज उन्नबूवा में इस अम्र की कुछ तफ़्सील है। (सफ़ा 508,510) अगरचे कुल क़ुरआन मअनन व लफ़्ज़न (गुमान) ख़ुदा का कलाम है लेकिन कुल क़ुरआन नबी को एक ही तरीक़ से नहीं मालूम हुआ था। इन तरीक़ों में से चंद की तफ़्सील ये है।

1. मुहम्मद अरबी की बीबी आईशा से रिवायत है कि नबी पर रोशनी नूर सुबह की मानिंद अहाता करती थी। बाअज़ मुफ़स्सिरों के नज़्दीक ये रोशनी छः माह तक रही। किसी पोशीदा तौर पर इसी रोशनी या नूर से जिब्रईल ने आपको ख़ुदा के इरादे से मुत्ला`अ (बाख़बर) किया।

2. मुहम्मद अरबी के अस्हाब में से एक सहाबी दहेबा जो ख़ूबसूरती और वजाहत में मशहूर थे उनकी सूरत पर जिब्रईल ज़ाहिर होते थे। इस बाब में आलिमाना बह्स पैदा होती है कि जब जिब्रईल दहेबा की पैकर जिस्मानी इख़्तियार करते थे तो उनकी रूह कहाँ रहती थी। बाज़-औक़ात जिब्रईल की मलकी ज़ात मुहम्मद अरबी पर ग़लबा करती थी जो उस वक़्त मलाइका के जहान में मुंतक़िल हो जाती थी। ये उस वक़्त वाक़ेअ होता था जब ख़बर बद आती थी, जैसे वईद या अज़ाब की पेश ख़बरीयाँ और जब कभी जिब्रईल ख़ुशी का पैग़ाम लाते थे नबी की इन्सानी ज़ात फ़रिश्ते की ज़ात मलकी

पर ग़लबा करती थी और वो फ़रिश्ता ऐसे वक़्त में इन्सान की शक्ल में हो कर पैग़ाम लाता था।

3. कभी नबी को ऐसी आवाज़ आती थी जैसे घंटा बजता है और इस आवाज़ का मतलब फ़क़त आप ही को मालूम होता था और जो बातें जिब्रईल बताना चाहते थे आप उसे आवाज़ से पहचान लेते थे। इस तौर की वह्यी का असर और तौर की वह्यी से निहायत अजीब था। जिस वक़्त आवाज़ कान में पड़ती थी तो आपका सारा बदन काँपने लगता था और निहायत सर्दी के दिन भी आपके चेहरे पर पसीने के क़तरे मोती के दानों की तरह नज़र आते थे और आपके नूरानी चेहरे का रंग मुतग़य्यर (बदला हुआ) हो कर ज़र्द पड़ जाता था और जब सर नीचे डाल देते थे तो मालूम होता था कि आप पर सख़्त तक्लीफ़ है। अगर उस वक़्त ऊंट पर सवार होते थे तो वो बैठ जाता था। एक रोज़ नबी ज़ैद की गोद में सर रखे थे कि वही आवाज़ कान में पड़ी। ज़ैद ने भी जाना कि आप पर कुछ हादिसा वाक़ेअ हुआ है क्योंकि आपका सर इस क़द्र भारी हो गया था कि ज़ैद बमुश्किल इस बोझ के मुतहम्मिल (बर्दाश्त करने वाला) हो सकते थे।

4. मेअराज के वक़्त ख़ुदा ने नबी से बग़ैर वसातत फ़रिश्ते के कलाम किया और इस पर बह्स है कि आया अपने ख़ुदा का चेहरा देखा या नहीं।

5. कभी ख़ुदा तआला नबी को ख़्वाब में नज़र आता था और उनके कंधों पर हाथ रख के अपने इरादे से मुत्ला`अ (बाख़बर) करता था।

6. दो मर्तबा फ़रिश्ते जिनके छः छः सौ बाज़ू थे ज़ाहिर हुए और ख़ुदा की तरफ़ से पयाम लाए।

7. जिब्रईल बग़ैर इन्सानी सूरत इख़्तियार करने के नबी के दिल पर ऐसा असर पहुंचाते थे कि जो कुछ उस वक़्त कहते थे, वो ख़ुदा

का कलाम होता था। उसे ईस्तलाहन इल्क़ा कहते हैं। बाअज़ के नज़्दीक अहादीस इसी क़िस्म के इल्हाम के मुताल्लिक़ हैं।

इन सब सूरतों में ख़ता व ग़लती से महफ़ूज़ रहते थे। अगर इत्तिफ़ाक़ से किसी वह्यी का मतलब नहीं समझते तो दूसरी उनके समझाने को नाज़िल होती थी। ये ख़्याल इसलिए वज़ा किया गया है कि क़ुरआन की बाअज़ आयात नासिख़ हैं कई दफ़ाअ मुहम्मद अरबी को तब्दील अहकाम की ज़रूरत मालूम हुई। इस वास्ते बाअज़ आयात को मंसूख़ करना पड़ा। पस मुहम्मद अरबी को तरह तरह से इल्हाम हुआ। मालूम होता है कि अव्वल इस पर कुछ शुब्हा हुआ। (सफ़ा 3), इस अंदेशा से कि मबादा आख़िर को मूजिब तम्सख़र हो। जब बरसें गुज़र गईं तो अपनी ज़ात पर और अपनी रिसालत पर एतिमाद हो गया। मुहम्मद अरबी के कलाम में जहां कि आस्मान व ज़मीन और ख़ुदा व इन्सान की क़िस्में हैं, ख़ुशी के आसार पाए जाते हैं। लेकिन आपके अक्सर रोया ख़ौफ़नाक डराने वाले होते थे। एक हदीस में आया है कि **आप ऊंट की मानिंद आवाज़ देते थे और बहुत क़रीब के घंटों की सी आवाज़ आपके जिगर के टुकड़े कर देती थी। कोई अजीब क़ुव्वत उन पर असर करती थी और उस वक़्त की वहशत इख़्तियार से बाहर होती थी।** बीस बरस या कुछ ज़्यादा वही व इल्हाम नाज़िल होता रहा जिससे दीन व दुनिया की बातों में आपको ख़ुदा की तरफ़ से हिदायत होती थी। दीन की बातों में इस सबब से कि तमाम आदमीयों के हादी थे और दुनिया के मुआमलात में इस सबब से कि आप बादशाह और ख़ास सिपहसालार और तमाम अक़्वाम अरब में मुल्की इत्तिफ़ाक़ की बुनियाद डालने वाले थे। मुहम्मदी तालिबे इल्म जब इल्म सर्फ़ व नहव, बयान, मंतिक़ और फ़िक़्ह से फ़राग़त पा चुकता है तो उसे उसूल यानी वो इल्म जिससे क़ुरआन-ओ-हदीस के मुतालिब मालूम होते हैं पढ़ने की इजाज़त दी जाती है और इस से फ़ारिग़ हो कर क़ुरआन की कोई उम्दा तफ़्सीर पढ़ता है ताकि मालूम हुए कि क़ुदमा (क़दीम की जमा) इस्लाम ने क्या कहा है। इस इल्म से तालिबे इल्म को तफ़्सीर करने की लियाक़त हो जाती है क्योंकि इस ज़माने के दीनदार मुसलमान का काम ये नहीं है कि क़ुरआन से नई और पुरानी बातें निकाले बल्कि पुरानी बातें जो ऊपर से चली आती हैं वही लोगों को पहुंचाए। जमाअत इस्लाम में ये बात

नहीं कि नई मअनी ज़माना ब ज़माना निकालते जाएं। इलाहयात में वो शख़्स बड़ा कामिल है जिसे क़ुरआन बरज़बान याद हो और जो कुछ क़दीम मुफ़स्सिरों ने कहा है उसे जानता हो और जब चाहे बयान कर सके और अहादीस नब्वी जो ताबईन और तबेअ ताबईन से पहुंची हैं ख़ूब याद हों। यहां तक कि उलट के बढ़ता चला जाये। अगर कोई एसी हदीस बयान करे कि उस की अस्नाद यानी सिलसिला राावियों में नुक़्स व ऐब हो तो उसे फ़ौरन बताए और जो हदीस आप बयान करता हो उस की सनद अस्मा व राावियों की तवील फ़हरिस्त पढ़ कर पहुंचाए।

मुसलमानों की इलाहयात में नुक्ता-चीनी की तहक़ीक़ कोई कमाल नहीं बल्कि बड़ा कमाल अच्छा हाफ़िज़ा है। हाफ़िज़ जिसे सारा क़ुरआन बरज़बान याद हो उस का ख़ास वस्फ़ यही है कि हर लफ़्ज़ बसहित ताम बग़ैर देखे पढ़ सके। जो लोग अरब में नहीं पैदा हुए हैं उन्हें ये बात जब लड़कपन से बरसों मेहनत करते हैं तो हासिल हो जाती है। सुन्नी कहते हैं कि कोई शीया कभी हाफ़िज़ नहीं होता और इस से वो नतीजा निकालते हैं कि शीया बेदीन हैं। आग़ाज़ इस्लाम में क़ुरआन की सही क़िरअत की बड़ी सनद ख़लीफ़ा अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली थे। दस और अस्हाब थे जिन्हों ने इस की क़िरअत ख़ास नबी से इसी तरीक़ पर जो जिब्रईल ने बताया था, सीखी थी। अहले इस्लाम की अरबी बहिश्त की ज़बान है, मगर बावजूद कोशिश बलीग़ के क़िरअत एक हाल पर नहीं रही। और मुल्कों के आदमी मक्का का सही तलफ़्फ़ुज़ हासिल नहीं कर सकेता आंकी सात क़िरअत मुरव्वज हो गईं। उस वक़्त बड़ी मुश्किल पेश आई थी मगर आसान हो गई। अबी इब्ने कअब एक सहाबी ऐसे मशहूर क़ारी थे कि नबी ने ख़ुद कहा कि क़ुरआन को अबी इब्ने कअब के मुवाफ़िक़ पढ़ो। लोगों को अबी इब्ने कअब का ये कहना याद था कि एक रोज़ मस्जिद में आकर कोई शख़्स क़ुरआन को मुख़्तलिफ़ तौर से पढ़ने लगा। जब वो जा लिया तो लोगों ने इस का चर्चा किया। कअब ने मुहम्मद अरबी से इस का ज़िक्र किया। आपने फ़रमाया कि ऐ अबी इब्ने कअब मुझे ख़बर पहुंची थी कि क़ुरआन एक ही क़िरअत में पढ़ा जाये। जब मैंने दुबारा जनाब बारी में अर्ज़ की क़ुरआन का पढ़ना मेरी उम्मत पर आसान कर दे तो ये हिदायत हुई अच्छा दो क़िरअत में पढ़ो। पर मैंने जनाब बारी में यही अर्ज़

की क़ुरआन की क़िरअत मेरी उम्मत पर आसान कर दे, जो तीसरी दफ़ाअ हुक्म हुआ कि सात क़िरअत में क़ुरआन पढ़ो। इस से सब मुश्किल आसान हो गई और अज़राह्-ए-पेश-बीनी जवाज़ इख़्तिलाफ़ क़िरअत पर ख़ुदा की इजाज़त इस तरह हासिल करने से लोगों ने ये समझा कि आप पर इस मज़्मून की वहयी आई थी। पस हफ़्त क़िरअत (सात क़िरअत) मुरव्वजा की यही इब्तिदा थी। ख़लीफ़ा उस्मान के हुक्म से जो क़ुरआन मुरत्तिब हुआ था इस में एराब (ज़ेर, ज़बर, पेश वग़ैरह) ना थे। लेकिन जब ग़ैर मुल्कों के लोग इस्लाम लाए तो उन्हें अरबी की तहसील बड़ी दुशवार हुई। तब ख़ालिद बिन अहमद बड़े सरफी (صرفی) (इल्म सर्फ जानने वाला शख़्स) ने मुख़्तलिफ़ एराब और अलामात मुमय्यज़ा ईजाद कीं। सात मशहूर क़ारी जिनके नाम सातों क़िरअत मुख़्तलिफ़ा के साथ आते हैं ये हैं :-

इमाम नफ़ी मदनी, इमाम इब्ने क़सीर मक्की, इमाम अबू उमर बस्री, इमाम हम्ज़ा कोफ़ी, इमाम इब्ने आमिर शामी, इमाम आसिम कोफ़ी और इमाम कसाई कोफ़ी (ज़वाबत-उल-क़ुरआन, सफ़ा 110-111)

इन आलिमों ने अक्सर मुक़ामात क़ुरआन में मुख़्तलिफ़ एराब निकाले जिससे माअनों में जुज़वी फ़र्क़ पड़ गया। हिन्दुस्तान में शीया और सुन्नी दोनों इमाम आसिम की क़िरअत पर पढ़ते हैं। तीन और ग़ैर-माअरूफ़ क़िरअत हैं कि अकेले में उनके मुवाफ़िक़ पढ़ना जायज़ है, लेकिन जमाअत में दुरुस्त नहीं। माह रमज़ान में हर शब को मस्जिदों में क़ुरआन सुनाया जाता है और कुल क़ुरआन के तीस पारे किए हैं। अगर एक पारा रोज़ हो तो कुल क़ुरआन माह रमज़ान में ख़त्म हो जाता है। इमाम मस्जिद या क़ारी जिस क़िरअत पर शुरू करे उसी पर रमज़ान भर पढ़े चूँकि बग़ैर देखे पढ़ना पड़ता है, इस वास्ते बड़ी याद चाहीए। अच्छा हाफ़िज़ सातों क़िरअत जानता है। ये मुख़्तलिफ़ क़िरअत जो इस तरह पैदा हुई हैं अगरचे ज़रूरी नहीं तख़मीनन तादाद में पाँच सौ हैं। चुनान्चे चंदाँ में से मुंदरजा ज़ैल हैं। **दूसरी सूरह बक़रह में अबू उमर इस तरह पढ़ते हैं, तुम नहीं पूछे जाओगे इस काम की बाबत जो उन्होंने किया है। आसिम पढ़ते हैं जो तुमने किया है ये इख़्तिलाफ़ इस सबब से पैदा हुआ है कि जो नुक़्ते नीचे थे वो ऊपर लगा दीए हैं यानी अबू उमर ज़मीर ग़ायब की और आसिम मुख़ातब की ज़मीर पढ़ते हैं।** फिर

(सूरत 39:73) में आसिम के नज़्दीक दोज़ख़ के दरवाज़े में तुम दाख़िल होगे और नफ़ी के नज़्दीक दोज़ख़ में तुम दाख़िल किए जाओगे यानी एक मारूफ़ और दूसरा मजहूल पढ़ता है। थोड़े से फ़र्क़ से मारूफ़ मजहूल हो गया है। बाक़ी और इख़्तिलाफ़ात को इसी पर क़ियास करना चाहिए।

किसी मसअले पर जहां तक कि मैं जानता हूँ दस्त अंदाज़ी नहीं की गई है, लेकिन जिस तौर से कि हदीस में नबी की इस पेशबंदी का ज़िक्र है वो अलबत्ता मुसलमान तालिबे इल्म को ताअलीम दह है। सात मशहूर क़ारी जिनके नाम ऊपर लिख चुका हूँ उनके मुक़ल्लिदों में कभी सख़्त झगड़े हुए हैं। 935 हिज्री में इब्ने शबना व साकिन बग़दाद ने क़ुरआन की क़िरअत में इख़्तिलाफ़ डालना चाहा। बग़दाद के लोग बहुत ग़ज़बनाक हुए और ख़लीफ़ा ने मज्बूरी में उसे क़ैद में डाल दिया। जमाअत उलमा फ़राहम हुए और इब्ने शबना उन के रूबरू हाज़िर किया गया। कुछ अरसे तक अपनी क़िरअत की सेहत पर इसरार करता रहा लेकिन बाद को जब सात मर्तबा चाबुक लगाए गए तो आतरिफ़ किया कि मैं अपने तौर पर पढ़ना छोड़ दूँगा और आइंदा को बजुज़ उस तरीक़ के जो ख़लीफ़ा उस्मान की नक़्ल से अख़ज़ किया है और जिसे सब तस्लीम करते हैं और किसी की पैरवी नहीं करूँगा। (इब्ने ख़ुलक़ान की लुगात उर्रिजाल जिल्द 3, सफ़ा 16) इसी मज़्मून के मुताल्लिक़ इल्म सर्फ़ व नहव के मशरूअ होने का बयान है। सर्फ व नहव का पढ़ना और अहादीस का जमा करना उस वक़्त से लाज़िमी हो गया है। मोमिनों को मुद्दत तक जवाज़ इस्तिमाल क़वाइद सर्फ़ व नहव में निस्बत क़ुरआन मजीद के शुब्हा रहा, ना क़ुरआन में कोई हुक्म इस की निस्बत था, ना नबी ने इस मुक़द्दमा में कुछ हिदायत की थी। इस वास्ते वो फ़ेअल ना फ़र्ज़ था, ना सुन्नत। मगर हदीसों ही से ये मुश्किल भी हल हो जाती है। बग़दाद के मुम्ताज़ ख़लीफ़ा मामून के अह्द में एक बड़ा नह्वी अलफ़रा नामी रहता था। ख़लीफ़ा मज़्कूर उस का सरपरस्त था। उस के एक शागिर्द अबू अब्बास सालब ने मरते वक़्त ये कहा कि मुफ़स्सिरों और मुहद्दिसों ने और और आलिमों ने अपनी अपनी मेहनतों के समरे पाए। लेकिन मैं सर्फ नह्वी हूँ और नह्व बहमा जिहत ऐसा इल्म है कि हनूज़ क़ुरआन के साथ उस के जवाज़ में शुब्हा है। जिस दोस्त के रूबरू उसने ये बातें की थीं वो अपने घर चला गया।

इसी रात आलम-ए-ख़्वाब में ये रोएया देखा कि नबी फ़रमाते हैं कि ऐ शख़्स अबू अब्बास सालब को मेरा सलाम पहुंचा और कह कि तू साहब बहुत बड़े इल्म का है। जब से नबी ने ये फ़रमाया उस वक़्त से तहसील सर्फ़ व नह्व इस्लाम में जायज़ हो गई और अब मुसलमान क़ुरआन का तर्ज़ इबारत निहायत कामिल[9] बताते हैं और ये याद रखना चाहीए कि क़ाएदे क़ुरआन के वास्ते ना थे। फिर उस की इबारत हाल के सर्फ व नह्व के बमूजब क्योंकर कामिल ना होती। क़ुरआन के तर्जुमे और तफ़्सीर की बह्स जल्द इल्म उसूल की ज़रूरी शाख़ हो गई। कहते हैं कि क़ुरआन को जिब्रईल बहिश्त से जैसी हाजत होती थी पारा पारा लाते थे। नबी पर लोग ये एतराज़ करते थे कि एक ही मर्तबा में कुल क़ुरआन क्यों नहीं आया। इस के जवाब में ये आयत उतरी **और कहा उन लोगों ने जो काफ़िर हुए क्यों ना उतारा गया क़ुरआन इकट्ठा उस के ऊपर एक बार इसी तरह उतारा हमने ताकि साबित करें तेरे दिल को और थम-थम कर पढ़ा हमने उस को थम कर पढ़ना।** (सूरह फ़ुर्क़ान 25 आयत 34) पस जो वहयी इस तरह दी गई थी मह्ज़ वहयी मत्लू थी। जिब्रईल नबी को आकर सुना जाते थे। "फिर भी वो बुज़ुर्ग क़ुरआन है लौह-ए-महफ़ूज़ पर लिखा हुआ।" (सूरह बुरूज 85 आयत 22) "जिस वक़्त हम इस को पढ़ें पस हमारे पढ़ने की पैरवी कर।" (सूरह क़ियामत 75 आयत 18) बज़ाहिर जिस तौर से क़ुरआन उतरा था उस का ज़िक्र सूरह ताहा 20 आयत 112 में है यानी "हमने इस को उतारा क़ुरआन अरबी।" क़ुरआन का पारा पारा उतरना एतराज़ और मुश्किलात से ख़ाली ना था।[10] बाअज़ आयात

---

9 अगर हम क़ुरआन को इल्म मआनी के क़ाईदों से जिस तरह कि मुसलमानों के यहां ताअलीम होती है आज़माऐं तो हमको मजबूरन ये तस्लीम करना पड़ेगा कि क़ुरआन की फ़साहत व बलाग़त कामिल है। ये एक लाज़िमी नतीजा इस का है कि इल्म मआनी के उसूल भी मुसलमानों ने इसी क़ुरआन से निकाले हैं। (बैरन एम डी सिलीन के दीबाचा इन्ने ख़ुलक़ान के अस्मा-उल-रिजाल पर)

10 बहुत सी हदीसें इस बाब में आई हैं। उमर बिन ख़ताब ने फ़रमाया कि तीन बातों में मेरे परवरदिगार ने मुझे मुवाफ़िक़त की एक ये कि मैंने अर्ज़ की या रसूल अल्लाह अगर हम मुक़ाम इब्राहिम पर नमाज़ पढ़ते तो बेहतर होता। इस पर वहयी नाज़िल हुई कि अच्छा नमाज़ के वास्ते मुक़ाम इब्राहिम लो। दूसरी बार अर्ज़ की कि या रसूल अल्लाह नेक व बद सब तरह के लोग आपके मकान में आते हैं और मुझे ये पसंद नहीं। इस वास्ते अगर आप अपनी औरतों को पर्दे के वास्ते हुक्म दें तो बेहतर है। आँहज़रत की कुल इज़दवाज (बीबियाँ) आपके शहद पीने के क़िस्सा पर मुत्तफ़िक़ थीं और आपने अह्द किया था कि फिर कभी ना पियूँगा। इस पर मैंने नबी की अज़्वाज (बीबियों) से कहा कि अगर आँहज़रत तुम्हें तलाक़ दे दें तो ख़ुदा उन्हें उस का बेहतर

बाअज़ के मुख़ालिफ़ थीं, बाअज़ आयतों का मतलब नहीं समझ में आता था सिर्फ नबी को इस का मतलब मालूम था। वो उन्होंने अपने अस्हाब को बता दिया था जिनकी तरफ़ इस तरह इशारा है "और तेरी तरफ़ उतारा हमने ज़िक्र को ताकि कि तू बयान करे लोगों के वास्ते वो चीज़ जो उतारी गई है उनकी तरफ़" (सूरह नहल 16 46) इब्ने ख़ल्दून कहते हैं कि नबी ने मुतालिब खोल दीए और बयान फ़र्क़ आयात नासिख़ व मंसूख़ का किया। फिर ये इल्म उनसे अस्हाब को पहुंचा। पस नबी की ज़बान से उन्होंने आयात के मआनी समझे इन हालात पर मुत्ला`अ (बाख़बर) हुए जिससे हर क़िस्म वहयी का फ़र्क़ मालूम हो गया (इब्ने ख़ल्दून की किताब जिल्द 2, सफ़ा 459) पस अस्हाब इस तरह ताअलीम पा कर कुल मुतालिब क़ुरआन से आगाह हो गए। उन्होंने ये इल्म अपनी ज़बान से ताबईन को पहुंचाया और फिर उनसे तबेअ ताबईन को पहुंचा। इस के बाद जब तहरीर को ख़ूब रिवाज हो गया तो मुफ़स्सिर अक़्वाल अस्हाब को जो सीना ब सीना पहुंचते थे जमा कर के क़लम-बंद करते गए। वो ना क़ुरआन की आयात पर नुक्ता-चीनी कर सकते थे, ना सहाबा की तफ़्सीर पर एतराज़ के मजाज़ थे क्योंकि क़ुरआन ख़ुदा का कलाम था और उनकी क्या मजाल थी कि एतराज़ करते और सहाबा की तफ़्सीर का क़ुबूल करना भी लाज़िम था। अगर सिर्फ सनद मुत्तसिल (मिली हुई) से मालूम हो जाये कि उन्हीं की तफ़्सीर है। पस उसूल तफ़्सीर के इस्लाम के आग़ाज़ ही से मुईन और मुक़र्रर हो चुके थे। अब हर लफ़्ज़ और हर जुम्ले की हैसियत और वक़अत मुईन हो गई है। मुफ़स्सिर का काम फ़क़त यही है कि जो कुछ पहले लिखा जा चुका है उसी को बयान करे। कोई मआनी अपनी तरफ़ से ना लगाए। अगरचे इन मआनी की ताईद में कोई हदीस (जो लोगों की याद से जाती हो) क्यों ना हाथ लगी हालाँकि ये

बदला देगा। चुनान्चे इस मज़्मून की वहयी नाज़िल हुई। आईशा फ़रमाती हैं कि मैं उन औरतों की निस्बत सोच रही थी जो (अपने) आपको नबी के वास्ते वक़्फ़ कर चुकी थीं और कह रही थीं कि औरत क्योंकर आपको वक़्फ़ कर सकती है इस पर वहयी नाज़िल हुई कि जिनके पास जाने को तेरा दिल ना चाहे उनके पास मत जा, जिसके साथ तेरा दिल चाहे हम-बिस्तर हो और जिनके पास जाने में तू ने ग़फ़लत की थी उनमें से जिस किसी के साथ तेरा दिल चाहे हम-बिस्तर हो। इस से कुछ तुझ पर मुवाख़िज़ा नहीं। (सूरह 23:51) मैंने कहा कि मैं ऐसी कोई बात नहीं देखता जिसमें ख़ुदा आपको राज़ी ना रखता हो जो आप चाहते हैं, वही होता है।

बहुत मुश्किल काम है। इस से ये मालूम होता है कि मुसलमानों की तफ़्सीरें इन ख़ूबीयों से मुअर्रा हैं जो मसीही मुफ़स्सिरों की किताबों में होती हैं यानी ईसाईयों की हर तफ़्सीर में नई नई बातें और ख़्याल होते हैं। क़ुरआन की तफ़्सीर का कमाल सिर्फ यही है कि जो कुछ अगलों ने लिखा है वही हो। पुराने ख़यालात में फ़र्क़ ना पड़े, दर हाल ये कि दुनिया में ज़माना ब ज़माना इन्क़िलाब हो और ख़यालात की हदूद वुसअत पाईं। पर वो नविश्ता ऐसा बे-हिस व हरकत रहे, जैसे मुर्दा आदमी का हाथ होता है।

जिन अल्फ़ाज़ इस्तिलाही का जानना तालिबे इल्म को ज़रूरी है और जिन तारीफों का समझना उसे लाज़िम है वो वही हैं जिनसे हक़ीक़त अल्फ़ाज़ और जुमलों की और इस्तिमाल अल्फ़ाज़ क़ुरआनी का और तरीक़ा इस्तिख़्राज दलाईल का आयात क़ुरआनी से मालूम होता है। अव्वल क़ुरआन के अल्फ़ाज़ चार किस्मों पर हैं। :-

1. ख़ास : ये भी तीन तरह पर है। अव्वल, वो अल्फ़ाज़ जो दलालत करते हैं कुल जिन्स पर जैसे इन्सान। दूसरे, वो अल्फ़ाज़ जो नौ पर दलालत करते हैं जैसे मर्द के बमुक़ाबला औरत है। तीसरे, वो अल्फ़ाज़ जो दलालत करते हैं "जर्नी हक़ीक़ी पर" जैसे ज़ैद का नाम है ख़ास मर्द का।

2. आम वो अल्फ़ाज़ हैं जो दलालत करते हैं बहुत से अफ़राद पर, जैसे लोग, क़ौम, गिरोह।

3. मुश्तर्क वो अल्फ़ाज़ हैं जो मुतअद व मअनी रखते हों जैसे लफ़्ज़ ऐन (عين) कि बमाअनी आँख, चशमा और सूरज के है। दूसरे लफ़्ज़ सलात (صلوٰة) के अगर ख़ुदा की तरफ़ हो तो रहमत के मअनी होते हैं जैसे सलात (صلوٰة) अल्लाह कि मअनी ख़ुदा की रहमत के है। अगर इन्सान की तरफ़ से हो तो बमाअनी नमाज़ (यानी इबादत जो जमाअत के साथ होती है) या बमाअनी दुआ के कि ये भी एक क़िस्म की इबादत है, मसलन صلوٰة الا ستفقاء (ख़ुश कसाली की नमाज़ दुआ है, ना नमाज़।

4. माव्वल (مَاوَّل) : वो अल्फ़ाज़ हैं जो मुतअद्द मअनी रखते हों, मगर वो सब मअनी एक ही मौक़े पर दुरुस्त हो सकते हैं।

इस सबब से ख़ास शरह की ज़रूरत है, मसलन सूरह कौसर 108 आयत 2 सेल साहब के तर्जुमा क़ुरआन में है। "पस नमाज़ पढ़ वास्ते परवरदिगार अपने के और क़ुर्बानी कर।" अरबी लफ़्ज़ जिसके मअनी मुतअद्दिद हैं यहां पर इस का तर्जुमा क़ुर्बानी करना किया है। बड़े फ़क़ीह अबू हनीफा के पैरौ (मानने वाले) इस के मअनी क़ुर्बानी करने के लेते हैं और इमाम शाफ़ई के मुक़ल्लिद कहते हैं कि इस के मअनी नमाज़ में सिने पर हाथ रखने के हैं। इस से मुश्तर्क और माइल का फ़र्क़ मालूम हो जाता है। मुश्तर्क में मुतअद व माअनों से फ़क़त वही एक मअनी ले सकते हैं जो इस जगह चस्पाँ हों और माइल में दोनों मअनी ले सकते हैं और वो दोनों दुरुस्त और जायज़ होते हैं।

जब तालिबे इल्म को अल्फ़ाज़ की तक़्सीम ख़ूब मालूम हो जाये और कोई लफ़्ज़ क़ुरआन का हो उस के पहचानने की इस्तिदाद (सलाहियत) हासिल हो जाये तो जुमलों के अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्में) सीखता है और जुमले दो तरह के होते हैं, जली और ख़फ़ी। इस तक़्सीम का इशारा क़ुरआन में सुरह इमरान आयत 7 में है :-

वही है जिसने उतारी तेरे ऊपर किताब बाअज़ उस की आयतें मुहकम हैं (यानी ज़ाहिर माअनों हैं) वो किताब की जड़ (यानी मान हैं) और पस जिन लोगों के दिलों में लिजी है वो पैरवी उस चीज़ की करते हैं जो शुब्हा डालती है इस में से गुमराही चाहने के वास्ते और इस की तावील चाहने के वास्ते लेकिन इस की तावील (हक़ीक़त) सिवाए ख़ुदा[11] के और कोई नहीं जानता। और जो लोग इल्म में मज़्बूत हैं वो कहते हैं हम ईमान लाए साथ उस के सब हमारे रब की तरफ़ से है।

---

11 ख़ुदा ने नबी को और नबी ने सहाबा को ये तावील बताई। इस वास्ते तमाम सुन्नीयों का अक़ीदा उनके मुवाफ़िक़ होना चाहीए। पस क़ुरआन के मआनी जो मुहम्मद ﷺ ने बताए थे उन्हीं की पैरवी सीनों में थी। इस वास्ते किसी दूसरे के इजतिहाद के वास्ते ना गुंजाइश है, ना ज़रूरत है।

इसी से कुल किताब के मक़ूलों को हक़ीक़ी और मजाज़ी दो तरह से तक़्सीम किया है। इसलिए कि दोनों किस्मों को बसेहत समझा सके मुफ़स्सिर को लाज़िम है कि (1) ये जाने कि किस सबब से, (2) किस मुक़ाम पर, (3) किस वक़्त में वो आयत जिसकी शरह कर रहा है नाज़िल हुई थी और ये भी जानना ज़रूरी है कि आयत नासिख़ या मंसूख़ है। मुनासिब तर्तीब व मुक़ाम पर है या नहीं। इस के मअनी इस से ज़ाहिर हैं या नहीं या इबारत माफ़ौक़ व माबाअ्द से मअनी निकालने की हाजत है। तमाम अहादीस जो इस मज़्मून पर शहादत देती हैं और हर एसी हदीस की सनद जानता हो। इन मआनी और क़ुयूद से मुफ़स्सिर का सही इतलाक़ अस्हाब पर हो सकता है। इसी से ये वजह मालूम होती है कि उस वक़्त से मुफ़स्सिर आज तक सिवाए उनकी राएं बयान करने के अपनी अक़्ल से कुछ नहीं बताते हैं। ख़ैर इस ख़ारिज बह्स को छोड़कर अस्ल मतलब पर फिर आते हैं। जुमले या ज़ाहिर होते हैं या ख़फ़ी। ज़ाहिर भी चार तरह हैं।

(1) ज़ाहिर वो जुम्ला है जिसके मअनी सुनने वाला सुनते ही पहचान ले ज़्यादा इस्तिफ़सार की ज़रूरत ना रहे। इस क़िस्म के कलाम में इम्कान नस्ख़ व तग़य्युर का होता है। लेकिन जब तक मंसूख़ ना हों इस पर अमल करना ख़ुदा के सरीह हुक्म के मुवाफ़िक़ तसव्वुर किया जाता है। तअज़ीर (उज़्र) के तमाम अहकाम व आईन जिनमें तग़य्युर व नुस्ख़ जायज़ हो मसलन ख़ैरात करना बजाय रोज़ा रखने के इसी पर जो कलाम ज़ाहिर की निहायत साफ़ सूरत है मजहूल होनी चाहिऐं।

(2) नस उमूमन क़ुरआन की आयत को कहते हैं। लेकिन इस्तिलाह में नस उस जुम्ले को कहते हैं कि इस में कोई ऐसा लफ़्ज़ वाक़ेअ हो जिससे उस का मतलब ख़ूब खुल जाये। ज़ेल की इबारत से ज़ाहिर और नस दोनों का फ़र्क़ मालूम होता है। निकाह में लाओ ऐसी औरतें जैसी तुम चाहो। दो दो या तीन तीन या चार चार। ये कलाम ज़ाहिर इस सबब से है कि अलानिया जवाज़ निकाह की ख़बर है और नस इस सबब से है कि अल्फ़ाज़ एक, दो, तीन और चार जो इस

इबारत में आए हैं ये दलालत करते हैं कि चार से ज़्यादा जो रूएं रखना जायज़ नहीं है।

(3) मुफ़स्सिर वो कलाम है जो मुहताज किसी ऐसे कलिमे का हो कि उस की तफ़्सीर करे और साफ़ मअनी बताए। "सब मलाइका ने सज्दा किया सिवाए इब्लीस के", (शैतान) यहां पर सिवाए इब्लीस के ये मअनी हैं कि उसने सज्दा नहीं किया। इस क़िस्म के जुम्ले में तसर्रुफ़ हो सकता है।

(4) मुहकम (यानी ज़ाहिर माअनों का) वो कलाम है जिसके माअनों में कुछ शुब्हा ना हो और ना इस में कुछ तग़य्युर व तसर्रुफ़ हो सके, मसलन "ख़ुदा सब बातें जानता है।"

इस क़िस्म के जुमलों में तग़य्युर नहीं हो सकता है। ऐसे कलाम पर बग़ैर एतराज़ हक़ीक़ी माअनों के अमल करना इत्तिबा हुक्म ईलाही का कमाल मर्तबा है। जब दो जुमलों में सरीह तनाक़िस हो तो उस वक़्त फ़र्क़ देखा जाता है और पहली क़िस्म की जगह दूसरी को क़ायम कर सकते हैं और अला हज़ा-उल-क़यास (इसी क़ियास पर) मसलन मुहकम को इस से अव्वल की क़िस्म में बदल नहीं सकते, ना मुफ़स्सिर को नस वग़ैरह कलाम के दूसरी बड़ी क़िस्म में।

(1) **ख़फ़ी है :** ख़फ़ी वो आयात हैं जिनसे सिवाए ज़ाहिर मअनी के ज़मनन और मअनी भी निकलते हूँ मसलन (सूरह अन्आम 5:42) चोरी करने वाला मर्द हो या औरत इन दोनों के हाथ काटो कि ये उनके अमल का बदला है।" इस में السارق के ज़ाहिरी मअनी चोर के हैं मगर ज़मनन क़ज़्ज़ाक़, थैली काट और खन्न खसूट वग़ैरह सब दाख़िल हैं।

(2) **शक्ल :** इस की एक मिसाल ये है और (उनके ख़ादिम चांदी के बर्तन और प्याले लिए हुए उनके आस-पास फिरेंगे और सुराहीयाँ चांदी की होंगी। यहां ये मुश्किल है कि सुराहीयाँ चांदी की नहीं बनती शीशे की बनती हैं, मगर मुफ़स्सिर कहते हैं कि शीशा का रंग अगरचे चमकदार होता है लेकिन ख़ूब सफ़ैद नहीं होता और चांदी सफ़ैद होती

है लेकिन शीशे की तरह चमक नहीं होती। क्या अजब है कि बहिश्त की सुराहीयाँ चमक के एतबार से शीशे की सुराहियों की मानिंद हों और रंग में चांदी की मानिंद हों लेकिन बहर नहज इस के मअनी का दर्याफ़्त करना मुश्किल है।

(3) **मुजमल** : अव्वल वो आयात हैं जिनमें ऐसे कलिमात हों जो मुतअद्दिद मअनी रखते हों। ऐसी सूरत में इस आयत से वो मअनी लेने चाहिऐं जो इसी मज़्मून की अहादीस से साबित हों वही मअनी वाजिब-उल-तामील व अल-तस्लीम होंगे। दूसरा इस आयत में कोई कलिमा निहायत शाज़ हो और इस सबब से इस के मअनी मशकूक हूँ, मसलन (सूरह मआरिज 70:19) में है कि "तहक़ीक़ कि आदमी बेसब्र पैदा किया गया है।" इस आयत में कलिमा ہلوع बमाअनी सब्र के वाक़ेअ हुआ है जो निहायत क़लील-उल-इस्तअमाल है। अगर ये आयतें ना होतीं यानी कि जब उस को बुराई लगती इज़्तिराब करने वाला है और जब उसे भलाई लगती है तो मना करने वाला है तो हरगिज़ ہلوع के मअनी समझना आसान होते।

आयात मुजमल की पहली क़िस्म की एक मिसाल ये है कि क़ायम करो नमाज़ और दो ज़कात। सलात और ज़कात दोनों लफ़्ज़ मुश्तर्क-उल-माअनी हैं। इस सबब से लोग आयत के मअनी नहीं समझे और मुहम्मद अरबी से अर्ज़ की कि इस का मतलब बता दीजीए। आपने फ़रमाया कि सलात बमाअनी अरकान नमाज़ खड़े हो कर अल्लाहु-अकबर (ख़ुदा सब से बड़ा है) कहना या क़ुरआन की चंद आयात पढ़ने के हो सकता है या दरपर्दा दुआ मांगने के हैं। ज़कात के लुगवी मअनी बढ़ने के हैं मगर नबी ने इस के मअनी यहां पर ख़ैरात के लिए और ये फ़रमाया कि अपने माल से चालीसवां हिस्सा ख़ुदा की राह पर दो।

(4) मुतशाबेह वो आयात हैं जिनमें आदमी किसी तरह नहीं समझ सकते (इस का ज़िक्र सूरह इमरान आयत 3 से सफ़ा 49 में कर चुका हूँ) और ना हश्र तक समझ आयेंगी, मगर नबी को उनके मआनी मालूम थे। अलिफ़ लाम मीम, अलिफ़ लाम रा, (الم ، الرا ،) बस

बाअज़ सूरतों के शुरू में जो आए हैं हुरूफ़ मुतशाबेह[12] हैं। इस क़िस्म के मुहावरात जैसे ख़ुदा का हाथ, ख़ुदा का मुँह, ख़ुदा बैठा है वग़ैरह मुतशाबिहात हैं।

दूसरी बह्स क़ुरआन में क़ाबिल-ए-लिहाज़ अल्फ़ाज़ का इस्तिमाल है और यहां भी फिर वही चार किस्में हैं यानी लफ़्ज़ का इस्तिमाल चार तौर पर होता है :-

(1) या तो अज़ रूए हक़ीक़त हो यानी लफ़्ज़ के असली मअनी लिए जाएं जैसे रुकूअ बमाअनी "झुकने" के और सलात बमाअनी "दुआ" के।

(2) या अज़ रुए मजाज़ हो यानी लफ़्ज़ के असली मअनी नहीं लिए जाएं बल्कि उस के मुनासिब कोई और मअनी मुराद हों जैसे सलात बमाअनी नमाज़ इबादत मअनी के।

(3) सरीह वो अल्फ़ाज़ हैं जिनके मआनी साफ़ ज़ाहिर हों जैसे "तुझे तलाक़ दी गई है", "तू आज़ाद है" तो इस का मतलब ज़ाहिर है।

(4) किनाया उन अल्फ़ाज़ में होता है जिनका इस्तिमाल बतरीक़ मजाज़ हो और बग़ैर दूसरी इबारत के इस का मतलब ना खुले, मसलन "तुझे छोड़ दिया है।" अगर सिर्फ इतनी इबारत हो तो शायद उस के ये मअनी लिए जाएं कि तुझे तलाक़ दे दी है। इस क़िस्म में तमाम ज़मायर जिनका मतलब कुल मज़्मून से खुलता है दाख़िल हैं, मसलन एक रोज़ किसी ने नबी का दरवाज़ा खटखटाया। आपने नहीं पहचाना कि कौन है तो आपने पूछा कि तू कौन है? उसने जवाब दिया "मैं

---

12 इब्ने ख़ल्दून कहते कि 600 हिज्री क़ुदसी के मोअतबर फ़िक़्ह मखश्री ने इन हुरूफ़ मुक़तआत (مقطعات) की निस्बत इस तरह फ़रमाया है कि इस से साबित हुआ कि क़ुरआन के तरीक़े इबारत में ऐसी ख़ूबी है कि कोई उस की तक़्लीद नहीं कर सकता क्योंकि ये किताब जो हम पर उतरी से मुरक्कब या लहरुफ़ है। सब इन हुरूफ़ को जानते हैं लेकिन ये किसी के इख़्तियार में नहीं कि इन्हीं हुरूफ़ से ऐसी बातें बना लें जो क़ुरआन की मानिंद हों। इस आयत पर बैरन सिलें साहब लिखते हैं कि इस के मअनी साफ़ नहीं हैं और इब्ने ख़ल्दून की किताब का तुर्की मुतर्जिम ये मअनी लेता है कि ख़ुदा तआला इन हुरूफ़ को कई सूरतों में इसी वास्ते लाया है कि लोग उस के समझने से आजिज़ हों। (इब्ने ख़ल्दून जिल्द 3, सफ़ा 6)

हूँ" मुहम्मद अरबी ने कहा कि मैं क्यों कहता है, अपना नाम क्यों नहीं लेता ताकि मैं जानूं कि तू कौन है। ज़मीर मुतकल्लिम "मैं" यहां पर किनाया है।

इल्म तफ़्सीर में निहायत ज़रूरी और मुश्किल काम इस्तिदलाल है। क़ुरआन से दलाईल अख़ज़ करने को इस्तिदलाल कहते हैं। ये भी चार किस्मों पर हस्ब-ज़ैल मुनक़सिम है।

(1) इबारत साफ़ जुम्ले को कहते हैं। "और बच्चे वालियाँ अपनी औलाद को दो बरस दूध पिलाएं और जिसका लड़का है उस पर उनका खिलाना और पहनाना अच्छी तरह पर है।" (सूरह बक़रह 2: 233) इस आयत से दो नतीजे निकालते हैं। अव्वल (इनका) जमाअ मुअन्नस की ज़मीर है इस वास्ते वालदात की तरफ़ राजमाअ है, औलाद की तरफ़ नहीं। दूसरा चूँकि माँ की निगरानी लड़के के बाप पर लाज़िम है तो इस से पाया जाता है कि माँ की बनिस्बत बाप से औलाद का ताल्लुक़ क़रीब-तर है। पस अहकाम तअज़ीर भी इसी क़ियास पर क़ायम होंगे।

(2) इशारत कोई अलामत या इशारा जो तर्तीब अल्फ़ाज़ से पाया जाये।

(3) दलालत उस दलील को कहते हैं जो किसी आयत के ख़ालिस लफ़्ज़ से अख़ज़ की जाये। "पस मत कह तू माँ बाप से उफ़" (बनी-इस्राईल 17:23) उफ़ के लफ़्ज़ से ये मतलब निकलता है कि औलाद ना अपने वालदैन को मारे ना भला बुरा कहे। सज़ा के अहकाम भी दलालत से निकल सकते हैं, मसलन दौड़ते हैं बीच ज़मीन के फ़साद को और अल्लाह फ़साद करने वालों को दोस्त नहीं रखता है। (सूरह माइदा 5:69) نسط یسعون से जिसका तर्जुमा दौड़ते हैं किया है, ये दलील निकाली है कि क़ज़्ज़ाक़ भी इधर उधर फ़साद करते फिरते हैं इस वास्ते वो भी इन लोगों में हुए जिन्हें ख़ुदा दोस्त नहीं रखता है और इसी सबब से उन्हें निहायत सख़्त तअज़ीर चाहीए। क्योंकि जो क़ियास दलालत से क़ायम है निहायत सख़्त अहकाम तअज़ीर के तोज़ीअ (नीचे रखना, आजिज़ करना) के काफ़ी अस्ल होगा।

(4) इक़तिज़ा ऐसा क़ियास है जो मुक़तज़ी चंद शराइत को है और जो कोई मार डाले मुसलमान को अन्जाने से पस आज़ाद करना एक गर्दन मुसलमान का है। (निसा आयत 92) किसी को ये इख़्तियार नहीं कि अपने हमसाया के ग़ुलाम को आज़ाद करे। इस जगह ये शर्त अगरचे लफ़्ज़न मज़्कूर नहीं कि ग़ुलाम इसी आज़ाद करने वाले की मिल्कियत से हो मगर माअनन समझा जाता है। क़ुरआन मुनक़सिम है।

(1) हर्फ़ (हुरूफ़) पर : हुरूफ़ की तादाद में रावियों का इख़्तिलाफ़ है। एक किताब में लिखा है कि 238606 1 हुरूफ़ हैं।

(2) कलिमा (कलिमात) पर : बाअज़ के बयान से 79087 कलिमात हैं और बाअज़ कहते कि 77934 कलिमात हैं।

(3) आयत (आयात) पर : आयत के लफ़्ज़ी मअनी निशानी के हैं। मुहम्मद अरबी ने क़ुरआन के जुमलों का ये नाम रख दिया। जहां आयत ख़त्म होती है वहां एक छोटा दायरा इस तरह का ⊙ बना होता है। अगले क़ुरआन पढ़ने वाले महल आयात पर मुत्तफ़िक़ ना थे। इस सबब से पाँच मुख़्तलिफ़ तरीक़े तर्तीब आयात के पैदा हो गए और आयतों के शुमार में मुख़्तलिफ़ नुस्ख़ों से फ़र्क़ पड़ गया है और वो इख़्तिलाफ़ इस तरीक़ से है।

(1) आयात कुफ़ी : क़ारियाँ शहर कुफ़ा ये कहते हैं कि हमने हज़रत अली का तरीक़ इख़्तियार किया है। हिन्दुस्तान के मुसलमान अलल-उमूम उन्हीं के तरीक़ पर आयतों का शुमार करते हैं। उनके नज़्दीक कुल क़ुरआन में 6239 हैं।

(2) आयात बसरी : बसरे के क़ारी आसिम बिन हुज्जाज सहाबा के पैरौ (मानने वाले) हैं। उनके नज़्दीक 6206 आयतें हैं।

(3) आयात शामी : शाम के क़ारी अब्दुल्लाह बिन उमर सहाबी के पैरौ (मानने वाले) हैं। उनके हिसाब से 6225 आयतें हैं।

(4) आयात मक्की : इस हिसाब से 6219 आयतें हैं।

(5) आयात मदनी : इस क़िरअत के बमूजब 6211 आयात हैं।

बिसमिल्लाह को शुमार आयात में किसी ने महसूब नहीं किया है, वर्ना बिसमिल्लाह 113 मर्तबा क़ुरआन में आई है। लेकिन इख़्तिलाफ़ बिलउमूम किसी आयत के मअनी पर मोअस्सर नहीं। तीसरी सूरत की तीसरी आयत अलबत्ता इस से मुस्तसना है क्योंकि इस जगह पूरे रहाऊ (ठहराओ टिकाऊ) को जिसकी पहचान छोटा दायरा ⊙ है इल्म कलाम के आग़ाज़ से बड़ा ताल्लुक़ है। बाक़ी सूरतों को हस्ब-ज़ैल क़ियास करना चाहीए। सूरह 27 में मुल्क सबा के अहवाल में लिखा है कि सुलेमान से ख़त पा कर अपने उमरा से इस तरह मुख़ातब हुई "तहक़ीक़ बादशाह जिस वक़्त किसी शहर में दाख़िल होते हैं तो उसे ख़राब करते हैं और उस के इज़्ज़तदार लोगों को ज़लील करते इसी तरह ये भी करेंगे" बाअज़ क़ारी "अज़ला" اذلہ यानी "ज़लील करते हैं" पर पूरी आयत करते हैं और कहते हैं कि ख़िताब करने वाला इन अल्फ़ाज़ का यानी "और इसी तरह ये भी करेंगे" ख़ुदा तआला है।

(6) सूरत : उसे बमंज़िल-ए-बाब के तसव्वुर करना चाहीए। सूरह के लफ़्ज़ी मअनी अहाता या दीवार के हैं, लेकिन अब अबवाब क़ुरआन को सूरतें कहते हैं। कुल सूरतें क़ुरआन में 114 हैं। अरबी क़ुरआन में इस तरह नहीं कहते हैं कि ये दूसरी सूरत है या फ़ुलां सूरत 14 वीं है बल्कि हर सूरत का कोई मुनासिब नाम किसी ऐसे लफ़्ज़ से जो उस सूरत में आया हो रख दिया है, बक़रह (गाय), निसा (औरतें) अला हाज़ा उल-क़यास सूरतें ब-तर्तीब वाक़ियात नहीं बल्कि तवालत के लिहाज़ से रखी हैं। बड़ी सूरतें पहले हैं और छोटी सूरतें अख़ीर में आई हैं। ये बात बमंज़िल-ए-क़ायदा कुल्लिया के है कि छोटी सूरतें जिनमें मुसलमानों की इलाहयात का ज़िक्र है, वो मक्की[13] हैं और बड़ी सूरतें जिनमें ख़ासकर अख़्लाक़ के अहकाम और ताल्लुक़ात का और जज़ईआत मुल्की के इंतिज़ाम का बयान है वो उस वक़्त में उतरी थीं जब मुहम्मद अरबी मदीना में अपनी क़ुव्वत

13 आख़िर ये आयत जो मक्का में नाज़िल हुई थी "इनमें पूरा दे चुका दीन तुम्हारा तुमको और पूरा किया मैंने तुम पर एहसान अपना और पसंद किया मैंने तुम्हारे वास्ते दीन मुसलमानी। फिर जो कोई नाचार हो गया भूक में कुछ गुनाह पर नहीं डालता, तो अल्लाह है बख़्शने वाला मेहरबान। (अल-मायदा आयत 5) (इब्ने ख़ल्दून की किताब जिल्द अव्वल, सफ़ा 206)

को इस्तिहकाम देते थे। इसलिए क़ुरआन पढ़ने का निहायत उम्दा तरीक़ा ये है कि अख़ीर से शुरू करें।

सूरतों को मुनासिब तर्तीब पर रखने की कोशिश बहुत मुश्किल है और फ़िल-जुम्ला ऐसा हो भी तो फ़क़त तर्तीब दुरुस्त हो जाएगी। एक बात का बार-बार आना, लंबे लंबे पेचदार और उलझे हुए फ़िक़्रे दहक्कानी और ग़ैर मौज़ूं अल्फ़ाज़ के ज़िक्र और मेकार रॉयल साहब कहते हैं कि कोई यूरोपियन बजुज़ उस के कि ख़िदमत मुअय्यना समझे और किसी तरह क़ुरआन का पढ़ना पसंद नहीं करेगा, अगर अज़ सर-ए-नौ तर्तीब दी जाये तो अलबत्ता वाज़ेह हो जाये ऐसी तजदीद तर्तीब की ख़ास कसौटी तर्ज़ इबारत और मज़्मून है। दोनों एतबार से अगली और पिछली सूरतों में बड़ा फ़र्क़ है। तारीख़ी वाक़ियात के हवालों से अलबत्ता बाअज़ जगहों में पेचीदगियां आसान हो जाती हैं। कोई सूरत ऐसी नहीं कि इस में मुख़्तलिफ़ मज़ामीन ना हों (अक्सर एक ही सूरत में मुख़्तलिफ़ मज़ामीन हैं) लेकिन जो कुछ हैं इब्तिदा से हैं। ख़लीफ़ा उस्मान के अह्द में ज़ैद ने नज़र-ए-सानी कर के जिस तरह तर्तीब दिया था, वही तर्तीब आज तक तसर्रुफ़ चली आती है। इख़्तिलाफ़ क़िरअत के जो पाए जाते हैं वो पहले से बता दीए गए हैं। उनको सूरतों की तर्तीब में कुछ दख़ल नहीं।

(7) सी-पारा बमाअनी तीसवें हिस्सा के : ये फ़ारसी लफ़्ज़ है और मुरक्कब है। सी (तीस) और पारा (टुकड़ा हिस्सा) से। अरब हर पारे को जुज़ कहते हैं। इस तक़्सीम से ये फ़ायदा है कि क़ुरआन पढ़ने वाला अगर हर रोज़ एक पारा पढ़े तो कुल क़ुरआन एक महीना में ख़त्म हो जाता है। मुसलमान क़ुरआन में सूरत और आयत से हवाला नहीं देते बल्कि सी-पारा और रुकूअ से (जिसकी तफ़्सील में एक बयान किया चाहता हूँ) निशान हैं।

(8) रुकूअ (जमा रुकूआत) : जब इबादत करने वाला हालत नमाज़ में झुकता है तो इस झुकने को रुकूअ कहते हैं। क़ुरआन से चंद आयात पढ़ने और ख़ुदा की हम्द बयान करने को और बाअज़ हरकअत व सकनात को जो नमाज़ से मुताल्लिक़ हैं एक रकअत कहते हैं। ग़रज़ कि इबादत करने

वाला चंद आयात पढ़ कर रुकूअ में जाता है यानी झुकता है। उस वक़्त जिस क़द्र पढ़ चुकता है उसे रुकूअ कहते हैं। रिवायत है कि जब ख़लीफ़ा उस्मान रमज़ान के महीने में रात को क़ुरआन सुनाते थे तो बीस रकआतें किया करते थे। हर रकअत में नई आयतें पढ़ते थे। पहली सूरत से शुरू के बराबर पढ़ते चले जाते थे। इस तरीक़ से हर शब को क़रीब दो सौ आयात के पढ़ लेते थे यानी हर रकअत में दस आयतें पढ़ते थे। तब से ये मामूल हो गया है कि इसी तरीक़ से हर रमज़ान में क़ुरआन सुनाया जाता है और हवाला भी इसी तरह देते हैं कि फ़ुलां आयत फ़ुलाने सी-पारा और फ़ुलां रुकूअ में है। बयान ज़ेल से रकअत का मतलब खुल जाएगा।

जब मोमिन मस्जिद में जमा होते हैं तो इमाम उनके आगे क़िब्ले की तरफ़ मुँह कर के इस तरह नमाज़ शुरू करता है। हर नमाज़ खड़े हो कर नीयत बाँधता है (नीयत के वास्ते चंद अल्फ़ाज़ मुअय्यना हैं जिनसे इरादा नमाज़ का मालूम होता है) फिर अल्लाहु-अकबर (ख़ुदा सबसे बड़ा है) कहता है। इस के बाद नीचे को मुँह कर के पढ़ता है। ऐ ख़ुदा तू पाक है और तुझी को तारीफ़ सज़ावार है, तेरा नाम बड़ा है और तेरी अज़मत बड़ी है और सिवाए तेरे कोई माबूद नहीं। फिर उस के बाद कहते हैं। ख़ुदा की पनाह मांगता हूँ मैं शैतान रानदे (रांदा, निकाला हुआ, धुत्कारा हुआ) हुए से। फिर बिसमिल्लाह पढ़ते हैं यानी शुरू करता हूँ मैं साथ नाम ख़ुदाए रहमान व रहीम के। फिर सूरह फ़ातिहा जो क़ुरआन के शुरू में छोटी सी सूरह है, पढ़ी जाती है। इसे पढ़ कर रमज़ान की पहली शब को इमाम दूसरी सूरत[14] से शुरू करता है और चंद आयतें पढ़ कर रुकूअ करता है यानी सर और धड़ को ख़म करता है और दोनों हाथ दोनों ज़ानूँ पर रख लेता है। इस मौक़े पर अल्लाहु-अकबर (ख़ुदा सबसे बड़ा है) कह के तीन बार ये अल्फ़ाज़ कहता है पाक है रब मेरा। फिर खड़े हो कर कहता है "ख़ुदा उस की सुनता है जो उस की तारीफ़ करता है।" इस के जवाब में लोग कहते हैं

14 सिवाए तरावीह के और नमाज़ों में बाद सूरहफ़ातिहा के इख़्तियार है जो चाहो आयत पढ़ो लेकिन अक्सर सूरहइख़लास पढ़ने का दस्तूर है

"ऐ रब सब तारीफ़ तुझी को है।" फिर सज्दे में जाते वक़्त नमाज़ी अल्लाहु-अकबर (ख़ुदा बड़ा है) कहता है और फिर अव्वल नाक फिर पेशानी ज़मीन पर टेक कर तीन मर्तबा कहता है "पाक है मेरा रब जो सबसे बड़ा है।" फिर सर उठा कर दो ज़ानूँ बैठे हुए अल्लाहु-अकबर (ख़ुदा सबसे बड़ा है) कहता है। फिर दुबारा सज्दे में जा कर पहले की तरह पढ़ता है "पाक है मेरा रब, अलीख" और फिर उठकर अल्लाहु-अकबर (ख़ुदा सबसे बड़ा है) कहता है। उस वक़्त एक रकअत पूरी हो जाती है। रमज़ान के महीने में हर शब को बीस दफ़ाअ ऐसा ही किया जाता है। सिर्फ इतना फ़र्क़ होता है कि फ़ातिहा के बाद और रुकूअ से पहले हर रकअत में नई आयतें पढ़ी जाती हैं। नमाज़ी चाहे जिस मुल्क का हो कुल नमाज़ अरबी में पढ़ी जाती है। रुकूअ का नाम (नमाज़ से) मुंतक़िल हो कर क़ुरआन के इस क़द्र मजमूआ आयात का नाम जिस क़द्र रुकूअ करने से पहले पढ़ते थे, हो गया है। कुल क़ुरआन में 5500 रुकूअ हैं।

(9) सिवाए तक़्सीम मज़्कूर बाला के और किस्में हैं मगर वो बहुत ज़रूरी नहीं, मसलन समन, रबअ, निस्फ़, सलस, आठवां हिस्सा, पाओ, आधा और तीन पाओ। नमाज़ी को कई दफ़ाअ नमाज़ में अल्लाहु-अकबर ख़ुदा बड़ा है कहना पड़ता है। एक दफ़ाअ 93 सूरत यानी अल-ज़ुहा पढ़ने के बाद तक्बीर कहते हैं। ये दस्तूर इस तरह पैदा हुआ कि एक दफ़ाअ मुनाफ़िक़ों ने आकर नबी से अस्हाबे कह्फ़ का क़िस्सा पूछा। आपने कहा कल बयान करूँगा, लेकिन इंशा अल्लाह कहना भूल गए। ख़ुदाए तआला ने बतौर तंबीया के कई रोज़ वही नहीं भेजी। इस पर मुनाफ़िक़ हंसते और कहते कि ख़ुदा ने उन्हें छोड़ दिया है, लेकिन चूँकि ख़ुदा को अपने नबी का ठट्ठा कराना मंज़ूर ना था जिब्रईल जो हमेशा मुस्तइद रहते थे फ़ील-फ़ौर अल-ज़ुहा 93 सूरत लाए। इस का शुरू ये है "क़सम दिन चढ़े की और क़सम है रात की जब तारीक हो तुझे तेरे रब ने नहीं छोड़ दिया और ना नाख़ुश रखा।" नबी ख़ुदा की सरीह रहमत अपने हाल पर देखकर इस सूरह के पढ़ने के बाद हमेशा अल्लाहु-अकबर कहा करते। इस

तरह उस का पढ़ना सुन्नत हो गया है यानी इस सबब से कि नबी ने ऐसा कहा उस का कहना लाज़िम हो गया।

क़ुरआन के मुतालिब पर मुत्ला`अ (बाख़बर) होने के वास्ते ये जानना ज़रूर है कि नस्ख़ किसे कहते हैं। जिन आयात में नस्ख़ की तरफ़ इशारा है वो ये हैं कि :-

जो आयतें हम मंसूख़ करते या भुला देते हैं तो हम इस से बेहतर उस की मानिंद लाते हैं।" (सूरह बक़रह 2 आयत 106)

बाअज़ आयते जो नबी के अह्द में हुई थीं, अब मतरूक-उल-तिलावत हैं। अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद का बयान है कि एक रोज़ नबी ने एक आयत पढ़ी। मैंने उसे फ़ौरन लिख लिया। दूसरी सुबह को मैंने देखा कि जिस चीज़ पर मैंने उसे लिखा था उस से उड़ गई थी। इस माजरे से मुतहय्यर हो कर मुहम्मद अरबी को ख़बर दी। उन्होंने कहा कि वो आयत मंसूख़ हो गई है। अब भी बाअज़ आयात क़ुरआन में ऐसी मौजूद हैं जो मंसूख़ हो गई हैं। ये मसअला निहायत मुनासिब है और जो तग़य्युर तसर्रुफ़ कि मुहम्मद अरबी ने वक़्तन-फ़-वक़्तन किया है इस का सबब समझाने के वास्ते ऐसे मसअले की ज़रूरत थी। चंद क़वाइद भी इस बाब में वज़अ किए गए हैं जो आयत मंसूख़ करती है, उसे नासिख़ कहते हैं और जिसमें नस्ख़ वाक़ेअ हुआ है, उसे मंसूख़ कहते हैं। आयात मंसूख़ तीन तरह की हैं। अव्वल, वो आयात कि उनके अल्फ़ाज़ व अहकाम दोनों मंसूख़ हैं। दूसरी वो आयात जिनके अल्फ़ाज़ मंसूख़ हैं लेकिन अहकाम बाक़ी हैं। तीसरी वह कि उनके अहकाम मंसूख़ हों लेकिन अल्फ़ाज़ बाक़ी हों। इमाम मालिक ने मंसूख़ क़िस्म अव्वल की एक मिसाल दी है कि अगर आदम के बेटे के पास सोने के दो दरिया होते तब भी तीसरे का तमअ (लालच) करता और अगर तीन होते तो चौथे का तमा करता। बजुज़ ख़ाक के और किसी चीज़ के इब्न-ए-आदम का पेट नहीं भरेगा। जो तौबा करेगा ख़ुदा उस पर मुतवज्जा होगा। इमाम मौसूफ़ कहते हैं कि ये आयत दरअस्ल नौवीं सूरत यानी तौबा में थी। एक आयत जिसे आयत जमार कहते हैं, दूसरी क़िस्म मंसूख़ की मिसाल है। वो ये है कि "अपने माँ बाप से नफ़रत मत करो क्योंकि ये भारी नाशुक्री है। अगर कोई इज़्ज़तदार मर्द या औरत ज़िना की मुर्तक़िब हो तो तुम इन दोनों को संगसार करो। ये सज़ा

ख़ुदा की तरफ़ से मुक़र्रर हुई है क्योंकि ख़ुदा क़ादिर और हकीम है।" ख़लीफ़ा उमर कहते हैं कि ये आयत हज़रत के अह्द ज़िंदगी में मुतदाविल (दस्त ह दस्त पहुंची हुई चीज़) थी लेकिन अब मंसूख़-उल-तिलावह है। इल्म उसूल में अमल दरआमद के लिहाज़ से तीसरी क़िस्म में दाख़िल है।

आयात मंसूख़ के बाब में उलमा का इख़्तिलाफ़ है। सेल साहब कहते हैं कि ऐसी आयात 225 हैं। वो मख़्सूस आयात जिनके मंसूख़ होने पर सब का इत्तिफ़ाक़ है बहुत थोड़ी हैं। इस की चंद मिसालें ये हैं। ये बात क़ाबिल लिहाज़ है कि इस क़िस्म की अक्सर आयात उन सूरतों में हैं जो मदीना में नाज़िल हुई थीं। चूँकि अव्वल मुहम्मद अरबी को ये गुमान था कि यहूदी और ईसाई मेरे तरफ़दार होंगे इस सबब से रिआयत करते थे, लेकिन जब देखा कि ये लोग हमारा कहना नहीं मानते हैं तो नस्ख़ का मसअला निकाल लिया। ज़ेल की सूरत से ये बात साफ़ ज़ाहिर है। मक्का में मुहम्मद अरबी और उनके पैरौ (मानने वाले) नमाज़ में किसी ख़ास सिम्त का रुख कर के नहीं खड़े होते थे। चुनान्चे नीचे की आयत में इस बात का इशारा है। "पूरब और पच्छीम सब ख़ुदा का है। पस जिधर को तुम मुँह करो नमाज़ में उधर ही ख़ुदा का मुँह है।" (सूरह बक़रह 2:109) जब मुहम्मद अरबी मदीना पहुंचे तो उन्होंने चाहा कि यहूदीयों को अपना दोस्त और तरफ़दार बनाएँ। इस वास्ते सब नमाज़ियों का क़िब्ला (वो जगह जिस तरफ़ रुख कर के नमाज़ पढ़ते थे यरूशलम मुक़र्रर किया। चंद मुद्दत तक वही क़िब्ला रहा लेकिन जब मुहम्मद अरबी ने अरब के नबी होने का दावा किया और ये कहा कि मैं ख़ातिम-उन्नबीयन और सब नबियों से बड़ा हूँ और ये कि मूसा ने मेरी आमद की ख़बर दी थी और ये कि मेरे मुकाशफ़ात ऐसे ही हैं जैसे कि तौरेत और इंजील के हैं तो उन्होंने मुहम्मद अरबी की मुताबअत (पैरवी) से इन्कार किया। दूसरे सन हिज्री के निस्फ़ अव्वल में उनके दर्मियान कामिल तफ़र्रुक़ा हो गया था और मक्का के क़ुरैश सरदारोँ से इत्तिफ़ाक़ करने का वक़्त था। इस वास्ते आयत मज़्कूर-उल-सदर इस आयत से मंसूख़ हो गई। **"देखते हैं तेरे मुँह का फिरना आस्मान की तरफ़ पस हम अलबत्ता तुझे इस क़िब्ले को फेर देंगे जिसे तू पसंद करे पस फेर अपने मुँह को मक्का की यानी मस्जिद हराम की तरफ़ और जहाँ कहीं भी तुम हो पस अपने मुँह उस की तरफ़ फेर लो।"**

(सूरह बक़रह 2 आयत 39) मोमिनों को इस बात से तस्कीन थी हर-चंद कि हमने अब तक ऐसा नहीं किया था। लेकिन ख़ुदा हमारे ईमान को रायगां नहीं करेगा क्योंकि ख़ुदा उन पर रहम व फ़ज़्ल करता है। (सूरह 5:138) नस्ख़ की ताअलीम ज़ेल की सूरत में ख़ास ज़ाती मतलब के वास्ते हुई। **"इस के बाद तेरे वास्ते औरतें हलाल थीं और ना ये कि बदल डाले उनसे और भी बीबियाँ अगरचे उनका हुस्न तुझे ख़ुश लगे बजुज़ इन बंदीयों के जिनकी मालिक हो गए हैं तेरे दहने हाथ।"** (सूरह अह्ज़ाब 33:52) बैज़ावी और मोअतबर उलमा-ए-इस्लाम का क़ौल है कि ये आयत दूसरे से जो अगरचे तर्तीब में पहले वाक़ेअ हुई है, लेकिन दरअस्ल उस के बाद उतरी थी, मंसूख़ हो गई है। वो आयत ये है कि ऐ नबी हमने तेरे वास्ते वो भी बीबियाँ हलाल कीं जिनका तू ने महर दिया है और जिनका मालिक तेरा दाहिना हाथ हुआ है। कुफ़्फ़ार के इस माल से जो ख़ुदा तेरे ऊपर फेर लाया है और चचाओं की बेटियां और तेरी ख़ालाओं की बेटियां वो जिन्हों ने तेरे साथ वतन छोड़ा है और हलाल की औरत ईमान वाली अगर नबी के वास्ते अपनी जान बख़्श दे यानी बग़ैर महर के अगर नबी ये इरादा करे कि इस को ख़ालिस अपने वास्ते निकाह करे सिवाए मुसलमानों के (सूरह 33:49) शहनशाह मुहम्मद अकबर ने जो उलमा की बातों का यक़ीन नहीं करना चाहता था एक दफ़ाअ आलिमों की जमाअत में जो बदफआत उस के अह्द में मज़हबी मुआमलात पर बह्स करने के वास्ते मुक़र्रर हुए थे ये मसअला पेश किया कि एक मर्द कितनी औरतें निकाह में ला सकता है। मुफ़्तियों ने जवाब दिया कि नबी ने चार की तादाद मुक़र्रर कर दी है। "निकाह करो तुम जो तुमको ख़ुश आएं औरतें दो दो तीन तीन चार चार" (सूरह निसा 3-4) बादशाह ने कहा कि मैंने आपको चार पर महदूद नहीं रखा है और शेख़ अबदालंबी ने मुझसे कहा कि एक मुज्तहिद की 9 जोरूएं थीं। मुज्तहिद मौसूफ़ यानी इब्ने अबी लैला इस तादाद को जिसका जवाज़ क़ुरआन से साबित होता है इस तरह शुमार करता था 2 3+4 =9 -बाअज़ उलमा इस तरीक़ से गिनते थे 2+ 2+ 3 +3+ 4+ 4 =18 बादशाह ये चाहता था कि जमाअत इस मुआमला का तस्फ़ीया करे। फिर 73 यानी मुज़म्मिल की 2 आयत का ये मज़्मून है "खड़ा रहा कर रात को मगर थोड़ा एक हदीस से जो आईशा से

पहुंची है ये साबित होता है कि इस सूरह की अख़ीर आयत एक बरस बाद नाज़िल हुई थी जिससे नमाज़ में बहुत आसानी हो गई थी।"

"और अल्लाह चाहता है रात को और दिन को उनने जाना कि तुम उस को पूरा ना कर सकोगे तो माफ़ी भेजी तुम पर। सो पढ़ो जितना आसान हो क़ुरआन से (20:5) **मिसाल ऐसी आयत की जो मंसूख़ है मगर कोई दूसरी आयत उस की नासिख़ मौजूद नहीं सिर्फ इज्मा उस के नस्ख़ पर मुत्तफ़िक़ है,** ये है "ज़कात जो है सो हक़ है मुफ़लिसों का और मुहताजों का और इस काम पर जाने वालों का और सब के दिल इस्लाम की उल्फ़त रखते हैं।" (सूरह तौबा 9:60) अख़ीर फ़िक़्रह यानी जिनके दिल इस्लाम की उल्फ़त रखते हैं, अब मंसूख़ है (तफ़्सीर हुसैनी, सफ़ा 216) जो लोग अव्वल दुश्मन थे और बाद को वो दोस्त हो गए थे उनके तालीफ़ क़लूब और ईमान की पुख़्तगी के वास्ते मुहम्मद अरबी माल-ए-ग़नीमत से बहुत कुछ दिया करते थे। लेकिन जब इस्लाम फैल कर ख़ूब क़वी हो गया तो आलिमों ने ये इत्तिफ़ाक़ किया कि ऐसी कार्रवाई की ज़रूरत नहीं है और कहा कि ये हुक्म मंसूख़ हो गया है और आयात जो मंसूख़ हैं उनमें रमज़ान के रोज़े, जिहाद, अहकाम इंतिक़ाम और आवर मुआमलात के मुताल्लिक़ अख़्लाक़ का बयान है।

इस ज़माने के मुसलमान बहास नस्ख़ का मसअला अह्दे अतीक़ और जदीद पर वारिद करते हैं यानी ये कहते हैं कि क़ुरआन ने दोनों को मंसूख़ कर दिया है। आपकी (मुहम्मद अरबी की) शरीअत और सब शरीयतों की नासिख़ है (शरह अक़ाइद जामी सफ़ा 131) मगर ये राय दुरुस्त नहीं है। मुसलमानों के बड़े बड़े पुराने आलिमों की ये राय है कि नस्ख़ महज़ क़ुरआन और अहादीस से मुताल्लिक़ है और वो अवामिर और नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) पर महदूद है।

"जो लोग इस बात को मुसलमानों के अक़ीदे का एक जुज़्व जानते हैं कि एक हुक्म से दूसरा हुक्म बिल्कुल मंसूख़ हो जाता है, वो सरासर ग़लती पर हैं हमारे यहां कोई ऐसा मसअला नहीं।" (तफ़्सीर अल-तौराह व इंजील मुसन्निफ़ सय्यद अहमद ख़ान सितारा हिंद, जिल्द अव्वल, सफ़ा 268)

देखो ज़मीमा इस बाब का, चौथी फ़स्ल अम्बिया तफ़्सीर इत्तिक़ान में लिखा है कि :-

"नस्ख़ उन मुआमलात में मोअस्सर है जो उम्मत मुहम्मदिया से मुताल्लिक़ हैं और ख़ास फ़ायदा इस से तरीक़ का आसान करना है।"
तफ़्सीर मतहरी में लिखा है :-

"नस्ख़ अवामिर व नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) में होता है हक़ायक़ और अख़्बार में होता है।" (नयाज़नामा मौलवी सफ़दर अली, सफ़ा 250)

ना क़ुरआन की कोई आयत ना हदीस मंसूख़ हो सकती है ता वक़्ते कि आयत नासिख़ मअनन सरीह मुख़ालिफ़ ना हो। अगर आयत क़ुरआनी हो तो ज़रूर है कि ख़ुद मुहम्मद अरबी से और अगर हदीस हो तो अस्हाब से इस के मंसूख़ होने की ख़बर पहुंची हो, मसलन मुफ़स्सिर या मुज्तहिद का क़ौल काफ़ी नहीं है जब तक कि हदीस सही से साफ़ मालूम ना हो। अगले हुक्म का मंसूख़ होना वाक़ियात तारीख़ी पर मौक़ूफ़ है, सिर्फ मुफ़स्सिर की राय पर मुन्हसिर नहीं है। ये नहीं साबित हो सकता है कि मुहम्मद अरबी ने या उनके किसी सहाबा ने कभी भी ऐसा कहा कि बाइबल मंसूख़ हो गई है। पस इस सूरत में ये पाया जाता है कि ज़माना-ए-हाल की बह्स करने वालों का दावा इस बाब में बे-बुनियाद है।

दूसरी बात ये भी निकलती है जिसका मैंने जा-ब-जा ज़िक्र किया है यानी ये कि इस्लाम में कुल तफ़्सीर व तशरीह मुताबिक़ अहादीस व रिवायत के होनी चाहीए। अलबत्ता कभी कभी तफ़रक़ात हुए हैं, मसलन जब ये ज़ाहिर हुआ कि जो लोग घर बैठे रहते हैं वो ख़ुदा के सामने इस तरह पर नहीं होते जैसे लड़ाई पर जाने वाले होते हैं तो अब्दुल्लाह और इब्ने उम्मे मकतूम ने कहा जो अंधे हैं वो क्या करें। ये सुनकर नबी ने वो तख़्ते मांगे जिस पर क़ुरआन की आयत लिखी थी। इस के बाद आप पर ग़श की सी हालत तारी हो गई। जब ज़रा इस से इफ़ाक़ा हुआ तो आपने ज़ैद से ये अल्फ़ाज़ और बढ़वाए "सिवाए ज़रर के" चुनान्चे अब वो आयत इस तरह पढ़ी जाती है :-

नहीं बराबर होते हैं बैठे रहने वाले मुसलमानों में से सिवाए ज़रर वालों के यानी अंधे, लंगड़े और बीमार के और जिहाद करने वाले ख़ुदा की राह में अपने मालों और जानों से।" (सूरह निसा 4 आयत 97) बरसों के बाद ज़ैद ने कहा "मुझे गुमान है कि ये अल्फ़ाज़ एक दरार के पास हड्डी पर लिखे थे।" क़ुरआन की क़दामत की बह्स इल्म उसूल से चंदाँ मुताल्लिक़ नहीं है, लेकिन बहुत से मुसलमान सिदक़ दिल से इस पर मुअतक़िद (अक़ीदतमंद) हैं। ख़लीफ़ा मामून के अह्द में इस मसअले पर बड़ा मुबाहिसा हुआ। आज़ा दर्राओं ने दर हालेका मुहम्मद अरबी के मुअतक़िद (अक़ीदतमंद) थे, ये दावा किया कि क़ुरआन मख़्लूक़ है। इस से उनका मतलब ये था कि क़ुरआन के मज़ामीन वहयी से आपके पास आते थे और ये ज़बान आपकी थी। ग़रज़ कि इस तरह ख़लीफ़ा के अह्द में क़ुरआन की तहक़ीक़ व तदक़ीक़ (ग़ौर व फ़िक्र, बारीकबीनी) हुई थी। 212 हिज्री में ख़लीफ़ा मौसूफ़ ने ये हुक्म-जारी किया कि जो कोई क़ुरआन को ग़ैर मख़्लूक़ क़रार देगा बेदीनी का मुल्ज़िम क़रार दिया जाएगा। लेकिन ख़लीफ़ा ख़ुद अक़्ली मज़्हब रखता था और हकीम मशहूर था। इस वास्ते दीनदारों ने ख़ामोशी इख़्तियार की, मगर क़ाइल ना हुए। सुन्नी आलिमों का अक़ीदा इस बाब में ये है कि क़ुरआन के अल्फ़ाज़ और अमला अज़ल से है और उस कलाम में जो ख़ुदा के दिल में है और इस क़ुरआन में फ़र्क़ समझना सरासर ख़ता है और मुख़ालिफ़ों का ये एतराज़ कि क़ुरआन अगर ग़ैर मख़्लूक़ है तो दो अज़ली ज़ात का वजूद लाज़िम आएगा, फ़ुज़ूल है क्योंकि इस का जवाब इस तरह दिया जाता है कि ये वो बुज़ुर्ग क़ुरआन है जो लौह-ए-महफ़ूज़ पर लिखा है। (सुरह 56:76) इस के सबूत में एक हदीस भी पेश की जाती है जिसका मज़्मून ये है कि ख़ुदा ने अपने हाथ से तौरेत लिखी और अपने हाथ से आदम को बनाया और क़ुरआन में भी अलवाह तौरेत की निस्बत जो मूसा को मिली थीं ये फ़रमाया कि हमने उसे हर मुआमले के बाब में अलवाह तौरेत पर नसीहत लिख दी। इस से ये दलील लाते हैं कि ख़ुदा ने अगले नबियों के साथ ऐसा किया तो हमारे नबी जो आख़िर अल्ज़मान और ख़ातिम-उन्नबीयिन थे उस के साथ और क़ुरआन शरीफ़ के साथ क्या कुछ ना करेगा। इस इबारत की कि क़ुरआन ग़ैर मख़्लूक़ है सही तारीफ़ समझनी आसान नहीं, लेकिन इस की तारीफ़ इस

तरह पर है कि कलाम इस हैसियत से कि ख़ुदा की ज़ात में है कलाम नफ़्सी है यानी ऐसा कलाम है कि ग़ैर मकतूब व अज़ली है। इज्मा-ए-उम्मत से और अहादीस से और नबियों से ये मुक़र्रर हो चुका है कि ख़ुदा कलाम करता है। पस कलाम नफ़्सी अज़ल से है लेकिन मुजर्रिद अल्फ़ाज़ और तर्ज़ इबादत और फ़साहत ख़ुदा ने पैदा की है, यानी मख़्लूक़ है। अला हाज़ा-उल-क़यास तर्तीब और मोअजिज़ा होने की हैसियत से है। ये बयान ज़रा माक़ूल मालूम होता है अगरचे बाअज़ उलमा के अक़ीदे में अल्फ़ाज़ भी अज़ली हैं। हर मसअला नस्ख़ इस ख़्याल के मुनाक़िज़ है लेकिन ये भी तक़दीर-ए-इलाही में अज़ल से था। हालात के इक़तिज़ा से नस्ख़ की ज़रूरत हुई लेकिन वो हालात और नीज़ आयात मन्सुखयह अज़ल से उस की मशीयत में थीं। क़ुरआन जो एक ऐसी किताब है जिसका पढ़ना ग़ैर मुसलमान को नागवार है, इस की तफ़्सीर पर लिहाज़ करने से यही नतीजा निकलता है। लेकिन बायं हमा करोड़ों आदमीयों के ख़यालात उस के पढ़ने पर ब-दिल मसरूफ़ थे और हैं, क़ाहिरा, इस्तंबोल, वस्त एशिया और हिन्दुस्तान के मदारिस में हज़ारों सर-गर्म तलबा इसी मज़्मून पर जिसका मैं बयान कर रहां हूँ सई कर रहे हैं और बहुत क़रीब है कि जिस किताब की वो इस क़द्र ताज़ीम करते हैं उसी की ताअलीम देंगे। लेकिन इस किताब के सख़्त अहकाम और ख़ारिजी औसाफ़ से ज़ाहिर है कि इस की ताअलीम से चाहें कि अक़्लमंद हो जाएं तो महज़ अबस है बल्कि मग़रूर और मुतकब्बिर हो जाते हैं और और मज़्हबों से नफ़रत करने लगते हैं तो इस पर भी इस के अजीब होने में शक नहीं क्योंकि बारह सौ बरस से ज़्यादा हो चुके करोड़ों को ख़्वाह वो वस्त एशिया के मैदानों के रहने वाले हों या हिन्दुस्तान में या बहीर-ए-रुम के किनारों में रहते हों इस्लाम पर क़ायम रखती है, हिम्मतों को ताज़ा करती है, मुसीबत और मायूसी में तस्कीन देती है। नूरानी और ईरानी, अरबी और हब्शी सब उस के पुर आवाज़ जुमलों को सीखते हैं और वाज़ेह फ़िक़्रों को रोज़मर्रा पढ़ते हैं और जैसा उनके बुज़ुर्गों ने इनसे पहले किया था वैसा ही वो भी उन्हीं अल्फ़ाज़ में दुआ मांगते हैं और इबादत करते हैं।

अव्वल ख़ुदा की वहदानीयत दूसरे क़ुरआन। आम इस से कि मुसलमान किसी नस्ल या क़ौम का हो और कोई ज़बान क्यों ना बोलता हो लेकिन

अरबी सीखने और नमाज़ में क़ुरआन से पढ़ना ज़रूर है। दूसरा मज़्मून क़ाबिल लिहाज़ अहादीस हैं जिन्हें इल्म उसूल की दूसरी शाख़ समझना चाहीए। मुहम्मद अरबी ने जो कुछ किया और कहा यानी सब क़ौल व फ़ेअल अहादीस में मुंज़ब्त हैं। हर मुसलमान चाहे जिस फ़िर्क़े का हो ये अक़ीदा रखता है कि नबी का हर क़ौल व फ़ेअल ख़ुदा की हिदायत से था। हदीस के इल्हाम का तरीक़ वहयी क़ुरआनी से मुख़्तलिफ़ है। वहयी क़ुरआन लफ़्ज़न लफ़्ज़न नाज़िल होती थी। आप इस में कुछ तसर्रुफ़ नहीं कर सकते थे और आपके क़ौल जो मजमूआ-ए-अहादीस में मुंदरज हैं वो लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ नहीं नाज़िल होते थे बल्कि इल्हाम से इस के मुतालिब आप पर मुन्कशिफ़ (ज़ाहिर होना) हो जाते थे और आप उन्हें अपनी ज़बान व मुहावरे में लोगों को सुना देते थे। बईं-हमा इस इल्हाम की हक़ीक़त में भी कुछ शक नहीं है। इस एतिक़ाद से क़ुरआन के बाद अहादीस का मर्तबा है और अहादीस दरअस्ल उस का ज़मीमा हैं। पस उनसे ना सिर्फ क़ुरआन के मुतालिब मालूम होते हैं बल्कि बजा-ए-ख़ुद ऐसी अस्ल है जिससे इस्तिख़्राज मसाइल किया जाता है और जब तक इस हद को ना पहुंचे हर हदीस को बजा-ए-ख़ुद मोअतबर तस्लीम करना ऐसा अम्र है कि इस की निस्बत साफ़ यही दावा किया जाता है कि अहादीस को बग़ैर पढ़े और जांचे ऐसी राय क़ायम करनी दुरुस्त नहीं यानी अहादीस को पढ़ कर तहक़ीक़ के क़वाइद मुअय्यना से जब तक उस की सेहत का यक़ीन ना हो ले तस्लीम करना मोअतबर नहीं है। मुसलमानों के उलूम दीनिया में अहादीस की तहसील ऐसी ज़रूरी है कि इल्म उसूल यानी इल्म तफ़्सीर में उसे भी दाख़िल किया है। इस वास्ते इस का कुछ बयान लिखना इस बाब में ज़रूरी है।

पहले चार ख़लीफों को ख़ुलफ़ाए राशिदीन कहते हैं यानी वो लोग जो औरों को हक़ की हिदायत करें। वो नबी के दोस्त और अस्हाब थे और जब कभी किसी मसअले में शक पड़ता तो मोमिन उन्हीं से रुजू करते थे। नबी ने साफ़ कह दिया था कि लोग अपने दिलों पर इस्लाम को मुनक़्क़श कर लें। इसी सबब से आपकी बातों को लिखना नहीं चाहते थे। चूँकि किसी बह्स में आपके क़ौल से ज़्यादा कोई दलील मोअस्सर नहीं हो सकती थी। ऐसा दरवाज़ा कुशादा था जिससे जाली हदीसें मोमिनों पर वज़अ हो सकती थीं।

इस के इंसिदाद को बहुत से सख़्त क़ाएदे वज़अ हुए जिसके उन्वान पर नबी का क़ौल जो ख़ुद एक हदीस है कहा गया। **जब तक कि ख़ूब यक़ीन ना जानो कि ये मेरी बात है तब तक उसे औरों को मत सुनाओ और जो कोई क़सदन मेरे नाम से कोई बात बताता है इस का ठिकाना सिवाए आग के और कहीं नहीं है।** इस क़ायदे के मज़ीद इस्तिहकाम के वास्ते ये भी मुक़र्रर है कि हदीस का रावी इस हदीस की सनद यानी सिलसिला रिवायत नबी तक पहुंचाए यानी इस तरह पर कि मैंने इस हदीस को फ़ुलां से सुना और उसने फ़ुलां से और उसने इस से, ता आंका ये सिलसिला नबी तक पहुंचे। अस्नाद के वास्ते ये ज़रूरी है कि इस का हर राई नेक चलनी और हाफ़िज़ा में मशहूर हो, मगर इस से भी बंदिश काफ़ी ना हो सकी और बहुतेरी जाली हदीसें अलानिया रिवाज पा गईं। इस वास्ते चंद अश्ख़ास ने आपको इस काम पर मुसल्लत किया कि इन जाली हदीसों को जिन्हों ने दूसरी सदी हिज्री में सख़्त ख़राबी इस्लाम में डाल दी थी छांट कर ख़ारिज कर दें। जिन शख्सों ने ये काम किया था उन्हें मुहद्दीसिन या हदीस के जमा करने वाले कहते हैं। सुन्नी और वहाबी उनको मानते हैं और उनके मजमूए को सहाह सत्ता यानी छः सही किताबें कहते हैं जिनकी तफ़्सील इस तरह है।

(1) सहीह बुख़ारी

अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद इब्ने इस्माईल मुतवत्तिन (बाशिंदा) बुख़ारा के नाम से मशहूर है। ये 194 हिजरी में पैदा हुए थे। मियानाक़द और कमज़ोर जिस्म के आदमी थे और अह्द तुफुलिय्यत (बचपन) में मह्ज़ नाबीना थे। बाप को उनके नाबीना होने का बड़ा सदमा रहता था। एक रोज़ उन्होंने ख़्वाब में देखा कि इब्राहिम आए हैं और कहते हैं कि ख़ुदा ने तेरे बेटे को बीनाई बख़्शी है। इस तरह से बीनाई पा कर दस बरस की उम्र में मदरिसा में दाख़िल हुए और अहादीस हिफ़्ज़ याद करनी शुरू कीं। जब उनकी तहसील तमाम हो चुकी थी एक नामी मुहद्दिस दाख़िली नामी इत्तिफ़ाक़न वारिद बुख़ारा हुए। एक रोज़ उस नौजवान बुख़ारी अबू अब्दुल्लाह ने मुहद्दिस मौसूफ़ पर कुछ जरह किया। हर-चंद बड़े के सामने वो जरह दाख़िल बे-अदबी था लेकिन उसी का कहना सही निकला और उसी वक़्त से बुख़ारी मौसूफ़

अहादीस की तहक़ीक़ और फ़राहमी पर मुस्तइद हो गए। सोलाह (16) बरस की उम्र में 15 हज़ार अहादीस याद करलीं। रफ़्ता-रफ़्ता 6 लाख हदीसें जमा कर लीं और नतीजा तहक़ीक़ व तदफ़ीक का ये हुआ कि 7275 हदीसें सही मालूम हुईं। सही बुख़ारी में जो उनकी तालीफ़ से बहुत बड़ी किताब है ये सब हदीसें मुंदरज हैं। कहते हैं कि अव्वल वुज़ू कर के दो रकअत नमाज़ पढ़ते थे। फिर हदीस की तहक़ीक़ी करने बैठते थे और फिर ये कहते थे ऐ मेरे रब ग़लती से महफ़ूज़ रख। सोलाह (16) बरस कामिल एक मस्जिद में रहे और कमाल इज़्ज़त-ओ-तौक़ीर से 64 बरस की उम्र में क़ज़ा की।

(2) सहीह मुस्लिम

मुस्लिम इब्ने हुज्जाज खुरासान के एक शहर नीशा पूर में पैदा हुए थे। उन्होंने 3 लाख हदीसें जमा कीं। कहते हैं कि ये बड़े रास्तबाज़ आदमी थे और जो कोई उनसे कुछ पूछता तो ख़ुशी से बताते थे। दर-हक़ीक़त यही आदत उनकी मौत का मूजिब हुई। चुनान्चे एक रोज़ हसब-ए-मामूल मस्जिद में बैठे थे कि चंद आदमी कोई हदीस पूछने आए। उन्होंने उसे अपनी किताबों में ढूंडा लेकिन जब ना मिली तो अपने घर उस की तलाश में गए। वहां पर वही लोग छुवारा (सूखी खजूर) की टोकरी उनके पास ले गए। शेख़ मौसूफ़ छुवारे खाते जाते थे और हदीस ढूंडते जाते थे लेकिन बद-क़िस्मती से इस क़द्र खा गए कि इसी से क़ज़ा की। (261 हिज्री)

(3) सुनन अबू दाऊद

अबू दाऊद सजसतानी मुतवत्तिन सितान 202 हिज्री में पैदा हुए थे। ये शख़्स बड़ा सय्याह था और जहां-जहां मुसलमानों के दार-उल-ताअलीम थे वहां गया था। इल्म अहादीस और दीनदारी और इत्तिक़ा (परहेज़गारी, तक़्वा) में बेनज़ीर था। उसने 5 लाख हदीसें जमा कीं जिनमें से 4800 अपनी किताब में मुंदरज कीं।

(4) जामेअ तिर्मिज़ी

अबू ईसा मुहम्मद तिर्मिज़ी तरमज़मीन 209 हिज्री में पैदा हुए थे। ये बुख़ारी के शागिर्द थे। इब्ने ख़ुलक़ान कहता है कि ये किताब बड़े ज़ी इल्म की तस्नीफ़ है और सेहत में ज़रब-उल-मसल है। (लुगात-उल-रिजाल जिल्द 2, सफ़ा 679)

(5) सुनन निसाई

अबू अबदुर्ररहमान निसाई शहर निसा वाक़ेअ खुरासान में 214 हिज्री में पैदा हुआ और 303 हिज्री में वफ़ात पाई। बड़ी ख़ूबी उनमें ये थी कि हमेशा एक दिन की फ़स्ल से रोज़ा रखते थे और उनकी चार जोरूएं और बहुत से ग़ुलाम थे। उनकी किताब बड़ी मोअतबर समझी जाती है। उनकी मौत का हाल क़ाबिल-ए-अफ़सोस है। उन्होंने अली के औसाफ़ में आयात किताब तालीफ़ की थी। चूँकि दमिशक़ के लोग उस ज़माने में ख़ारिजियों की बेदीनी की तरफ़ माइल थे। अबदुर्ररहमान ने चाहा कि वहां की मस्जिद में अपनी किताब सुनाऊँ थोड़ा ही पढ़ने पाए थे कि एक आदमी ने उठकर पूछा कि अली के जानी दुश्मन मुआवीया की तारीफ़ में कुछ जानते हो। उन्होंने कहा नहीं। इस जवाब से लोग बहुत ग़ुस्सा हुए और इस क़द्र ज़ूद कोब की कि थोड़ी देर के बाद दम निकल गया।

(6) सुनन माजा

इब्ने माजा[15] इराक़ में 209 हिज्री में पैदा हुए। उनकी किताब में 4 हज़ार अहादीस हैं। शीया इन किताबों को नहीं मानते और बजाय इस के

15 ये शख़्स बड़ा मोअतबर मुहद्दिस गुज़रा है और तमाम आलिम में जो अहादीस के मुताल्लिक़ हैं कामिल महारत रखता था। (इब्ने ख़ुलक़ान जिल्द 2, सफ़ा 280)

पाँच किताबें[16] अपने मुफ़ीद क़ायम करते हैं। उनकी किताबें बहुत मुद्दत-बाद की हैं और इस में शक नहीं कि उनकी आख़िरी किताब 400 हिज्री के बाद तालीफ़ हुई। वो अक़ीदा जिससे अहादीस की वक़अत का हाल भी मालूम होता है ये है कि ख़ुदा के तख़्त के सामने एक लौह-ए-महफ़ूज़ रखी है जिस पर सब होने वाली बातें और जो कुछ इन्सान के दिल में आता है और आएगा वो सब साफ़ तहरीर में लिखा हुआ मौजूद है। जिब्रईल की वसातत से नबी को लौह-ए-महफ़ूज़ की बातें मालूम होती रहती थीं। इस से ये नतीजा निकलता है कि नबी का कलाम ख़ुदा का कलाम था। इस्लाम के चार बड़े फ़क़ीहों में अहमद बिन हम्बल अहादीस के निहायत मशहूर जामअ थे। कहते हैं कि उन्हें दस लाख अहादीस से कम याद नहीं थीं जिनमें तीस हज़ार हदीस से अपने इज्तिहाद में काम लिया। अबू हनीफा जो सिर्फ 18 हदीसों को मोअतबर जानते थे। उन्होंने ऐसा मसलक क़ायम किया जो आज तक तमाम मुसलमानों में निहायत क़वी है, मगर सब हनफ़ी और नेज़ावर मुसलमान अहादीस के छःओं मजमूओं को मिंजानिब अल्लाह और इल्हामी जानते हैं। उनसे बहुत से मुतालिब निकलते हैं और क़ुरआन की तफ़्सीर उन्हीं से होती है। नबी का हुल्या और उनके अक़्ली और दीनी औसाफ़ उनके अफ़आल और इरादे सब हदीसों में जा-ब-जा मज़्कूर हैं। मज़हबी एतिक़ाद की बातें बहुत सी अहादीस पर मबनी हैं और मुसलमानों की बहुत सी रसूम दीनी इन्हीं से मालूम होती हैं। जो शख़्स मुद्दत तक मुसलमानों से रब्त व अर्तबाबत और राह व रस्म ना रखे उसे ये तहक़ीक़ बहुत दुशवार है कि उनके चलन, रवैय्या और इरादे किस क़द्र अहादीस पर मबनी हैं यानी बग़ैर मुद्दत के राह व रस्म के ये जानना दुशवार है कि कौनसी बातों में मुसलमानों का अमल हदीस पर है। हदीसों का फ़ायदा बयान करने के बाद थोड़ी सी तफ़्सील इन क़वाइद पर किया चाहता हूँ जो हदीसों के वास्ते वज़ा हुए हैं। मुहक़्क़िक़ों की तहक़ीक़ में जुज़वी फ़र्क़ है। कोई किसी तरह तक़्सीम करता और कोई किसी तरह, लेकिन बयान मुंदरजा ज़ैल मुहम्मदियों की मोअतबर

16 शीयों की पाँच मोअतबर किताबें ये हैं, काफ़ी जिसे अबू जाफ़र मुहम्मद ने 329 हिज्री में जमा किया। मन ला लिस्तहज़ीरा शेख़ अली ने 381 हिज्री में तहज़ीब और इस्तिबसार शेख़ अबू जाफ़र मुहम्मद ने 466 हिज्री में। नहज-उल-बलाग़त सय्यद रज़ी ने 406 हिज्री में।

किताब से मैंने अख़ज़ किया है। जो कुछ नबी ने फ़रमाया हो उसे हदीस क़ोली और जो कुछ किया हो उसे फ़अली कहते हैं और जो काम लोगों ने नबी के सामने किया हो और आपने उसे मना ना क्या हो वो हदीस तक़रीरी है। पस कुल अहादीस अव्वल दो क़िस्म पर मुनक़सिम हो सकती हैं :-

(1) **हदीस मुतवातिर है :** जिसकी सेहत में कुछ कलाम ना हो और इस की अस्नाद[17] यानी रावियों का सिलसिला मुतवातिर और मुकम्मल हो और जो औसाफ़ मुहद्दिस को ज़रूरी हैं वो सब उन रावियों में हों। उलमा कहते हैं कि इस क़िस्म की अहादीस बहुत थोड़ी रह गई हैं। मगर अक्सर का इत्तिफ़ाक़ है कि हदीस मुंदरजा ज़ैल इसी क़िस्म में से है। "अल-आमाल बिलनियात" (الاعمال با النيلت) कामों का मदार नियत पर है, मसलन कोई आदमी रोज़ा रखे लेकिन नीयत ना हो तो उस रोज़े का कुछ सवाब ना होगा।

(2) **हदीस अहाद :** अक़्लन मुतवातिर के बाद इस का मर्तबा है लेकिन अज़ रुए अमल दोनों बराबर हैं। हदीस अहाद भी दो किस्मों पर मुनक़सिम है।

सहीह वो है कि इस के रावी परहेज़गार और नफ़्सकुशी करने वाले और अच्छे हाफ़िज़ा के और ऐब से महफ़ूज़ और अपने हमसाइयों से सुलह रखने वाले हों। सिवाए इस के वो हदीसें सही हैं जिनकी तफ़्सील नीचे होगी। अगरचे उनके एतबार में और नीज़ रिवायत में फ़र्क़ है। मैं उन्हें उनकी वक़अत के लिहाज़ से तर्तीब देता हूँ। सही हदीसें वो हैं जो बुख़ारी और मुस्लिम के मजमूआ में हों या दोनों में से किसी एक के मजमूआ में हों या अगर इन दोनों मशहूर मुहद्दिसों में से किसी की किताब में वो हदीस मज़्कूर ना हो तो चाहीए कि क़ाएदे के मुवाफ़िक़ किसी दूसरी हदीस के मुख़ालिफ़ या मोइद हो या किसी मोअतबर जामअ के क़ाईदों के मुवाफ़िक़ नुक़्सान से महफ़ूज़ हो। हर क़िस्म की हदीस का जुदागाना नाम है।

---

17 अगर अस्नाद सही हो तो नुक़्स माअनवी हदीस की सेहत पर चंदाँ असर नहीं रखता। चुनान्चे एक क़ौल इसी बात में ये है, मसलन शाफ़ई ने पसंद मालिक के रिवायत की हो और मालिक ने नफ़ी से और नफ़ी ने इब्ने उमर से तो अस्नाद कामिल होगी।

(3) **हदीस हसन :** इस क़िस्म के रावी दो एक औसाफ़ में अव्वल उलज़िक्र के बराबर वक़अत नहीं रखते हैं, लेकिन अज़रूए अमल ये भी इस की बराबर समझनी चाहीए। (नूर-उल-हिदाया, सफ़ा 5) फ़क़त क़िस्म के लिहाज़ से इस का मर्तबा दूसरा है। इन नामों के साथ कुछ अल्फ़ाज़ इस्तिलाही में जो रावियों के औसाफ़ ज़ाती से मिस्ल अस्नाद वगैरा के मुताल्लिक़ हैं। इनमें से बाअज़ का बयान इस जगह है।

(1) **हदीस ज़ईफ़ :** वो है जिस के रावियों के औसाफ़ ऐब से ख़ाली ना हों और हाफ़िज़ा ख़राब हो या इस से भी बदतर हों यानी बिद्दत के आदी हों कि ये एक ऐसा अम्र है जो इस ज़माने की तरह उस वक़्त भी हर सच्चे मुसलमान की निगाह में सख़्त गुनाह तसव्वुर किया जाता था। इस पर सब मुत्तफ़िक़ हैं कि हदीस ज़ईफ़ चंदाँ वक़अत नहीं रखती है, लेकिन हदीसों के ज़ोफ़ और अदम ज़ोफ़ में सब का इत्तिफ़ाक़ नहीं है। एक ही हदीस को बाअज़ ज़ईफ़ कहते हैं और बाअज़ नहीं कहते हैं।

(2) **हदीस मुअल्लक़ :** वो है जिनका अस्नाद कहीं टूट गया हो। जो अस्नाद ताबइ से शुरू हो (अस्हाब के बाद जो लोग हों वो ताबइ कहलाते हैं) उसे मुर्सल कहते हैं। हदीस मुर्सल में एक सिलसिले की कमी होती है और अगर पहला सिलसिला किसी हदीस का ताबइ के बाद शुरू हो तो इस का और नाम है।

(3) वो हदीसें हैं जिनके मुतफ़र्रिक़ नाम हैं या तो इस सबब से कि उस के रावी ने अपने इमाम के नाम को पोशीदा रखा है या जहां कि रावियों का इत्तिफ़ाक़ नहीं या किसी हदीस में रावी ने अपनी तरफ़ से कुछ अल्फ़ाज़ मिला दीए हों या ये साबित हो कि वो रावी दरोग गोया ख़ाती या सहव करने वाला है। लेकिन मैं हर एक की मज़ीद तफ़्सील और तारीफ़ को ग़ैर ज़रूरी समझ कर क़लम अंदाज़ करता हूँ क्योंकि इस क़िस्म की कोई हदीस इतनी वक़अत नहीं रखती है कि इस पर कोई मसअला क़ायम किया जाये। आम क़ायदा जो सब के नज़्दीक मुसल्लम है यह कि कोई सही हदीस मुख़ालिफ़ क़ुरआन नहीं हो सकती। हदीस की वक़अत का हाल बाब 7 सबक़ में मज़्कूर है। इस हदीस की वक़अत पर क़ुरआन की तफ़्सीर का मुहतात इंतिज़ाम मौक़ूफ़ है। सुन्नीयों के नज़्दीक क़ुरआन-ओ-

सुन्नत यानी ख़ुदा का कलाम जो बिला वास्ते किसी के पहुंचा और वो कलाम जो नबी के वास्ते है, पहुंचा हो, दोनों इस्लाम की बुनियाद बल्कि ऐन इस्लाम हैं। ज़माना-ए-हाल के जो लोग इस तरीक़ की बड़ी तारीफ़ करते हैं वो इस बात का लिहाज़ नहीं रखते हैं।

बाब सोम

फ़र्क़-ए-इस्लाम

(फ़िर्क़ा : फ़िर्क़ा की जमा)

उमूमन ये गुमान है अगरचे इस के नादुरुस्त होने में शक नहीं कि मुहम्मदियों के मज़्हब में वज़ई बातें नहीं हैं और उलमा में कमाल इत्तिफ़ाक़ है। इस बाब में बताना चाहता हूँ कि बाअज़ बातों में जो उसूल ईमान से हैं बड़े बड़े फ़िर्क़ों में किस क़द्र इख़्तिलाफ़ है और इसी इख़्तिलाफ़ के सबब से उनकी इबादत वग़ैरह के तरीक़े मख़्सूस और जुदा हैं। अलबत्ता बहुत सी बातें मुत्तफ़िक़ अलैह भी हैं जिनमें से बाअज़ का बयान बाब अव्वल उसूल इस्लाम में हो चुका है। इसी बाब में ये ज़िक्र हो चुका है कि मुसलमानों के सब फ़िर्क़े ईमान के ज़रूरी उसूल पर मुत्तफ़िक़ नहीं हैं। सुन्नी और वहाबी दोनों ईमान के चार उसूल मुक़र्रर करते हैं और शीया इन सब हदीसों से जिन्हें सुन्नी और वहाबी मोअतबर कहते हैं, मुन्किर हैं। सुन्नीयों के अक़ाइद व मसाइल का मुफ़स्सिल बयान बाब माबाअ्द में होगा। इसी सबब से बाब हाज़ा में सुन्नी फ़िर्क़े का ज़िक्र बिल्कुल क़लम अंदाज़ किया है।

पहला तफ़र्रुक़ा इस्लाम में एक ख़ाना-जंगी के सबब से हुआ था। इस लड़ाई का हाल इस क़द्र मशहूर है कि इस जगह उस की तफ़्सील की ज़रा ज़रूरत नहीं है। मुहम्मद अरबी के दामाद हज़रत अली सुन्नीयों के चौथे ख़लीफ़ा थे। कहते हैं कि इब्तिदाई मुसलमानों में आख़िरी और सबसे लायक़ यही थे जिन्हें मज़हबी सरगर्मी से हज़रत की सोहबत ने मामूर कर दिया था और जो मरे दम तक सीधे सादे तौर पर हज़रत की मुताबअत पर कमर-बस्ता रहे। उन्होंने अपने नबी की कमाल इत्तिबा और जुबली ख़ूबीयों से पिछले लोगों को ताज्जुब में डाल दिया है। बईं-हमा सख़्त मुख़ालिफ़त पैदा हुई और अली कूफ़ा की मस्जिद में मक़्तूल हुए।

मौअर्रखीन फ़रीक़ैन के मुख़ालिफ़ बयानात से कुल वाक़ियात की नफ़्स हक़ीक़त दर्याफ़्त करना आसान नहीं। लेकिन अला-उल-उमूम ये गुमान किया जाता है कि अली के क़त्ल के बाद उनके बेटे हसन ने अपने बाप के हम-सर यानी मुआवीया की ख़ातिर से दावा ख़िलाफ़त छोड़ दिया था। हसन को

आख़िरकार उनकी जोरू ने ज़हर दे दिया था। कहते हैं कि उसे मुआवीया ने बहकाया था कि अगर तू ज़हर दे दे तो तेरा अक़्द (निकाह) अपने बेटे यज़ीद के साथ कर दूँगा, मगर इस से भी ज़्यादा ख़ौफ़नाक वाक़िया हनूज़ पेश आने वाला था। यज़ीद जो अपने बाप के बाद उस के तख़्त पर बैठा था निहायत अय्याश और बेदीन आदमी था। कूफ़ा के लोगों ने इस की हरकअत से नाराज़ हो कर अली के बेटे हुसैन के पास अपने एलची इस ग़रज़ से रवाना किए कि ख़िलाफ़त इख़्तियार करें। हुसैन के हवा-ख़्वाहों (ख़ैर-ख़्वाहों) ने कूफ़ा के लोगों को सरकशी पर आमादा कर के और अपनी हरकअत से अपने इरादों का इज़्हार कर के हुसैन को ले सूद ख़िलाफ़त की रग़बत दिलाई। बुरी घड़ी में हुसैन छोटा सा गिरोह 40 सवार और एक सौ प्यादों को हमराह लेकर जानिब कूफ़ा रवाना हुए। जब कर्बला के मैदान में पहुंचे तो देखा कि तीन हज़ार सिपाही रास्ता घेरे पड़े हैं तो हुसैन ने कहा कि हम चंद आदमी हैं और दुश्मन क़वी है। मैं मौत पर आमादा हूँ मगर मैं तुम्हें अहद-ए-रिफ़ाक़त से बरी करता हूँ और इजाज़त देता हूँ कि जो लोग चाहें मुझे छोड़कर चले जाएं। लोगों ने ये जवाब दिया कि उसे बेटे रसूल अल्लाह के अगर हम आज तुझे तेरे दुश्मनों के हाथों में छोड़ दें तो महशर के रोज़ तेरे नाना को क्या जवाब देंगे। ग़रज़ कि ये जवाँमर्द एक एक कर के दुश्मन के हाथ से तह-ए-तेग़ हुए, सिर्फ हुसैन और उनका एक अहलेकार बाक़ी रह गया। दरमांदगी और तिश्नगी से आजिज़ हो कर हुसैन ज़मीन पर बैठ गए। दुश्मन पास आ गए लेकिन ये किसी की जुर्रत ना पड़ी कि नबी के नवासा को क़त्ल करे। बच्चे के कान में एक तीर ऐसा आ के लगा कि जान निकल गई। हुसैन ने ग़मगीं दिल से जब अपने बच्चे की नाश को रेत पर रखा तो सब्र कर के फ़रमाया इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैही राजयऊँन और फिर जब फुरात से पानी पीने को झुके तो दुश्मन ने मौक़ा पा कर तीर बरसाए कि एक तीर दहन (मुँह, दहान मुख़फ़्फ़फ़) में लगा। कुछ अरसे तक जवाँमर्दी से दुश्मन का मुक़ाबला करते रहे लेकिन आख़िरकार जब ज़ख़्मों से बदन चूर हो गया तो ज़मीन पर गिर पड़े। सुन्नी और शीयों में अब कामिल तफ़र्रुक़ा हो गया। मुहर्रम में जो रसूम होती हैं वो इन्हीं वाक़ियात पर दलालत करती हैं और इनाद बाहमी क़ायम रहता है।

ये समझना सरासर ग़लती है कि शीया सुन्नीयों में फ़र्क़ सिर्फ ख़िलाफ़त की बह्स है। मुल्की तनाज़ा से क़त-ए-नज़र कर के अगर देखा जाये तो दीन की बातों में सुन्नीयों से सरासर मुख़्तलिफ़ हैं। शीयों का अस्ल एतिक़ाद ये है कि ख़ुदा की तरफ़ से अली मुर्तज़ा और उनकी औलाद मुस्तहिक़ ख़िलाफ़त थी। इस से नतीजा निकलता है कि इमाम का इत्तिबा ख़ास मज़हबी फ़र्ज़ है। इस से बाअज़ अजीब मसाइल निकलते हैं। इमामत की बह्स बहुत बड़ी है। इमाम अरबी लफ़्ज़ है जिसके मअनी "पेशवा बनाने" के हैं। अब इमाम का लफ़्ज़ हम-मअनी हादी और पेशवा के है। इसी मअनी से मुहम्मद अरबी को और नीज़ उनके ख़ुलफ़ा को तमाम उमूर दीनी व दुनियावी में इमाम समझते हैं। चार बड़े फ़क़ीहों को सिर्फ उमूर दीनी में पेशवा और इमाम कहते हैं। लेकिन हमारी बह्स इस के अव्वल मअनी से है और इसी मअनी में इस का इस्तिमाल क़ुरआन में भी हुआ है। जिस वक़्त इब्राहिम को इस के रब ने कई बातों से आज़माया तो उसने उन्हें पूरा किया तो ख़ुदा ने कहा कि मैं तुझे लोगों के वास्ते इमाम करने वाला हूँ। बोला और मेरी औलाद से तो ख़ुदा ने कहा कि मेरा अह्द ज़ालिमों को नहीं पहुँचेगा। (सूरह बक़रह आयत 134)

इस आयत से दो मसाइल साबित होते हैं। अव्वल ये कि इमाम ख़ुदा की तरफ़ से मुक़र्रर होता है क्योंकि अगर ऐसा ना था तो इब्राहिम ने यूं (क्यों) कहा और औलाद मेरी से। दूसरा इमाम मासूम यानी गुनाह से पाक होता है क्योंकि ख़ुदा ने साफ़ कह दिया है कि मेरा अह्द ज़ालिमों को नहीं पहुँचेगा। इमामत की अव्वल बह्स इन 12 हज़ार आदमीयों से शुरू हुई थी जिन्हों ने सिफ्फेन की लड़ाई (657) में अली से बग़ावत इख़्तियार की थी। अली ने इस बह्स को जो उन के और मुआवीया के दर्मियान हुई थी जमाअत के तस्फ़ीया पर छोड़ दिया था। चंद साल के बाद अली ने उन सब आदमीयों को बर्बाद कर दिया था। बाअज़ उनमें से जो बच रहे वो अतराफ़ व जवानिब को भाग गए और आख़िरकार उनमें से उम्मान में आबाद हुए जहां उन्होंने अपने अक़ाइद की ताअलीम की। रफ़्ता-रफ़्ता मुद्दत के बाद उम्मान के लोगों का ये मज़्हब हो गया कि इमामत कोई मौरूसी चीज़ नहीं है बल्कि पसंद पर मौक़ूफ़ है और बाद तक़र्रुर के भी अगर इमाम से कोई बदचलनी सरज़द हो तो ख़ारिज हो सकता है। अब्दुल्लाह इब्ने इबाद 744 हिज्री में बड़ा

ज़बरदस्त वाइज़ गुज़रा है। इसी से फिर्क़ा-ए-इबादिया की इब्तिदा है। नतीजा इस ताअलीम का ये हुआ कि इमाम उम्मान की हुकूमत और क़ुव्वत मुस्तक़िल हो गई और ऐसा मालूम होता है कि इबादिया फ़िर्क़ा वाले बग़दाद के सुन्नी ख़लीफ़ों से हमेशा अलेहदा (अलग) और ख़ुद-मुख़्तार रहे। इसी सबब से सुल्तान तुर्क की मुताबअत से (अपने) आपको आज़ाद समझते हैं। शीयों से अली की और उनकी औलाद की ख़िलाफ़त के बाब में मुख़्तलिफ़-उल-राए हैं। जो शख़्स इन मुआमलात को बग़ौर देखना चाहता है वो डाक्टर बैड गिर साहब की किताब सादात उम्मान में कुल मज़्मून की तफ़्सील पाएगा। उसी ज़माना से इन सब फ़िर्क़ों को ख़ारिजी कहते हैं जो इमाम की ज़रूरत के मोतरिफ़ हैं। अगरचे इस मसअले के कुल जुज़ईयात में मुख़्तलिफ़ हैं। ख़ारिजियों की इस बेदीनी के नक़ीज़ में शीयों का वो मसअला है जिसे वो ऐन शरह का मसअला कहते हैं। शीयों का ये अक़ीदा है कि इमामत सिर्फ़ अली के ख़ानदान में क़ायम रहनी चाहीए और इमाम की इताअत दीन में लाज़िम है। अली के और उनके बेटों के दर्द अंगेज़ वाक़िये ने उन्हें अजीब समरा दिया। जब शीया अपने इमामों की मौत की तक्लीफ़ें याद कर के रंजीदा होते थे तो उन्हें इस मसअले ने जो बहुत जल्द वज़अ हो गया था, तस्कीन बख़्शी यानी इमामत अली के ख़ानदान में रहनी चाहीए। इसी तरह एक हदीस का मज़्मून है कि नबी ने फ़रमाया "**जिसका मैं मालिक हूँ उस का अली भी है।**" इब्ने अब्बास एक सहाबी से रिवायत है कि मैंने नबी को कहते सुना है जो मेरे नाम से मुन्किर है, वो ख़ुदा से मुन्किर है और जो अली के नाम से मुन्किर है, वो मेरे नाम से मुन्किर है।" फ़ारसी में एक गीत बहुत मशहूर है। इस से पाया जाता है कि ये अक़ीदा किस इफ़रात को पहुंच गया है :-

ऐ ज़ात पनहां तेरे औसाफ़ को कौन बयान कर सकता है?
तेरी ज़ात को कौन पहचान सकता है?
तेरे ही सामने हर आदमी को सर बसजूद होना चाहीए
क्योंकि ये मेरे ही सबब से है कि इन्सान ने अहकाम
इलाही को पहचाना

उमूमन मुसलमानों का ये ख़्याल है कि आदम की पैदाइश से पहले ख़ुदा ने अपने नूर से एक शुआ लेकर मुहम्मद अरबी का बदन बनाया और

फिर इस से ये ख़िताब किया कि "तू मक़्बूल और बर्गुज़ीदा है। मैं तेरे घराने के लोगों को तरीक़ नजात का हादी मुक़र्रर करूँगा।" मुहम्मद अरबी ने कहा कि ख़ुदा ने सबसे अव्वल तेरा नूर और मेरी रूह पैदा की। (अल-अव्वलुल-अखुल्क़-उल्लाह नूरी) (शरह अक़ाइद जामी, सफ़ा 123)

नबी का जिस्म किसी मख़्फ़ी (छिपी) तौर पर मुद्दत तक पोशीदा रहा। वक़्त मुनासिब (वक़्त) पर ख़ुदा ने दुनिया को पैदा किया लेकिन वो नूर जिससे ख़ुदा ने मुहम्मद अरबी को बनाया था उस वक़्त ज़ाहिर हुआ जब आप दुनिया में आए। मुसलमानों में नूर मुहम्मदी मशहूर बात है। कहते हैं कि ये यह नूर चार क़िस्म का था। क़िस्म अव्वल से ख़ुदा ने अपना तख़्त बनाया। दूसरी से लौह व क़लम बनाए। एक रिवायत जो अली से मन्क़ूल है उस का ये मज़्मून है कि मुहम्मद अरबी ने फ़रमाया कि ख़ुदा ने मुझे अपने नूर से पैदा किया है। बाक़ी और मख़्लूक़ को नूर मुहम्मदी से बनाया है। (क़िसस-उल-अम्बिया) ये नूर अली पर मुंतक़िल हुआ। उनसे फिर और इमामों को जो बरहक़ हैं और फ़क़त वही मुस्तहिक़ ख़िलाफ़त-ए-नबी हैं पहुंचा। उनसे रुगिरदानी गुनाह है। उनकी मुताबअत ऐन पंदारी (तकब्बुर, ग़रूर) है। इमामत के मसअले पर बड़ी बहसें और निहायत तफ़र्रुक़ा पड़ गया है। चुनान्चे शीया के बेशुमार फ़िर्क़ों से ज़ाहिर होगा। शीयों के अक़ाइद इमामत की निस्बत उनकी इलाहयात की दर्सी किताब हयात-उल-नफ़ीस से यह साबित होते हैं। इमाम नबी का ख़लीफ़ा और आपके कुल औसाफ़ से मुत्तसिफ़ होता है अपने ज़माने के बड़े अक़लियों से ज़्यादा अक़्ल और आलिम और बड़े परहेज़गारों से पाक-बाज़ औलाद-ए-आदम में उम्दा तर और सब गुनाहों से पाक होता है। इस सबब से उसे मासूम[18] कहते हैं। ख़ुदा तआला दानाई से

18 शीयों का दावा निस्बत मासूमियत इमामों के रोमन कैथोलिक से ज़्यादा माक़ूल है और वो यह है अगर किसी शख़्स या शख़्सों की निस्बत ये अक़ीदा रखना चाहीए कि वो ख़ता व ग़लती से पाक है क्योंकि एक हक़ीक़त की हिफ़ाज़त के वास्ते बेशक ऐसा अक़ीदा ज़रूरी है और सब बातों में भी जो इस मतलब के हुसूल के वास्ते ज़रूरी हैं ऐसा ही अक़ीदा रखना चाहीए। पस चूँकि हिफ़ाज़त मआरिफ़ व हक़ायक़ लाही की महज़ अक़्ल व ज़हन से नहीं हो सकती। इस वास्ते ख़ता व ग़लती से महफ़ूज़ होना एक अम्र लाज़िमी है यानी ये ज़रूरी है कि ख़ता को दख़ल ना हो और वो शख़्स या अश्ख़ास जिनसे ख़ता व ग़लती को दख़ल ना हो ज़रूर है कि मासूम हो। पस ज़रूर है कि इमाम मासूम की निगाह बातिन से गुनाह की क़ुदरत बिल्कुल मस्दूद हो।

दुनिया पर हुकूमत करता है। इस वास्ते अम्बिया का भेजना ज़रूरी हुआ और इमामत का तक़र्रुर भी इसी क़द्र ज़रूरी था। इस वास्ते इमाम का मर्तबा नबी के बराबर होता है। अली ने कहा जो नबी गुज़रे हैं उन सब का जलाल मुझमें है। इमाम का हुक्म ख़ुदा का हुक्म है। हयात-उल-नफ़ीस से नक़्ल करता हूँ :-

"इमाम का कलाम ख़ुदा व नबी का कलाम है। उस के हुक्म की बजा आवरी लाज़िम है।" इमाम की ज़ात नबी की ज़ात की मिस्ल है क्योंकि अली ने कहा कि "मैं मुहम्मद हूँ और मुहम्मद मेरे लिए।" ग़ालिबन उस नूर मुहम्मदी की तरफ़ इशारा है जो हर इमाम में हुआ करता है। इमामों में के बदन ऐसे पाक व लतीफ़ होते कि उनका साया नहीं होता है। तमाम चीज़ों की मुबतदाद मुंतहा (आग़ाज़ो अंजाम) यही हैं। इमामों को पहचानना ऐन मार्फ़त इलाही है। ख़ुदा-ए-पाक इमामों को अपना कलाम और अपने हाथ और अपनी निशानीयां और कंज़ (मख़ज़न, ख़ज़ाना) मख़्फ़ी (छिपी) बताता है और उनकी अवामिर (अहकामे इलाही, शरई हुक्म) और नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) को बल्कि उनके अफ़आल को ऐन अपने अफ़आल फ़रमाता है। चूँकि इमाम ख़ुदा और इन्सान के दर्मियान वसीला होता है इस सबब से उस का असर अम्बिया से भी ज़्यादा है क्योंकि ख़ुदा का फ़ज़्ल बग़ैर उनकी वसातत के किसी को नहीं पहुंचता है। ग़रज़ कि इन फ़ुज़ूल दाअवों का माहसिल ये है कि इमामों के वास्ते आस्मान व ज़मीन के दर्मियान नूर का एक सतून खड़ा है जिससे मोमिनों के अफ़आल उन्हें मालूम हो जाते हैं। इमाम हमारा पेशवा और इस दुनिया में ख़ुदा का नायब है। सिर्फ क़ुरआनी हिदायत मुकतफ़ी नहीं है। एक ऐसा हादी जो ख़ता व सहव से महफ़ूज़ हो ज़रूरी है, लेकिन ऐसी हिक्मत व दानाई जो इमाम को लाज़िम है सिर्फ नबी की ऊला में हो सकती है। पस कुछ ताज्जुब नहीं है जो बाअज़ सूरतों में अली की और उनकी औलाद की ताज़ीम ख़ुदा की मानिंद की जाती है। शीयों के उसूल मज़हबी पांच हैं :-

अव्वल : ख़ुदा की वहदानीयत का यक़ीन जानना।
दोम : ये तस्लीम करना कि ख़ुदा आदिल है।

<u>सोम :</u> ईमान लाना इस पर कि सब अम्बिया ख़ुदा की तरफ़ से भेजे गए थे और मुहम्मद अरबी इन सब में ख़ास हैं।

<u>चहारुम :</u> ये समझना कि मुहम्मद अरबी के बाद अली ख़लीफ़ा हैं।

<u>पंजुम :</u> अली की औलाद में अज़हसन ता महदी दवाज़ दह (12) इमाम जो हैं उन्हें अली के ख़ुलफ़ाए बरहक़ जानना और कुल औसाफ़ और मुरातिब में सब मुसलमानों से बरतर शुमार करना।

यही इमामत का मसअला है। शीयों के ख़ास दो फ़िरक़े हैं, इस्माइलिया और इमामिया। आख़िर-उज़-ज़िक्र दवाज़ दह (12) इमाम के मुतअक़्क़िद (बंधा हुआ, मजबूत किया हुआ) हैं। अली को पहला इमाम बताते हैं। आख़िरी इमाम अबूल क़ासिया को समझते हैं कि हनूज़ ज़िंदा हैं और किसी पोशीदा जगह में रहते हैं। उनका नाम महदी है। (महदी के मअनी हैं हिदायत किया गया) मसीह की आमद सानी पर उनका ज़हूर होगा। कहते हैं कि 298 हिज्री में बग़दाद में पैदा हुए थे। इस के बाद ग़ायब हो गए। जब पैदा हुए थे तो उनके दाहने बाज़ू पर ये आयत लोगों ने लिखी पाई :-

قُلْ جَآءَ الْحَقُّ وَ زَهَقَ الْبَاطِلُ ؕ اِنَّ الْبَاطِلَ كَانَ زَهُوْقًا

"तू कह दे कि अब हक़ ज़ाहिर हुआ और बातिल ग़ायब हो गया। तहक़ीक़ बातिल ऐसी चीज़ थी कि नापैद हो जाये" (सूरह बनी-इस्राईल 17:81) जब वो ज़ाहिर हुए थे तो उंगलीयों से आस्मान की तरफ़ इशारा कर के छनेक ली और ये कहा कि **अलहम्दो लिल्लाहे रब्बिल-आलमीन**। **"सब तारीफ़ ख़ुदा को है जो सारे जहान का परवरदिगार है।"** एक रोज़ कोई शख़्स इमाम हसन अस्करी (ग्यारहवे इमाम) के पास आ के पूछने लगा कि ऐ नबी के बेटे तेरे बाद कौन ख़लीफ़ा और इमाम होगा। ये सुनकर इमाम एक लड़के को ले आए कि ऐ शख़्स अगर तुझ पर ख़ुदा की रहमत ना होती तो वो ये लड़का तुझे हरगिज़ नहीं दिखाता। इस का नाम वही है जो नबी का है। इस वास्ते वो उनका हमनाम यानी अबू क़ासिम है। जो लोग ये एतिक़ाद रखते हैं कि महदी हनूज़ ज़िंदा हैं। वो कहते हैं कि इंतिहाए अरब के शहरों में हुक्मरानी करते हैं और कहते हैं कि उनकी औलाद भी है।

"والله اعلم بالصواب نفس" हक़ीक़त को ख़ुदा ही ख़ूब जानता है। (रोज़तुल-अइम्मा, सय्यद इज़्ज़त अली)

दूसरा बड़ा गिरोह इस्माईलियों का सिवाए इमामत के और सब जज़ईआत में इमामिया से मुत्तफ़िक़ है। इनके नज़्दीक छटे इमाम यानी सादिक़ के बाद पोशीदा इमामों की ख़िलाफ़त शुरू हुई। इनका अक़ीदा ये है कि कोई ज़माना इमाम से ख़ाली नहीं है, मगर वो ज़ाहिर नहीं होते पोशीदा रहते हैं। ये अक़ीदा बहुत सी पोशीदा जमाअतों का मूजिब है और तक़िया की राह इसी से निकलती है जिससे इस फ़िर्क़े के बहुतेरे लोग वजूद बारी से भी मुन्किर हो गए हैं। इस अम्र का ज़िक्र आसबरुन साहब की किताब इस्लाम और उहूद अरब सफ़ा 168-184 में ख़ूब है, उसे देखो। ग़ैर मह्दी एक छोटा सा फ़िर्क़ा है जिनका अक़ीदा ये है कि मह्दी का ज़हूर फिर नहीं होगा। वो कहते हैं कि सय्यद मुहम्मद जयपूरी अस्ल मह्दी यानी बारहवीं इमाम थे जो फिर कभी नहीं ज़ाहिर होंगे और उनकी ताज़ीम नबी के बराबर करते हैं और ऐसा समझते हैं कि और सब मुसलमान मुन्किर और काफ़िर हैं। माह रमज़ान में शब-ए-क़द्र को वो लोग जमा हो कर दो रकअत नमाज़ पढ़ते हैं और जब नमाज़ ख़त्म हो जाती है तो कहते हैं कि ख़ुदा क़ादिर है और मुहम्मद नबी हैं और क़ुरआन व मह्दी दुरुस्त व बरहक़ है। मह्दी आमदरोफ़त, मह्दी आकर चले गए। जो कोई इस पर ईमान नहीं लाता है वो काफ़िर है। इस फ़िर्क़े के लोग जोश मज़हबी बहुत रखते हैं। ग़ैर मह्दी की एक और छोटी सी जमाअत है जिसे दायरे कहते हैं। ये लोग सूबा मैसूर में बस्ते हैं और उनकी राएं मह्दी के बाब में अजीब हैं। चार-सौ बरस का अरसा गुज़रा कि एक शख़्स सय्यद अहमद नामी ने कुछ लोग निज़ाम हैदराबाद के मुल्क से जमा कर लिए। उसने (अपने) आपको मह्दी और सब नबियों से बड़ा ज़ाहिर किया। सुन्नी मुसलमानों ने उसे और उस के मुरीदों को यहां तक सताया कि मैसूर के ज़िला में जो निज़ाम की अमलदारी से मुल्हिक़ है एक गांव को भाग गए। अब उनकी औलाद क़रीब पंद्रह सौ के वहां रहती है। कहते हैं कि वो लोग सिवाए अपने गिरोह के और मुसलमानों से शादी नहीं करते हैं। जुमा की मामूली इबादत इमाम के इस क़ौल पर ख़त्म होती है कि मह्दी आमद-

ओ-रफ़्त। इस के जवाब में और लोग कहते हैं जो कोई इस पर ईमान ना लाए काफिर है।

चंद हदीसें ऐसी भी हैं जिनमें आख़िरी ज़माने की तरफ़ इशारा है। "जब ज़माने का एक दिन रह जाएगा तो ख़ुदा मेरी औलाद से ऐसा एक आदमी उठाएगा जो दुनिया को अदालत से ऐसे ही भर देगा जैसे इस से पहले ज़ुल्म से भरी थी।" दूसरा ये कि दुनिया का ख़ातिमा ना होगा जब तक ज़मीन का मालिक ज़ाहिर ना हो, जो मेरे ख़ानदान से एक शख़्स है और उस का नाम वही है जो मेरा है। जब इस्लाम को दसवीं सदी शुरू हुई तो तमाम फ़ारस और हिन्दुस्तान में फ़िर्क़ा नय्यरीन **(Millinerian)** की सी तहरीक हुई (ईसाईयों में इस नाम का एक फ़िर्क़ा है जिनके अक़ीदे में हज़रत ईसा की आमद सानी पर सब बहरे नापैद हो जाऐंगे और नेक लोग आसाइश से एक हज़ार बरस तक हुकूमत करेंगे।) लोगों ने ये कहा कि आख़िर ज़माना आ पहुंचा और बहुतेरे लोगों ने महदियत का दावा किया। दो शख्सों का इस से पहले ज़िक्र कर चुका हूँ। बाक़ी औरों में एक शख़्स आलाई आगरा का रहने वाला है। (956 हिज्री) शहनशाह अकबर के नामी वज़ीर अबू अल-फ़ज़ल का बाप शेख़ मुबारक आलाई का शागिर्द था जिससे ख़यालात महदवीह क़ायम रहे। तमाम उलमा इस से सख़्त नाराज़ थे मगर आज़ाद मनिश (साफ़ गो, आज़ाद तबा) और बेदीन शहनशाह और उस के वज़ीर से मज्बूर थे। हिन्दुस्तान में अकबर से बेहतर कोई हाकिम नहीं हुआ और बाएतबार इस्लामी दीनदारी के इस से बढ़कर कोई बेदीन भी नहीं हुआ। शहनशाह अपने ज़माने के मुबाहिसों से ख़ुश होता था। दरबार में सूफ़ियों और महदवीयों की रिआयत होती थी। दीनदार उलमा के साथ तहक़ीर का सुलूक किया जाता था। अकबर को कामिल यक़ीन था कि आख़िरी ज़माना आ पहुंचा। चुनान्चे उसने नया सन जारी किया और **एक जदीद मज़्हब जिसे दीने इलाही कहते थे निकाला।** उस के अह्द में सिवाए मुतअस्सिब मुसलमानों के और किसी को मज़हबी मुज़ाहमत ना थी। अबू अलफ़ज़ल और मिस्ल उस के और लोग जो अकबर की मज़हबी राइयों (राय की जमा) के ताबे थे। उनका ये ख़्याल था कि सच्चाई सब मज़्हबों में है :-

ऐ ख़ुदा हर दहर में लोगों को तेरी तलाश करते देखता हूँ

और हर ज़बान में लोगों को बोलते सुनता हूँ कि तेरी हम्द करते हैं
बुत-परस्ती और इस्लाम सब तुझी को बताते हैं
हर मज़्हब लिखता है कि तू वाहिद है जिसका कोई हम-सर नहीं
अगर मस्जिद है तो वहां भी लोग तेरी पाक इबादत में मसरूफ़ हैं
अगर कलीसिया हो तो वहां भी तेरी मुहब्बत से घंटा बजाते हैं
कभी मसीही ख़ानक़ाहों और कभी मस्जिद में जाता हूँ
लेकिन तू ही है जिसकी माबद ये माबद तलाश करता हूँ

इस अह्द में एक शख़्स मीर शरीफ़ हज़ारी के मन्सब पर बंगाला में मामूर हुआ था। अकबर की निगाह में इस की ख़ास लियाक़त ये थी कि तनासुख़ अर्वाह और ज़माना आख़िरी के क़ुर्ब की ताअलीम देता था। ये शख़्स महमूद संजवानी बानी फ़िर्क़ा निकतवीह का शागिर्द था। चूँकि ये भी शीयों का एक जुदा फ़िर्क़ा है, इस वास्ते मुख़्तसर अहवाल इस जगह लिखा जाता है। महमूद तैमूर के अह्द में था। उसने मह्दी होने का दावा किया था और अपने आप को शख़्स वाहिद भी कहा करता था और ये आयत नक़्ल किया करता था। عَسٰٓى اَنْ يَّبْعَثَكَ رَبُّكَ مَقَامًا مَّحْمُوْدًا । "क़रीब है कि तुझे तेरा परवरदिगार मुक़ाम महमूद भेजे।" (सूरह बनी-इस्राईल 17 आयत 79) इस से वो ये इस्तिदलाल करता था कि आदमी का बदन इब्तदाए पैदाइश से पाकीज़गी की तरक़्क़ी पाता रहता है और जब वो जिस्म ख़ास मुक़ाम पर पहुँचेगा तो एक शख़्स महमूद पैदा होगा और उस वक़्त मुहम्मद अरबी का ज़माना ख़त्म हो जाएगा। उसने ख़ुद महमूद होने का दावा किया। मसअला तनासुख़ की ताअलीम देता था और ये कहता था कि हर शेकी इब्तिदा नुक़्ता-ए-ख़ाक है। इस सबब से इस फिर्क़े वालों को नक़तूवीयह कहते हैं। उनको महमूदियह और वहीददियह भी कहते हैं।

शाह अब्बास फ़ारस ने उन्हें अपने मुल्क से निकाल दिया था। अकबर ने इन मफ़रूरों को मेहरबानी से जगह दी और बाज़ों को आला मन्सब अता किए। पस महदियत का दावा जिसकी इब्तिदा शीयों के मसअले इमामत से है, एक अजीब वाक़िया है और अगर ऐसे लोग पैदा हों जो महदियत का झूटा दावा करें तो कुछ ताज्जुब नहीं। लेकिन ये अम्र कि बहुत से लोग उनके मुरीद हो जाते हैं ऐसा अम्र है जिससे साबित होता है कि आदमीयों के

दिलमुज़्तर (बे-ताब, तक्लीफ़ में मुब्तला) रहते हैं जब तक कि उनको कामिल हादी ना मिले और ये कि उन्हें एक पेशवा और मुर्शिद की किस क़द्र ज़रूरत है। शीयों की कुल ताअलीम जो इस बाब में है इस से मालूम होता है कि इन्सान की जिबिलत में ये बात है कि वो कोई शाफ़े या कोई ऐसा कलिमा ख़ुदा बाप का चाहता है जो ख़ुदा को उस के फ़रज़न्दों पर ज़ाहिर करे। इब्तिदा नज़र में ऐसा मालूम होता है कि मसअला इमामत शायद दानिशमंद शीयों को मसीहीयों के इस मसअले से मुत्तफ़िक़ कर दे कि यसूअ मसीह मुजस्सम हुआ है और ख़ुदा व इन्सान के दर्मियान एक वास्ता है और इस का काम ये है कि ख़ुदा की मर्ज़ी को हम पर बख़ूबी ज़ाहिर करे और हमारा मुर्शिद व हादी हो। (यानी मसअला इमामत में और यसूअ के कामों में ऐसी मुनासबत है जिससे उम्मीद होती है कि बहुत ईसाई हो जाये।) लेकिन अफ़्सोस कि दरअस्ल ऐसा नहीं है। शीयों के मज़्हब में बाअज़ बातें ऐसी भी हैं जिन्हों ने अख़्लाक़ को जड़ से बिगाड़ दिया है। ग़ैरों से परहेज़ और अलैह्दगी इस मज़्हब का जुज़्व-ए-आज़म है। रोज़मर्रा के कारोबार में तक़िया (शीया मुसलमानों के अक़ीदे में ज़ुल्म के डर से अक़ाइद या हक़ बात को छुपाना। परहेज़गारी) इनके यहां जायज़ है। शीया पर किसी बात का एतिमाद नहीं हो सकता है। दर हालेका ग़ैरों के ख़ौफ़ से अपने अक़ाइद को पोशीदा रखना मज़्हब से दुरुस्त है।

जब वो तक़िया करता है तो समझता है कि ख़ुदा की तरफ़ से अपनी रस्मों और दीन की बातों के इज़्हार का हुक्म नहीं है और जैसे अपने दीन की बातों के तर्क को गुनाह जानता है वैसे ही तक़िया के इन्कार को भी बुरा समझता है। जब मह्दी आएँगे तो अलबत्ता ऐसा अच्छा ज़माना होगा कि सब बंदिशें जाती रहेंगी और कामिल आज़ादी हासिल होगी। बहुतेरी सूरतों में इनके अख़्लाक़ ऐसे मुर्दा और तहज़ीब ऐसी ख़राब है कि जो लोग ऐसे मौक़े पर नहीं हैं कि रोज़मर्रा उनके हालात को देख सकें उन्हें बावर ना होगा। तक़िया पर अमल करने और मुताअ (यानी आरज़ी तयशुदा निकाह) के जायज़ रखने से शीयों की जमाअत पर बड़ा दाग़ लग गया है और उनकी तहज़ीब बिल्कुल बिगड़ गई है। इस ज़माने के एक मुसन्निफ़ ने शीयों के तरीक़ की निस्बत सच्च लिखा है। अगरचे हर शख़्स पर वो औसाफ़ सादिक़ नहीं आते हैं।

मोतज़िला भी एक फ़िर्क़ा है। एक ज़माने में उनका बहुत ज़ोर हो गया था लेकिन अब ये कोई जुदा फ़िर्क़ा नहीं। बाब माबाअ्द में इनका कुछ हाल लिखा जाएगा। इमामत के मसअले में जिसे शीया के कुल फ़िर्क़े मानते हैं, शीया और सुन्नी के दर्मियान इतना बड़ा फ़र्क़ है कि इस्लाम के इन दो बड़े फ़रीक़ से मुल्की इत्तिफ़ाक़ का भी कुछ अंदेशा नहीं है। मैं भी क़ब्ल अर्ज़ीं बयान कर चुका हूँ कि शीयों को सुन्नत से किस क़द्र इन्कार है। अगरचे हदीस से इन्कार नहीं है। मुहर्रम की सालाना रसूम से अली की और उनके बेटों की मुसीबतें और पुरानी अदावत की याद हनूज़ बाक़ी है। सुन्नीयों पर उनके बुज़ुर्गों की बेईमाअनी का इल्ज़ाम है और ख़लीफ़ा अबू बक्र, उमर और उस्मान ग़ासिब हक़ ख़िलाफ़त तसव्वुर किए जाते हैं। नूर महदी की शुआ उन्हें नहीं मिली थी। जो मुहम्मद के नूर से बना हो वही इमाम और मोमिनों का मुर्शिद होने का दावा कर सकता है।

आग़ाज़ इस्लाम की ख़ौफ़नाक ने तर्तीबीयाँ इस से समझ सकते हैं कि इन लोगों को रुहानी हादी यानी इमाम की सख़्त आरज़ू और एहतियाज थी। ये ग़ैर मुम्किन तसव्वुर किया गया कि मुहम्मद अरबी जो आख़िर-उल-ज़मान और ख़ातिम-उन्नबीयिन थे मोमिनों को बग़ैर ऐसे हादी के जो ख़ुदा की मर्ज़ी ज़ाहिर करे छोड़ देते।

यहां पर अस्ल बयान को छोड़कर ये बताना चाहते हैं कि ये बात सिवाए शीयों के और फ़िर्क़ों में भी है और मसअला शर्क़ी से किसी क़द्र ताल्लुक़ भी रखती है। जो दावे इमाम की निस्बत इन्सान की हैसियत से ज़्यादा किए जाते हैं उनसे क़त-ए-नज़र कर के अगर देखा जाये तो जो ताल्लुक़ शीया को इमाम से है वही ताल्लुक़ सुन्नी को ख़लीफ़ा से है। दीनी और दुनियावी सरदार, नबी का जांनशीन और मुहाफ़िज़ दीन (जैसा कि क़ुरआन में है) सुन्नत और इज्मा मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के लोग) मुज्तहिदीन जानते हैं। शरीअत के अहकाम वही जारी कर सकता है जिसे ख़ुदा ने इस लायक़ किया हो, मसलन जब सल्तनत उस्मान के सुल्तान सलीम अव्वल ने मिस्र को 1516 ई॰ में फ़त्ह किया तो उसने ख़ुलफ़ा-ए-बग़दाद की क़दीम औलाद से दरख़्वास्त कर के ख़लीफ़ा का लक़ब अपने वास्ते मुंतक़िल कर लिया। इस तरह सलातीन तुर्की ख़लीफ़ा इस्लाम हो गए। ये अम्र कि

मुतवक्किल बिल्लाह अख़ीर ख़लीफ़ा ख़ानदान अब्बासिया का ये फ़ेअल यानी इंतिक़ाल लक़ब ख़िलाफ़त का दुरुस्त था या ना दुरुस्त बिलफ़अल मेरे मबहस से ख़ारिज है। मैं सिर्फ ये बताना चाहता हूँ कि इन लोगों को किस क़द्र एहतियाज ऐसे हाकिम की है जो ख़ुदा की तरफ़ से मुक़र्रर हो। मुहम्मदियों की शरअ के बमूजब सलातीन तुर्की ख़लीफ़ा नहीं हैं क्योंकि अहादीस से साफ़ मालूम होता है कि ख़लीफ़ा या इमाम क़ुरैश की क़ौम में होना चाहीए जिसमें खोदने थे। इब्ने उम्र से रिवायत है कि नबी ने फ़रमाया कि **ख़लीफ़ा क़ुरैश के ख़ानदान से उस वक़्त तक होगा जब तक कि दो शख़्स भी एक हुकूमत और दूसरा ख़िदमत करने को इस में बाक़ी हैं।** (मिशकात-उल-मसाबेह) ये ज़रूरी शर्त है कि ख़लीफ़ा क़ौम क़ुरैश से होना चाहीए। (हुज्जत उल्लाह उलबालग़ा) बहुतेरे और सबूत इसी क़िस्म के हैं और उन सब का माहसल ये है कि बजुज़ तुर्कों के और सुन्नीयों को सुल्तान तुर्क का ख़लीफ़ा जानना लाज़िम नहीं है। रहे शीया सो उनके नज़्दीक सुल्तान बेदीन काफ़िर से कुछ ही बेहतर है और जो शख़्स ख़लीफ़ा की जगह पर होगा यक़ीनन शीया उसे अपना इमाम हरगिज़ नहीं गर्दानेंगे। जो मुल्क तुर्कों की अमलदारी में नहीं हैं वहां जुमा के दिन मस्जिदों में इस अह्द के हाकिम या अमीर के नाम पर जो कुछ इस मलिक के हाकिम का लक़ब हो, उसी लक़ब से ख़ुत्बा पढ़ा जाता है। हिन्दुस्तान में आजकल सुल्तान के नाम पर ख़ुत्बा पढ़ने का ज़्यादा रिवाज हो गया है। अगर सही तौर से कहा जाये तो ये बात मुहम्मदी शरीअत के मुताबिक़ नहीं है। शरअ में साफ़ लिखा है कि ख़ुत्बा सिर्फ़ हाकिम की इजाज़त से हो सकता है और चूँकि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश गर्वनमैंट की हुकूमत है, इस वास्ते मलिका क़ैसर हिंद के नाम से पढ़ना चाहीए था। बजुज़ उन मुल्कों के जहां ख़लीफों का कहना सुनना चलता था और कहीं के मुसलमानों में इस क़ाएदे की पाबंदी नहीं हुई।

सलातीन तुर्क के जवाज़ दावे ख़िलाफ़त पर शुब्हा वारिद करने से मेरी ये ग़रज़ नहीं है कि शरअ इस्लाम में ख़लीफ़ा होना नहीं चाहीए। सो बद-क़िस्मती से इस्लाम में ख़िलाफ़त और सल्तनत दीन व हुकूमत के दर्मियान हमेशा तनाज़ा रहा है। तारीख़ इस्लामी में और कोई फ़साद इस के बराबर नहीं हुआ जो तनाज़आत और मुक़ाबले, एक का दूसरे को रोकना और एक

का दूसरे से सुलूक होना जो कुछ इन दो ज़बरदस्त ख़ुद-मुख़्तार फ़रीक़ के दर्मियान वाक़ेअ हुआ है वो मसीहीयों की आला कार-गुज़ारी और इस्लाह हाल के वास्ते बेहद मुफ़ीद हुई हैं। इस्लाम में ख़लीफ़ा पोप और शहनशाह दोनों होता है। (यानी दीनी और दुनियावी दोनों उमूर में वही मुख़्तार होता है।) इब्ने ख़ल्दून का बयान है कि ख़लीफ़ा के और हाकिम के दर्मियान यही फ़र्क़ है कि अव्वल-उल-ज़िक्र क़ानून इलाही के मुताबिक़ और आख़िर-उल-ज़िक्र इन्सानी क़ानून के मुवाफ़िक़ हुक्मरानी करता है। जब नबी ने अपनी पाक क़ुदरत और ख़ुलफ़ाए जांनशीन को अता की तो आपके कुल इख़्तयारात उन्हें पहुंचे। ख़लीफ़ा का खुफ़ीया या अलानिया मक़्तूल या जिला-वतन होना मुम्किन है। लेकिन जब तक उनकी हुकूमत किसी चीज़ पर मिस्ल वज़ई आज़ादी के है तब तक ग़ैर मुम्किन है। यूरोप के मुदब्बिरों में ये बड़ी ग़लती और सरीह बुराई है कि सुल्तान तुर्क को ख़लीफ़-ए-इस्लाम जानते हैं, क्योंकि अगर ऐसा हो तो तुर्की कोई जदीद अम्र मस्लिहत मुल्की के मुनासिब नहीं निकाल सकते और क़दीम पाबंदी है एक क़दम भी नहीं बढ़ा सकता। मगर ये बह्स इस बात के मज़्मून से है।

आग़ाज़ इस्लाम से एक क़िस्म की तहरीक आज तक चली आती है जिसे मन क़बील (जिन्स) इसरार तसव्वुर करना चाहीए। इस का नाम तसव्वुफ़ है। फ़ारसियों में इस का रिवाज अला-उल-ख़ुसूस बहुत है। शरा के सख़्त अहकाम और तक्लीफ़ देने वाली रसूम का बार दूर करने के वास्ते ये वज़ा हुआ है। एक हज़ार साल से इस का रिवाज है। अगर इस में तरक़्क़ी का कोई जुज़्व है और उसे इस्लाम से ऐसी निस्बत है जैसी नमक को पानी से तो देखना चाहीए कि क्या समरा (फल) इस से मुरत्तिब हुआ। अव्वल ये दर्याफ़्त करना चाहीए कि इस का माख़ज़ क्या है। सूफ़ी ग़ालिबन अरबी लफ़्ज़ सूफ से निकला है। सूफ के मअनी अन्न और पश्मीना के हैं। मशरिक़ी दरवेश उमूमन ऊनी लिबास पहना करते थे। बाअज़ लोगों के नज़्दीक ये कलिमा फ़ारसी लफ़्ज़ सूफ से जिसके मअनी साफ़ और नायाब के हैं या यूनानी लफ़्ज़ सूफ़िया जिसके मअनी दानाई के हैं से निकला है। तसव्वुफ़ मुजर्रिद इस्म है सूफ़ी इस्म सिफ़त से और मुताबिक़ राय सर विलियम जौनीज़ व दीगर उलमाए द बानहए शर्क़ी के कमाल ज़ौक़-ओ-शौक़ इबादत के इज़्हार का

मजाज़ी तरीक़ है जो बहुत कुछ वेदांत मज़्हब से मुस्तआर लिया है। ख़ुलासा इस का ये है कि इन्सान की रूहें ख़ुदा की रूह से मुख़्तलिफ़ फ़ील मरातिब हैं और मुख़्तलिफ़ फ़ील अक़्साम नहीं। सब रूहें उसी से निकली हैं और आख़िरकार उसी की तरफ़ फिर लौट जाएँगी। जो कुछ उसने बनाया है सब में उस की रूह है और वही इस में है। उसी की ज़ात वाहिद कामिल मुहब्बत और सरासर जमाल है। पस उसी का इश्क़ अस्ल चीज़ है और सब हीच। सादी कहता है :-

ب बहकश कि नाहक़ जमालम नमूद
वगर आंच देदम ख़यालम नमूद

तर्जुमा : "उसी हक़ की क़सम है जब से उसने मुझको जमाल दिखाया फिर जो कुछ मैंने देखा हीच मालूम हुआ।"

दुनिया की ज़िंदगी माशूक़ की जुदाई का ज़माना है। क़ुदरत की खूबियां गाना और बजाना और तरह तरह की सनाइअ ख़ुदा की याद दिलाती हैं और इश्क़ आशिक़ को और तरफ़ से फेर कर उस की तरफ़ रुजू करती हैं। इन्सान को उन चीज़ों से शौक़ रखना और ख़ल्वत में अपने ख़यालात को ख़ुदा की जानिब रुजू करना और उसी तरह उस की ज़ात से क़ुर्बत (नज़दिकी) पैदा कर के आख़िरकार आला मुक़ाम राहत में पहुंचता यानी फ़नानी अल्लाह हो जाना चाहीए। अस्ल मक़्सद और अंजाम इन्सान की ज़िंदगी का ये है कि अपनी हस्ती को बहर-ए-मारेफ़त इलाही में ग़र्क़ कर दे, जैसे पानी का बगूला दरिया के किनारे पर उठता है और दम-भर में ग़ायब हो जाता है। तमाम सूफ़ी जिनका ये अक़ीदा है कि मज़्हब इस्लाम ख़ुदा की तरफ़ से मुक़र्रर हुआ है। ये समझते हैं कि दुनिया के पैदा करने से क़ब्ल जब सब रूहें जो रूह इलाही के अजज़ा हैं, आलम-ए-अर्वाह में जमा थीं तो ख़ुदा ने उनसे एक अहदबांधा था। हर रूह से जुदा-जुदा ये ख़िताब किया। "**الستُ بِربكُم**" "**क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ?**" यानी मैं तुम्हारे साथ ये अह्द बाँधता हूँ। इस पर इन सबने मुत्तफ़िक़ हो कर ये जवाब दिया कि हाँ। अलबत्ता एक रिवायत ये भी है कि आदम के वक़्त में तुख़्म मार्फ़त बोया गया था। इस से एक दरख़्त नूह के ज़माने में पैदा हुआ और अह्द इब्राहिम

में इस में फूल आया और मूसा के गुज़रने से पहले बारवर (फ़ल देने वाला) हुआ। इस उम्दा दरख़्त के अंगूर ईसा के अह्द में पुख़्ता हुए। लेकिन जब तक कि मुहम्मद अरबी का ज़माना ना आया किसी ने इन अंगूरों से शराब नहीं बनाई। पस जो लोग इस शराब से मस्त हैं, मार्फ़त इलाही के आला मुक़ाम पर पहुंच कर अपनी हस्ती को भूल जाते हैं और ये कहते हैं कि मुझी को सब तारीफ़ है। क्या कोई मुझसे भी बड़ा है। मैं ही हक़ हूँ। सूफ़ी अपने मर्ग़ूब अक़ाइद की ताईद में कि मुराद इस से हुसूल मार्फ़त इलाही है, इस आयत को पेश करते हैं। और जब ख़ुदा ने मलाइका (फरिश्तों) से कहा कि मैं ज़मीन पर एक नायब बनाने वाला हूँ। तो उन्होंने कहा क्या तू ऐसे शख़्स को इस में रखेगा जो फ़साद करे और ख़ून बहाए हालाँकि हम तेरी तारीफ़ और पाकी बयान करते हैं। (सूरह 2 बक़रह) कहते हैं कि इस आयत से ये साबित होता है कि अगरचे बहुत से लोग ज़मीन पर फ़साद करेंगे, बाज़ों को नूर इलाही से ख़ुदा की मार्फ़त भी मिलेगी। एक हदीस का मज़्मून है कि दाऊद ने पूछा ऐ रब तू ने आदमीयों को किस वास्ते बनाया। उसने फ़रमाया कि मैं कंज़ (मख़ज़न, ख़ज़ाना) मख़्फ़ी (छिपा) था और मैं अपने आपको ज़ाहिर किया चाहता था। सूफ़ी का अस्ल मक़्सूद इस ख़ज़ाने को पाना और नूर इलाही से ख़ुदा की अस्ल मार्फ़त का हासिल करना है। आग़ाज़ इस्लाम में सूफ़ियों ने शरीअत के सख़्त अहकाम की पाबंदी से आज़ाद रहने को ये तरीक़ा इख़्तियार किया था और हर-चंद कि हमा औसत का तुख़्म अव्वल से उनके तरीक़ में डाल दिया था लेकिन वो यही इक़रार करते रहे कि हम सच्चे हैं।

अल-जुनैद कहते हैं कि हमारा तरीक़ ईमान के उसूल और क़ुरआन-ओ-हदीस से ख़ूब वाबस्ता है। इस तरीक़ के बहुतेरे लोगों में देनी शौक़ और इश्क़ इलाही था जिसने नाजायज़ क़ुदरत के बाज़ू को अक्सर रोका है और उनके मक़ूले जो ख़ूबी से भरे हैं ये दलालत करते हैं कि वो लोग रूहानियत के गुरेज़ (ग़रीज़ी: तिब्बी) हक़ीक़ी जानने की क़ुदरत और बातिन से सरोकार रखते थे। उनकी बाअज़ बातें हर ज़माने के लायक़ हैं।

एक सूफ़ी कहता है कि जैसे मुर्दा को खाना पीना कुछ नफ़ा नहीं पहुँचाता ऐसे उस दिल पर कोई नसीहत असर नहीं करती जो दुनिया की

मुहब्बत से भरा हो। पाक आदमी को इस से कुछ सरोकार नहीं। उस की ग़रज़ मार्फ़त इलाही और रज़ा जोई से है। जब तक तेरा दिल दुनिया की उल्फ़त से ख़ाली ना हो तब तक तू इस लायक़ नहीं कि आलिमों में तेरा नाम लिया जाये। अपने नेक कामों को इसी तरह छुपाओ जैसे अपने गुनाहों को छुपाना चाहता है।

एक मशहूर सूफ़ी को ख़लीफ़ा हारून अल-रशीद की ख़िदमत में लाए तो उन्होंने पूछा कि तुझे किस क़िस्म इस्तिग़ना (बेपर्वाई, बेफ़िक्री) है। उसने जवाब दिया "तेरा इस्तिग़ना मुझसे ज़्यादा है, क्योंकि मैं तो ये फ़क़त इस जहान से मुस्तग़नी और तू इस जहान से।" इसी सूफ़ी ने ये भी कहा कि इबादत का इज़्हार आदमीयों के ख़ुश करने को रिया में दाख़िल है और बंदगी के अफ़आल लोगों के ख़ुश करने को दाख़िल शिर्क हैं। अख़ीर दूसरी सदी हिज्री में इन मख़फ़ी (छिपे) अक़ाइद ने तसव्वुफ़ की सूरत इख़्तियार की। उस वक़्त में अल-हिजाज ने बग़दाद में ये ताअलीम दी कि मैं हक़ हूँ, बहिश्त में हूँ। सिवाए ख़ुदा के और कुछ नहीं है। मैं वही हूँ जिसे मैं मुहब्बत करता हूँ और जिससे मैं मुहब्बत करता हूँ। मैं ही हूँ, हम दो रूहें एक ही जिस्म में रहती हैं। जब तू उसे देखता है तो मुझे देखता है और जब तू मुझे देखता है। इन बातों से आलिम मुसलमान ज़्यादा मुख़ालिफ़ हुए और हुक्म दिया कि हल्लाज वाजिब-उल-क़त्ल है। तब ख़लीफ़ा के हुक्म से ये दुर्रे (दुर्रह, चमड़े का चाबुक) कोड़े लगाए गए और आख़िरकार सख़्त तक़्लीफों के बाद मक़्तूल (क़त्ल) हुआ। ग़रज़ कि अहले तसव्वुफ़ के पहले शहीदों में से एक ने इस तरह क़ज़ा की। लेकिन बावजूद सख़्त ईज़ाओं के इस तरीक़ को तरक़्क़ी होती रही।

अशआर तसव्वुफ़ के पोशीदा मुतालिब समझने को इस बात को याद रखना ज़रूरी है कि सूफ़ी सालिक (तसव्वुफ़ की इस्तिलाह जो ख़ुदा का क़ुर्ब भी चाहे और दुनिया-दार भी हो।) राह चलने वाला है और मंज़िल-ए-मक़्सूद मार्फ़त इलाही और इस मशरब (मज़हब, मिजाज़) (दीन, तरीक़) के मसाइल को तरीक़त या राह कहते हैं। इस राह में चलने से अव्वल अपनी ज़ात को नेस्त समझना ज़रूरी है। एक सूफ़ी शायर लिखता है :-

एक क़दम अपनी गर्दन पर और दूसरा अपने दोस्त के मुल्क में गाड़ फिर हर शैय में इस का जलवा देख, क्योंकि और जो कुछ देखता है बेअस्ल है।"

शेख़ सादी बोसतान में लिखते हैं :-

अगर तू ख़ुदा का दोस्त है तो अपना नाम मत ले क्योंकि ख़ुदा के नाम के साथ अपना ज़िक्र शिर्क है।

शेख़ अबू अल-फ़ैज़ नामी शायर और शहनशाह अकबर का दोस्त जिससे उसने मलिकुश्शुअरा का मुअज़्ज़िज़ ख़िताब पाया था लिखा है कि :-

जिन्हों ने हस्ती और नीस्ती पर दरवाज़े को मस्दूद नहीं किया है। वो दुनिया और उक़्बा के सुकून से मुतमत्ते (फ़ायदा उठाने वाला) मुस्तफ़ीद नहीं हो सकते।

एक मशहूर शायर यानी ख़्वाजा ख़ुसरो कहता है कि :-

मैं तू है और तू मैं हूँ तू जिस्म है और मैं रूह हूँ। इसलिए अब कोई ना कहे कि मैं तुझसे और तू मुझे से जुदा है।

अस्ल हाल ये है कि नज़्म फ़ारसी में अक्सर तसव्वुफ़ भरा है। नावाक़िफ़ को ऐसे मज़ामीन के पोशीदा मुतालिब तक पहुंचना दुशवार है और जो शख़्स इस राह में नहीं दाख़िल हुआ है उसे ऐसे मज़ामीन के पोशीदा मआनी तक पहुंचना दुशवार है। कनान यानी अपने तरीक़ की बातों को जो अक्सर शरअ ज़ाहिर के ख़िलाफ़ हैं। बेदीनों से छुपाना हमेशा से उन मुल्कों के लोगों की ख़ास सिफ़त है। तरीक़ हमा औसत की बातें सूफ़ियों में ख़ूब सिखाई जाती हैं, मसलन :-

इस से पहले कि ज़मीन पर किसी का नाम रखा जाता।
इस से पहले कि कोई चीज़ जो अब मौजूद है उस का निशान पाया जाता।
इस से पहले कि महबूब की ज़ुल्फ़ों ने जलवा दिखाने को हरकत की और बजुज़ जलवा एज़दी के कोई वजूद मौजूद ना था। मैं मौजूद था।
इस्म और मुसम्मा सब मुझसे ज़ाहिर हुए हैं।

मौजूदा से पहले मैं यानी हम मौजूद थे।

वही शायर उस के बाद ये बयान करता है कि :-

मैंने मसीही, हिंदू और पारसी मज़्हब में राहत की फ़ुज़ूल जुस्तजू की
इस्लाम ने भी उसे तस्कीन नहीं दी।
ना आस्मान में ना ज़मीन में महबूब-ए-नज़र आया
बे सुराग़ और अकेली चोटी और मैदान
ज़मीन के घेरने वाले क़ाफ़ के सब छान मारे लेकिन उनका (सीमुरग़, एक फ़र्ज़ी परिंदा) का निशान ना पाया।

(क़ाफ़ : एक पहाड़ जो एशयाए कोचक के शुमाल में है। पुराने ज़माने में लोगों का ख़्याल था कि ये सारी दुनिया को मुहीत है और इस में परियाँ आबाद हैं।)

सातों आस्मान को छू आया और सातवें बहिश्त को ढूंढ निकाला। लेकिन मालिक का तख़्त कहीं नज़र आया।
मैंने क़लम से और लौह-ए-तक़दीर से पूछा
लेकिन उन्होंने सरगोशी भी नहीं की कि उस के डेरे और उस का मालिक कहाँ है?
मेरे ख़्याल ने बहुत जुस्तजू की लेकिन तलब की आँख ने। उलूहियत का कुछ पता देख नहीं पाया।
फिर मैंने अपने बातिन पर निगाह की और देखा अपने ही सीने के अंदर।
उसे पाया जिसे मैं इधर उधर फ़ुज़ूल ढूंढता था।

ये कलाम सूफ़ियों के निहायत मोअतबर और मशहूर शख़्स मौलाना जलाल उद्दीन रूमी का है जो मौला दी दरवेशों के फ़िर्क़े के बानी गुज़रे हैं। उन्होंने ये हिकायत भी बयान की है :-

"एक आशिक़ ने महबूब का दरवाज़ा खटखटाया। अंदर से आवाज़ आई कौन है? तो उसने जवाब दिया कि मैं हूँ। इस पर फिर आवाज़ आई कि इस घर में मैं और तू दोनों नहीं समा सकते (यानी यहां दुई की नहीं) चुनान्चे वो दरवाज़ा बंद रहा। आशिक़ जंगल को लोट गया। एक मुद्दत तन्हाई, रोज़ा और नमाज़ में काटी। जब एक साल गुज़रा तो फिर आकर दरवाज़ा

खटखटाया। आवाज़ आई कौन है? आशिक़ ने जवाब दिया तू ही है, तो दरवाज़ा खुल गया।"

पस तालिब की अस्ल ग़रज़ इस ज़िंदगी से ये है कि ख़ालिस इश्क़ और ख़ुदा की ज़ात की तरफ़ तवज्जा करने को दुनिया की मकरूहात से बच कर किसी मुर्शिद यानी पीर का मुरीद हो जाए। अगर सूफ़ियों के तरीक़ के मुवाफ़िक़ कोई तालिब मालूमात हासिल करना चाहता है तो दरवेशों के मुतअद्दिद मसालिक में एक को इख़्तियार करता है और मुर्शिद से मुनासिब हिदायात पाने के बाद तरीक़त में दाख़िल होता है। फिर उसे सालिक यानी इस राह पर चलने वाले कहते हैं। सालिक का काम मस्लूक (जारी किया गया, सुलूक किया गया) है यानी सिर्फ एक ख़्याल में मार्फ़त इलाही के महव हो जाये। इस राह में आठ मंज़िलें क़ता करनी पड़ती हैं।

पहली ख़िदमत है। इन सब में ख़ुदा की बंदगी और अहकाम शरअ की पाबंदी लाज़िम है क्योंकि अभी शरीअत की क़ैद से आज़ाद नहीं होता है।

दूसरी इश्क़ है। कहते हैं कि सालिक जब मक़ाम-ए-इश्क़ में पहुंचता है तो तासीर इलाही से इस की रूह इस क़द्र मुतास्सिर हो जाती है कि दिल से ख़ुदा का इश्क़ रखता है।

तीसरी क़नाअत (जितना मिल जाए उस पर सब्र करना) है। जब इश्क़ से दुनिया की तमाम ख़्वाहिशात दूर हो जाती हैं तो इस मुक़ाम पर पहुंचता है और तसव्वुफ़ के जो कुछ दक़ीक़ तर मसाइल ज़ात इलाही की निस्बत हैं उनके सोचने में वक़्त सर्फ़ करता यानी इस मुक़ाम पर पहुंच कर तसव्वुफ़ के मुईन क़ाईदों के मुवाफ़िक़ ख़ुदा का तसव्वुर बाँधता है।

चौथी मार्फ़त है। मुक़ाम साबिक़ का तसव्वुर और ज़हनी फ़िकरों से ख़ुदा की ज़ात व सिफ़ात वग़ैरह की तहक़ीक़ इसी आरिफ़ के मर्तबे पर पहुंचा देती है। आरिफ़ के लफ़्ज़ी मअनी मैं पहुचानने वाला।

पांचवें मुक़ाम वज्द है। दक़ीक़ मज़ामीन पर मुतवातिर तसव्वुर ज़हनी रग़बत का मूजिब हो कर ऐसा वलवला ख़ुशी का पैदा करता है जो ख़ुदा की तरफ़ दिल के मुनव्वर होने की अलामत तसव्वुर की जाती है। इस कैफ़ीयत

को हाल और वज्द कहते हैं। इस मंज़िल की रसाई बड़ी नेअमत है क्योंकि ये दूसरे मुक़ाम का यक़ीनी दाख़िला है।

छठी हक़ीक़त है। इस वक़्त में सालिक पर ख़ुदा की हक़ीक़त खुल जाती है और अब वो उस चीज़ की हक़ीक़त सीखता है जिसकी जुस्तजू में इतनी मुद्दत से मुसर्रिफ़ है। ये सुलूक का आला मुक़ाम है।

सातवीं वस्ल है। ख़ुदा से एक दरवाज़ा था जिसकी कुंजी मैंने नहीं पाई थी। एक हिजाब हाइल था कि मैं देख नहीं सकता था।

थोड़ी सी बातचीत मेरे और तेरे दर्मियान में हुई कि फिर मेरा और तेरा सब दूर हुआ (यानी बाद वस्ल के दुई जाती रही) ये हद है। सालिक इस मंज़िल से आगे नहीं रह सकता और बहुत थोड़े ऐसे आला मुक़ाम पर पहुंचते हैं। ग़रज़ कि तरीक़ हमा औसत ने इसी तरह रिवाज पाया जिससे ये साबित होता है कि राहत व रंज, ख़ैर-ओ-शर और ख़ुशी और नाख़ुशी सब उसी ज़ात-ए-क़दीम के ज़हूर हैं। मज़्हब जो कशफ़ ज़ाहिर से मालूम हुआ था इस मंज़िल के चंद पहुंचने वालों के नज़्दीक गुज़री हुई चीज़ की मिस्ल है। शरीअत की हदूद की कुछ हाजत नहीं रहती। जिसका वस्ल ख़ुदा से कामिल हो जाता है फिर इस से बदी नहीं हो सकती। ख़ुसरो शायर का मक़ूला है कि **"इबादत से मक़्सूद ख़ुदा की मुहब्बत और इश्क़ है फिर मुझे इस्लाम की क्या हाजत है।"** अख़ीर मंज़िल बाद मौत के हासिल होती है।

आठवीं को मुक़ाम फ़ना कहते हैं। तालिब तमाम जुस्तजू के बाद और सालिक तमाम दुश्वार-गुज़ार राहों को तै करने के बाद जब पर्दा उठा कर देखता है तो कुछ नहीं पाता (अफ़्सोस का मुक़ाम है) जब सालिक मंज़िल बामंज़िल बतदरीज बढ़ता है तो मज़्हब की क़ुयूद और शरअ अहकाम ज़ाहिर की पर्वाह कम होती जाती है। सूफ़ी के मज़्हब में ऐन ख़ुदा से मुवाफ़िक़त चाहीए और जब ये बात हासिल हो जाती है तो शरई अहकाम, दीनी रसूम और अख़्बार (अहादीस, ख़बरें) के एतबार में उस के नज़्दीक फ़र्क़ आ जाता है। कौन सा क़ानून किसी को ख़ुदा के वस्ल से रोक सकता है और कौन से ज़ाहिरी तरीक़े उस शख़्स के हक़ में मुख़िल हो सकते हैं जिनसे हालत वज्द में हक़ तआला से उसी की बुज़ुर्ग हक़ीक़त का कशफ़ हासिल किया हो।

अहकाम दीनी और रुम की पाबंदी महज़ मजाज़ी मअनी रखती है। अक़ाइद निरी बेड़ियाँ हैं जो अय्यारी से इसलिए बनाई गई हैं कि रूह की परवाज़ को महदूद रखें। मज़्हब के कुल ज़ाहिरी अहकाम तालिब के नज़्दीक बड़ी क़ैद है। पस अहले तसव्वुफ़ जो अक़ाइद में हमा औसत वालों के मुनासिब और अमल में अक्सर शरअ के मुख़ालिफ़ हैं, ऐसी क़ुदरत नहीं रखते कि इस्लाम को जान ताज़ा बख़्शें। ये कोई मुस्तक़िल मज़्हब नहीं है जो गिरोहों और क़ौमों की इस्लाह हाल करे बल्कि बमंज़िल-ए-ख़्याल और राय के है। मुसलमानों का कोई मुल्क ऐसा नहीं जहां सारी क़ौम सूफ़ी हो।

बावजूद तमाम मईनी बातों के और बावस्फ़ ये कि ये वस्फ़ उम्दा है कि नूर मार्फ़त और हक़ीक़त की जुस्तजू की जाती है। तसव्वुफ़ की इल्लत-ए-ग़ाई (नतीजा, अस्ल मक़्सद या वजह) मासिवाए अल्लाह से सरासर इन्कार है। पस सूफ़ियों का तरीक़ हमा औसत यानी इस्लाम की ये पोशीदा ताअलीम जो बमंज़िल-ए-दीनी ताअलीम के तसव्वुर की जाती है, इस का नतीजा वही है जो बकाए रूह के क़ाइल नहीं, उनका है यानी इन्सान की आज़ादी से इन्कार और तमाम दुनियावी राहत के मुहर्रिकात और मूजिबात से इस्तिग़ना नतीजा तसव्वुफ़ का ये हुआ कि दरवेशों[19] की सालिक बकस्रत मुक़र्रर हुई।

इन दरवेशों को बा शरअ मुसलमान हक़ारत से देखते हैं। फिर भी इनकी कस्रत है। तुर्की में आज तक इनका बड़ा लिहाज़ किया जाता है। फ़क़त एक शहर क़ुस्तुनतुनिया में फ़क़ीरों के दो सौ तक तकिए (तकिया : फ़क़ीरों के रहने की जगह) हैं। इन दरवेशों का इंतिज़ाम ऐसा दुरुस्त नहीं, ना वो पाबंद ऐसे सख़्त क़ाईदों के हैं जैसे मसीही फ़ुक़रा हैं। लेकिन शुमार में उनसे बहुत ज़्यादा हैं। हर मसलक के अफ़्क़ार (फिक्रें) और अश्ग़ाल वग़ैरह मख़्सूस

---

19 दरवेश फ़ारसी ज़बान का लफ़्ज़ मुरक्कब है "दर" और "वेज़" से, दर के मअनी दरवाज़े के हैं और वेज़ माद्दा है, मुसद्दिर आवेख़्तन (آویختن) का जिसके मअनी लटकने लटकाने के हैं। चूँकि फ़क़ीर अक्सर दर-ब-दर मांगते फिरते हैं इस वास्ते ये नाम रखा गया। बाअज़ मुसलमान बुज़ुर्ग दरवेशों की निस्बत भीक मांगने को मअयूब (एब वाला) जान कर दूसरी तरह तावील करते हैं, यानी ये कहते हैं कि दरवेश मुरक्कब है दरबज़्म वाल मोअज्जमा से जिसके मअनी मोती के हैं । दरवेश जिसके मअनी मानिंद के हैं दरवेश आया कि दोश का है। मेरे नज़्दीक पहली वजह औलाद है। मगर ग़ियास-उल-लुग़ात में जो फ़ारसी में अच्छी किताब है दोनों वजहें हैं।

हैं जिससे वो समझते हैं कि उक़्बा के इसरार खुल जाते हैं, उन्हें भी क़फ़ीर यानी मुहताज कहते हैं। लेकिन मुहताज का लफ़्ज़ हमेशा उस्मानी से नहीं कहते हैं कि वो दुनिया के फ़क़ीर हैं बल्कि उस्मानी से कि वो मुहताज और तालिब ख़ुदा हैं। बहुत से मसालिक के दरवेश सवाल नहीं करते और उनके तकीयों में हर तरह का सामान मौजूद रहता है। फ़क़ीर दो तरह के हैं, बा शरअ और बे शरअ। बाशरअ दरवेश शरीअत के मुवाफ़िक़ अपने चलन तरीक़ इख़्तियार करते हैं। उन्हें सालिक यानी शरीअत की राह में चलने वाले कहते हैं। बे शरअ अगरचे अपने आप को मुसलमान कहते हैं लेकिन शरअ के अहकाम पर नहीं चलते। उन्हें आज़ाद या मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) कहते हैं। मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) और आज़ाद इस सबब से कहते हैं कि दुनिया के अफ़्क़ार (फिक्रें) और कारोबार से आज़ाद और बे-तअल्लुक़ होते हैं। सालिक दरवेश वो हैं जो ज़िक्र और शुग़्ल रखते हैं। इन दीनदारी के मुद्दियों से इस्लाह इस्लाम की क्या उम्मीद है जिनकी ताअलीमात इस नहज की हो जैसे बयान मुंदरजा ज़ैल से मालूम होती है :-

(1) सिर्फ ख़ुदा मौजूद है। वो हर शैय में है और हर शे उस में है। बतहक़ीक़ हम ख़ुदा से हैं और उसी की तरफ़ लोटने वाले हैं। (सूरह बक़रह 151)

(2) कुल महसूसात और ग़ैर महसूसात उसी से निकलती हैं और दर-हक़ीक़त उस से जुदा नहीं, पैदा करना उस का एक तमाशा है।

(3) बहिश्त और दोज़ख़ और कुल अहकाम मज़ाहिब मजाज़ी हैं जिसका मतलब सिर्फ सूफ़ी जानता है।

(4) मज़्हब की पर्वा नहीं करनी चाहीए, मगर हक़ीक़त तक पहुंचने की सीढ़ी है। इस ग़रज़ से बाअज़ मज़ाहिब बनिस्बत बाअज़ के बेहतर हैं। मुसलमानों का मज़्हब इसी क़िस्म का है और तसव्वुफ़ इस मज़्हब का फ़ल्सफ़ा है।

(5) ख़ैर व शर में कुछ अस्ल फ़र्क़ नहीं क्योंकि सब एक हो जाते हैं और इन्सान के अफ़आल का अस्ल ख़ालिक़ ख़ुदा है।

(6) ख़ुदा की मशीयत ने आदमी के अफ़आल मुक़र्रर कर दीए हैं। इस वास्ते इन्सान अपने अफ़आल का मुख़्तार नहीं है।

(7) रूह जिस्म से पहले मौजूद थी और अब के जिस्म क़फ़्स-ए-अंसरी में मुक़य्यद है। मरने के बाद जहां से निकली थी वहीं को लोट जाती है यानी ख़ुदा के पास।

(8) सूफ़ी का अस्ल मक़्सूद ये है कि वहदत का तसव्वुर बांधना और इस से तज़किया बातिनी और कमाल रूही हासिल करे, ख़ुदा से वस्ल पाए।

(9) बग़ैर ख़ुदा के फ़ज़्ल के ये वस्ल मयस्सर नहीं होता है। लेकिन जो लोग सीधी राह पर हैं ख़ुदा उन्हें मदद देने से इन्कार नहीं करता है। शेख़ मुर्शिद को बड़ी क़ुदरत होती है।

इस मुक़ाम पर एक मुबतदी (इब्तिदा करने वाला) नौ आमोज़ का हाल लिखा जाता है जिससे मालूम होगा कि किस तरह फ़क़ीरों के फ़िर्क़े में दाख़िल हुआ और किस क़िस्म की मजाहिदे और अश्ग़ाल करने पड़े। इस शख़्स का फ़क़ीरी नाम तवक्कुल बैग था। उस का बयान है "जब अखुंद (आखुंद: उस्ताद) मुल्ला मुहम्मद की वसातत से शेख़ मुल्ला शाह से मेरी मुलाक़ात हो गई तो बार-बार की आमद-ओ-रफ़्त से आतिश-ए-शौक़ ऐसी दिल में मुश्तइल हुई और तसव्वुफ़ का अस्ल हाल दर्याफ़्त करने पर इस क़द्र तबीयत का रोहजान हुआ कि ना रात को नींद आती, ना दिन को चेन पड़ता था। जब इस फ़िर्क़े में दाख़िल हुआ तो अव्वल तमाम रात जागा और सूरह इख़्लास मुतवातिर पढ़ता रहा कि "अल्लाह एक है, अल्लाह पाक है। ना उसने किसी को जना है ना वो किसी से जना गया है और कोई उस की मिस्ल नहीं है।" (सुरह 112) जो कोई इस को 2 मर्तबा पढ़े उस की मुरादें पूरी होती हैं। मैंने चाहा कि शेख़ मेरे हाल पर तवज्जा करे। जब ही मैं अपना शुग़्ल ख़त्म कर चुका शेख़ के दिल में मेरी तरफ़ से जगह हुई और मुझ पर रहम आया। दूसरी शब को मुझे लोग उस की ख़िदमत में ले गए। तमाम रात उसने अपने ख़यालात को मेरी जानिब मसरूफ़ किया यानी मुझ पर तवज्जा डाले और मैं भी मुराक़बा में हमा-तन महव था। तीन रातें इसी तरह गुज़रीं। चौथी शब को शेख़ ने फ़रमाया कि अब मुल्ला सुनगिन और सालिह बैग जो मुराक़बा करना ख़ूब जानते हैं तवक्कुल बैग पर तवज्जा डालें। चुनान्चे उन्होंने शेख़ के हुक्म की तामील की और मैं भी तमाम रात क़िब्ला-रूख हो कर मुराक़बा में मसरूफ़ रहा। जब सुबह क़रीब हुई। फ़लक के अंदर

कुछ रोशनी सी मालूम हुई। मगर ये तमीज़ नहीं हो सका कि उस की शक्ल या उस का रंग क्या है। फ़ज्र की नमाज़ के बाद मुझे शेख़ के पास ले गए। उन्होंने मुझसे दिल का हाल पूछा। मैंने अर्ज़ किया कि निगाह बातिनी से कुछ नूर नज़र आया। शेख़ ये सुनकर नाराज़ हुआ और कहा कि तेरा दिल स्याह है। लेकिन वो वक़्त क़रीब है कि मेरा दीदार तुझे साफ़ नज़र आएगा। फिर उन्होंने ये फ़रमाया कि रूबरू बैठ कर मेरी सूरत का तसव्वुर बांध और फिर मेरी आँखें बंद कर के हुक्म दिया कि अपने कुल ख़यालात से मुझ पर रुजू कर। मैंने वैसा ही किया और एक लम्हे में शेख़ के फ़ैज़ बातिन से मेरा दिल खुल गया। फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि बताओ तू ने किया देखा। मैंने अर्ज़ किया कि मुझे ये नज़र आया कि कोई दूसरा तवक्कुल बैग और दूसरा मुल्ला शाह बैठा है। फिर मेरी आँखों से पटी खोल दी और मैंने शेख़ को अपने रूबरू देखा। जब फिर (मुँह) ढांक दिया तब भी निगाह्-ए-बातिनी से वही शेख़ वैसे ही नज़र आया। तब मैंने मुतह्य्यर हो कर ये नारा मारा कि उसे आक़ा ख़्वाह निगाह जिस्मानी से देखूं ख़्वाह रुहानी से हमेशा तुझी को देखता हूँ। इतने में एक पैकर नूरानी ज़ाहिर हुई। शेख़ ने मुझसे फ़रमाया कि तू उनसे पूछ कि तेरा नाम क्या है। मैंने अपने दिल में ये सवाल किया और पैकर ने भी मेरे दिल को जवाब दिया कि मैं अब्दुल क़ादिर जीलानी हूँ और मैं ही ने मदद की कि तेरा दिल खुल गया। ये सुनकर मैं निहायत मुतह्य्यर हुआ और अह्द किया कि मैं हर जुमा की शब को सारा क़ुरआन शेख़ के नाम पर ख़त्म किया करूँगा। फिर मुल्ला शाह ने कहा कि अब तो आलम-ए-अर्वाह की सैर तुझे ख़ूब दिखा दी। मैं भी फिर शेख़ का निहायत ममनून और मुतीअ हो गया। दूसरे रोज़ मैंने नबी को और उनके अस्हाब को और औलिया और मलाइका को देखा। तीन महीने के बाद मैं ऐसे तारीक मुक़ाम में पहुंचा जहां वो सूरतें फिर नज़र नहीं आएं। इस अरसा में शेख़ ने वहदत और मार्फ़त के इसरार मुझे समझाए। लेकिन हनूज़ मुजर्रिद हक़ीक़त नहीं बताई। जब एक साल गुज़र गया तब मेरा तसव्वुर अस्ल हिद्दत तक पहुंचा।

फिर मैंने शेख़ से अपनी इस कशफ़ का हाल ब-ईं अल्फ़ाज़ बयान किया कि मैं अपना बदन मह्ज़ बमंज़िला पानी और मिट्टी के तसव्वुर करता हूँ। अब मुझे ना अपने दिल की ना जान की कुछ पर्वा है। अफ़्सोस मेरी

इतनी उम्र तेरी जुदाई में कटी। हालाँकि मुझमें और तुझमें दुई ना थी। मगर मैंने नहीं जाना। शेख़ ख़ुश हुआ और कहा कि अब वस्ल के मुक़ाम पर पहुंच गया। फिर उन लोगों से जो उस वक़्त मौजूद थे मुख़ातब हो कर फ़रमाया। तवक्कुल बेग ने मुझसे ताअलीम पाई, बातिन की आँख खुल गई और ऐवान (मकामे) और इशकाल के मुक़ामात उसे दिखा दीए। अब वो मजाज़ की सीढ़ी से गुज़र कर ऐसे मुक़ाम पर पहुंचा जहां कि कुछ रंग नहीं है। वहदत की हक़ीक़त उसे मालूम हो चुकी है। सुलूक और तो हमात इस पर क़ाबू नहीं पाएँगे। कोई शख़्स वहदत को ज़ाहिरी आँख से नहीं देख सकता है जब तक निगाह्-ए-बातिन क़वी और क़ादिर ना हो। मैं इस मज़्मून को बग़ैर उमर ख़य्याम का थोड़ा सा हाल लिखने के ख़त्म नहीं कर सकता।

उमर ख़य्याम फ़ारस का नामवर नजूमी शायर था। बाअज़ लोग उसे सूफ़ियों में जानते हैं क्योंकि उस के अशआर का तर्ज़ अहले तसव्वुफ़ का सा है। लेकिन दरअस्ल वो बद-मज़्हब सा था। उसने बहुत थोड़ा लिखा है लेकिन जो कुछ लिखा है हमेशा यादगार रहेगा। नजूमी होने की हैसियत से लायक़ लिहाज़ है। 517 हिज्री में उसने क़ज़ा की। उस के अक़ाइद में दो वजह से फ़र्क़ आ गया। अव्वल, इस जैसे ज़ीरक आदमी को इस्लाम का सख़्त और तंग तरीक़ निहायत नागवार बोझ था। दूसरा उस की आलिमाना तबीयत को तसव्वुफ़ से जिनमें रिया को बड़ा दख़ल है और बड़े बड़े सरगर्म सूफ़ी अक्सर अय्यार और फ़रेबी होते हैं। चंदाँ मुनासबत ना थी। ये सही है कि बाअज़ उम्दा सूफ़ियों में बहुतेरी बातें ऐसी भी हैं जिनसे पाया जाता है कि उन्हें मह्ज़ दुनियावी नेकी से उक़्बा का ख़्याल ज़्यादा है, यानी फ़िल-जुम्ला ख़ुदा को पहचानते हैं। लेकिन अब सब बातों के साथ एक ग़रूर रूहानियत का ऐसा लग गया है कि दुनिया और इस के सब अहकाम उनके नज़्दीक दाख़िल शर हैं और दीन व दुनिया को ऐसा मतरूक किया है कि दोनों बर्बाद गए हैं। हमा औसत ने तसव्वुफ़ में ऐसा घर बनाया है कि फिर आदमी को अपनी मर्ज़ी पर चलने और अपने नफ़्स को समझाने की गुंजाइश नहीं रहती। अख़्लाक़ी शरीअत तक़्वीम-ए-पारीना हो गई है। बे दीनों ने शरीअत की गुलामी और क़ुयूद से आज़ाद होने को दीनदारी इख़्तियार की। पस जो तहरीक कि अव्वल किसी आला और उम्दा मक़्सद से पैदा हुई थी आख़िर को

बदी की समर हुई और नतीजा ख़राब निकला। जो धार (दरिया का बहाव) कि जिसे फैल कर सेराब करने वाला दरिया होना चाहीए था, वो अब वसीअ दलदल हो गई है जिनसे वबा व मौत के भरे हुए बुख़ार निकलते हैं। उमर ख़य्याम को ये कुल कैफ़ीयत मालूम हो गई होगी और झूटी ख़ुशी के इज़्हार से अपने दिल का हज़न (रंज) व मलाल फ़ुज़ूल छुपाना चाहता है। इस ख़्याल से कि अगर ज़ाहिर पर पर्दा पड़ जाता है तो इस को कौन समझेगा।

फ़ना के मैदान में एक लम्हा रहता है।
पुल-भर ज़िंदगी का मज़ा चखा है।
सितारे डूब रहे और क़ाफ़िला अदम को रवाना होता है
ऐ चलने वालो जल्दी करो, ऐ साक़ी जाम को लबरेज़ कर
बार-बार इस कहने से क्या फ़ायदा कि ज़माना हमारे पैरों से
निकला जाता है।
कल की मौत का क्या ग़म है।
अगर आज लुत्फ़ से गुज़रती है।

उमर ख़य्याम ये समझता था कि दुनिया ही में जो कुछ है, सो है। उक़्बा उस के नज़्दीक कोई चीज़ ना थी। आदमीयों के सब मुआमलात को उमूर इत्तिफ़ाक़ी से जानता था। हर आदमी को बेकसी और लाचारी की राह इख़्तियार करनी ज़रुर है। रात और दिन एक बिसात (फ़र्श) है।

जिस पर तक़्दीर आदमीयों की मोहरों से बाज़ी खेलती है।
इधर उधर हरकत उस को है, कभी बराबर रहती है और कभी मोहरा
मार लेती है।
लेकिन एक एक कर के सबको आख़िरश जीत लेगी।
चलती हुई उंगली लिखती है और लिख कर चली जाती है। फिर तेरा सारा
इल्क़ा और होशयारी चाहे कि उसे (यानी उंगली को आधी सतर मेटने
(मेटना: मिटाना, बर्बाद करना) को लोटाल बुलाए।
या अपने तमाम आँसूओं से एक लफ़्ज़ भी धो डाले तो नहीं।

ना आस्मान से ना ज़मीन से कहीं से उसने अपनी इस फ़र्याद का जवाब नहीं पाया। दानिश मंदों और बुज़ुर्गों से बहस की और बड़ी बड़ी दलीलें सुनीं। लेकिन हमेशा जिस दरवाज़े में घुसा था उस से निकल आया। चुक़ चुक़ और बक बक दानिश मंदों पर छोड़ी क्योंकि उस के नज़्दीक सिर्फ एक बात हक़ थी और सब झूट था यानी जो फूल एक मर्तबा खीलता है वो हमेशा को मुरझा जाता है। आदमीयों को छोड़कर (क़ुदरत) पर माइल हुआ लेकिन इस में भी वही बात पाई।

ज़मीन के मर्कज़ से सातवें आस्मान तक गया।
और ज़ुहल के तख़्त पर बैठा।
बहुतेरी दिक्कतें राह की आसान कीं।
पर एक अक़्दह इन्सान की मौत और तक़्दीर का हल ना कर पाया।
और वो अंदर वबा (ग़म मिटाने वाला पियाला जिसे हम आस्मान कहते हैं।
जिसके अंदर पड़े हुए जीते हैं और मर जाते हैं।
अपने हाथ मदद के वास्ते मत उठा क्योंकि
वो बे-इख़्तियारी से मेरी और तेरी मानिंद घूमता है।

उमर का अक़ीदा लक्रिटेस् का सा है। दोनों इस बात के क़ायम थे कि रूह ज़ातियात में जिस्म से जुदा नहीं है। उक़्बा के हयात का किसी को यक़ीन नहीं था। लक्रिटेस् ने अपने वास्ते एक मज़्हब बनाया। उस के अशआर की ग़रज़ उस इक़लीम (विलायत, मलिक) से है कि दुनिया एक कुल है जो ख़ुद बख़ुद हरकत करती है। ये ताअलीम पहुंचाती है कस्रत माबूद पर और ये कि ये आख़िरत कोई चीज़ नहीं। लेकिन उमर ने कोई मज़्हब नहीं बनाया। वो अपने शकूक और पेचीदगीयों को ज़ाहिर करता है। उसे यही पसंद है कि अपने मुख़ालिफ़ दावों का अंदाज़ा कर के शक के मुक़ाम में पड़ा रहे। ये अम्र कि इसी दुनिया में ख़ातिमा है और कोई दूसरा आलम नहीं, लक्रिटेस् को गिराँ ना था। लेकिन उमर जिसको अक़्ल अगर इजाज़त देती तो फ़ौरन उक़्बा का एतराफ़ करना कमाल रंज व अफ़्सोस से सख़्त मायूसी के कलिमात

लिखता है। इस बात से कुछ ख़ुश नहीं कि कहीं कुछ सहारा[20] नहीं और हर-चंद जाम-ए-मय तलब कर के सैर गाह से ये शोर उठते हुए सुनता है कि :-

ऐ बचोगे उट्ठो और जाम भर लो।

क़ब्ल अज़ां कि ज़िंदगी का पियाला लबरेज़ हो।

बा ईं हमा उस वक़्त पर भी इस की निगाह है जिस वक़्त में कि दानिश के इक़रार करने वालों के साथ ये कर सकता था कि

हिक्मत का तुख़्म उनके साथ मैंने बोया।

और मेरे ही हाथ की मेहनत से उगा।

फ़िर्क़ा वहाबिया का बानी मुहम्मद इब्ने अब्दुल वहाब था जो बजद के एक फ़िर्क़े में 1691 ई॰ में पैदा हुआ था। वहाबी (अपने) आपको मवह्हिद (यानी तौहीद के मानने वाले और शिर्क से बचने वाले) कहते हैं। लेकिन उनके मुख़ालिफ़ों ने मुहम्मद के बाप के नाम पर इस फ़िर्क़े का नाम रख दिया यानी उसे वहाबी कहते हैं। मुहम्मद बड़े दानिशमंद और ज़बरदस्त जवान मिज़ाज के सख़ी थे। अरबी की तहसील से फ़ारिग़ हो कर हनफ़ी मज़्हब के मसाइल सीखे। फिर अपने बाप के साथ हज को गया और मदीना में रह कर शरीअत की मज़ीद ताअलीम पाई। फिर चंद मुद्दत तक इस्फ़िहान में उलमा की सोहबत में रहा। वहां से आलिम हो कर अपने मौलिद यानी क़र्या एनबा को मुराजअत की जहां कि एक मुद्दत तक दीन की ताअलीम देता

---

20 अगरचे उमर ने बज़ाहिर बेदीनी को इख़्तियार किया लेकिन यक़ीन-ए-कामिल नहीं कि दर-हक़ीक़त ऐसा बद-अक़ीदा हो और अगर उस के ज़माने के हालात पर लिहाज़ करें तो उमर ख़य्याम की ग़लतीयों पर कुछ हो सकता है। उस की साफ़ और पुख़्ता अक़्ल ने इस मुरव्वज तक़िया से जो उस ज़माने की सरगर्म तबीअतों का ज़ामिन था, इन्हिराफ़ (ना-फ़र्मानी) किया और उन अय्यारों से जिनकी सारी दीन-दारी और सरगर्मी महज़ रिया के पैराया में थी घबराता था क्योंकि उनकी बे-बाक तबीयत को ऐसी बातें बड़ी गिरां थीं और उस बारीक ज़माने में अगर कोई फ़िक्रमंद मुसलमान अपने हाल की इस्लाह करना चाहता तो इस्लाम से बाहर किधर जाता। कोई पादरी ऐसा ना था जो फ़ारस के पहाड़ों पर ख़ुशख़बरी पहुँचाता। मसीही जो इस सरज़मीन में रहते थे वो उसे बुतपरस्त मालूम होते होंगे। सादी के अहवाल में एक मुसन्निफ़ लिखता है। मज़्हब ईस्वी से जो कुछ ताल्लुक़ उन्हें हुआ था वो सिर्फ इसी क़द्र हुआ कि तरह बुल्स में ईसाई मुजाहिदों ने गिरफ़्तार कर के ग़ुलाम बनाया था। यही जुदाई फ़ारसी इल्म-ए-अदब के ज़माने उरूज में रही। (कलकत्ता रिव्यू नंबर 49)

रहा। इस को ये हालत देखकर बड़ा सदमा हुआ कि अरब ने पैग़म्बर के तरीक़ों को जिनमें किसी तरह तग़य्युर नहीं मुम्किन था, बदल डाला है और ऐश-ओ-इशरत में पड़ गए हैं। उम्दा पोशिशें रखते और लिबास रेशमी पहनते हैं। ज़यारत गाहों और मुतबर्रिक मुक़ामात के सफ़र में नजिस व सअद को मानते हैं जिससे रसूल अल्लाह के दीन में ख़लल आ गया है। उसने देखा या ऐसा समझा कि बुज़ुर्गों और वलीयों की ताज़ीम लोग इस क़द्र करते हैं कि तौहीद में नुक़्सान (यानी शिर्क) लाज़िम आता है। इस का सबब निहायत ज़ाहिर था। क़ुरआन और सुन्नत को भूल गए थे। बुज़ुर्गों के अक़्वाल और चारों इमामों के इज्तिहाद की पैरवी करते थे। इस वास्ते उसे बड़ा काम करना था। जमाअत इस्लाम की इस्लाह और लोगों को किताब-ओ-सुन्नत की पैरवी पर जैसा कि सहाबा ने फ़रमाया था, लाना ज़रूर था। ये सच्च है कि सुन्नी मुक़ाबले को उठे इस सबब से कि उनके इमामों की वक़अत और तक़्लीद में फ़र्क़ आता था। लेकिन इस से क्या होना था। मुहम्मद अव्वल ख़ुद मख़्फ़ी (छिपे) था। अब वो अबू ख़लीफ़ा के तर्क तक़्लीद पर आमादा हो गया क्योंकि सुन्नत के बाब में बजुज़ अस्हाब नबी के और किसी का क़ौल मोअतबर ना था। इस वास्ते उसने बुज़ुर्ग इमाम की तक़्लीद छोड़ी और अपना मसलक अलग जारी किया। उसने कहा कि मुसलमान हुज्जाज नबी की क़ब्र और अली की ज़यारत को और वलीयों को पूजते हैं और उनके मज़ारों पर सई (कोशिश, मक्के की दो पहाड़ीयों सफ़ा-ओ-मर्वा के दौड़ना) करते हैं (यानी घूमते हैं और ये समझते हैं कि इस से दीन-ओ-दुनिया की मुरादें बराती हैं। किस चीज़ से मुरादें मांगते हैं। क्या मिट्टी और पत्थर की दीवारों से, किया मुर्दा नाशों से जो क़ब्रों में दफ़न हैं? अगर तुम उनसे पूछो तो जवाब देंगे कि हम इन चीज़ों को माबूद नहीं कहते बल्कि उनसे ये अर्ज़ करते हैं कि ख़ुदा से हमारे वास्ते सिफ़ारिश करें। लेकिन नजात की अस्ल राह ये है कि आपको उसी के सामने झुकाए जो हमेशा मौजूद है और उसी की ताज़ीम व परस्तिश करे जिसका कोई साझी या नहीं।

इन बातों से मुख़ालिफ़त पैदा हो गई और मुहम्मद अरबी ने एक सरदार मुहम्मद इब्ने सअद से पनाह चाही। उसने वहाबियों के मुआमले में बड़ी मदद पहुंचाई। ये शख़्स बड़ा जरी (बहादुर) और उलुवलअज़्म था। उसने

अपने सिपाहीयों को हुक्म दिया कि जिस मुक़ाम पर क़ब्ज़ा करो वहां के जवानों को तातेग़ करो और जिस क़द्र चाहो लूट मार करो लेकिन औरतों को मत मारो और उनकी इस्मत में रख़्न ना डालो। लड़ाई के दिन हर सिपाही को एक ख़त दिया करता था कि इस से उक़्बा में कुछ हिसाब ना लिया जाये। ये ख़त बहिश्त के दारोगा के नाम होता था। एक थैली इसे बंद कर देते थे जिसे सिपाही अपने गले में डाल लेते थे। सिपाहीयों को ये तर्ग़ीब दी जाती थी कि जो लोग लड़ाई में जान देंगे, वो सीधे बहिश्त (जन्नत) में जाऐंगे। मुन्किर नकीर क़ब्र में उनसे कुछ हिसाब ना लेंगे। जो लोग लड़ाई में मारे जाते थे उनकी बेवाओं और यतीमों को ज़िंदा आदमी मख़ारिज मायहताज (वो चीज़ जिसकी ज़रूरत हो) से ख़बर-गीरी रखते थे। पस ऐसे लोगों को जिनके दिलों में शौक़ की आग उस चीज़ की जानिब भड़क रही थी जिसको वो हक़ जानते थे और जो दर सूरत फ़त्हयाबी की पाते थे और दर सूरत मक़्तूल होने के सीधे बहिश्त (जन्नत) को जाते थे, कौनसी चीज़ जंग से रोक सकती थी। एक मुद्दत के बाद मुहम्मद इब्ने सअद ने अब्दुल वहाब की बेटी से शादी कर के वहाबियों के ख़ानदान की बुनियाद डाली जो आज तक रिया[21] पर हुकूमत करता है। अल-ग़र्ज़ आग़ाज़ उस फ़िर्क़े का इसी तरह हुआ जो रफ़्ता-रफ़्ता तमाम वस्ती और मशरिक़ी अरब में फैल गया और इस सदी के आग़ाज़ में हिन्दुस्तान में भी रिवाज पाया। 1803 ई॰ में मक्का व मदीना दोनों वहाबियों के क़ब्ज़े में आ गए और तमाम चीज़ें जिनका इस्तिमाल वहाबियों के अक़ाइद के ख़िलाफ़ था, दूर कर दी गईं। तस्बिहें, तावीज़ और रेशमी लिबास और हुक़्क़े सब आग में जला दीए क्योंकि हुक़्क़ा पीना गुनाह कबीरा है। पालगीरज़ साहब ने इस मुक़ाम पर एक उम्दा हिकायत लिखी है। अब्दुल करीम ने कहा कि ख़ुदा की ताज़ीम में मख़्लूक़ को शरीक करना शिर्क है। (शिर्क का मर्तबा गुनाह कबीरा से ज़्यादा है) मैंने कहा कि अलबत्ता ये

---

21 वहाबी सरदारोँ के नाम और उनकी तारीख़-ए-वफ़ात की तफ़्सील ज़ेल है। मुहम्मद इब्ने सअद ने 1765 ई॰ में क़ज़ा की। अब्दुल अज़ीज़ 1803 ई॰ में मक़्तूल हुए। सअद इब्ने अब्दुल अज़ीज़ ने 1814 ई॰ में वफ़ात पाई। अब्दुल्लाह इब्ने 1818 ई॰ में मक़्तूल हुआ। सय्यद तुर्की 1820 ई॰ में मक़्तूल हुआ। शेख़ फ़ज़्ल ने 1866 ई॰ में इंतिक़ाल किया। अब्दुल्लाह अब तक ज़िंदा है। हीओ साहब की नोट, सफ़ा 22)

बहुत बड़ा गुनाह है लेकिन इस के बाद (कौनसा गुनाह है?) तो उसने फ़ौरन जवाब दिया कि इस के बाद हुक़्क़ा पीना है। फिर मैंने पूछा कि क़त्ल, ज़िना और झूटी गवाही कैसे गुनाह हैं। तो इस दोस्त ने कहा कि ख़ुदा ग़फ़ूरुर-रहीम है यानी ये गुनाह सग़ायर में से हैं।

मक्का और मदीना पर 9 बरस वहाबियों का क़ब्ज़ा रहा। इस के बाद टर्की (तुर्की) फ़ौज ने उन्हें वहां से निकाल दिया और वहाबियों के चौथे सरदार अब्दुल्लाह को इब्राहिम बादशाह ने मुक़य्यद कर के क़ुस्तुनतुनिया भेज दिया। जहां कि 1818 ई॰ सूफ़िया के मैदान में मक़्तूल हुआ। तब से वहाबियों की मुल्की क़ुव्वत सिर्फ अरब के मुल्कों पर महदूद रही। लेकिन उनका मज़्हब जा-ब-जा फैल गया है। हिन्दुस्तान में वहाबियों के सरदार एक तर्तीब याफ्ताह क़ज़्ज़ाक़ यानी सय्यद अहमद थे। ये शख़्स राय बरेली वाक़ेअ मुल्क ऊदा में 1781 ई॰ में पैदा हुए थे। 30 साल की उम्र को पहुंच कर लुट मार छोड़ दी और दिल्ली में रह कर शरीअत इस्लाम की ताअलीम पाई। चंद मुद्दत के बाद हज के वास्ते मक्का को चले गए। चूँकि उनके अक़ाइद मुहम्मद इब्ने अब्दुल वह्हाब से मिलते थे इसलिए मक्का के आलिमों ने नाराज़ हो कर उन्हें निकलवा दिया। ईज़ा पाने से अक़ाइद और भी पुख़्ता हो गए और वहाबी मशहूर हो कर हिन्दुस्तान को वापिस आए।

चंद ही मुद्दत में लोग बकस्रत उनके मुरीद हो गए और 1826 ई॰ में सिखों पर जिहाद का हुक्म दिया। इस जंग का अंजाम अच्छा ना हुआ। 1831 ई॰ में सिखों ने बाद शेर जंग वहाबियों पर हमला यकायक किया और सय्यद अहमद को क़त्ल कर डाला, मगर इस से भी इशाअत अक़ाइद वहाबिया की बंद ना हुई क्योंकि सय्यद अहमद ने ख़ुश-क़िस्मती से अपने बाद एक शागिर्द निहायत मुस्तइद और सरगर्म छोड़ दिया था। इस शख़्स का नाम मोहम्मद इस्माईल था जो 1781 ई॰ में क़रीब दिल्ली पैदा हुए थे। ज़की-उल-तबा, जवान और जोहर क़ाबिलीयत से मुत्तसिफ़ थे। मुसलमानों के तमाम उलूम से जल्द फ़राग़त पाई और सबसे पहले दिल्ली की मस्जिद में तौहीद की तारीफ़ और शिर्क की मज़म्मत पर वाअज़ कहा। फिर सय्यद अहमद से बैअत (ख़लीफ़ा, अमीर या पीर के हाथ में हाथ देकर इताअत का अह्द करना) की। उन्होंने बहुत जल्द इस नए मुरीद को बड़ा मुतीअ कर

लिया। इस्माईल ने एक शब सय्यद अहमद से कहा कि मैं हुज़ूर क़ल्ब (दिल) से नमाज़ नहीं पढ़ सकता। ये सुनकर सय्यद मौसूफ़ उन्हें अपने हुज्रे में ले गए और फ़रमाया कि चंद रकअत मेरे पीछे पढ़ो और बाक़ी नमाज़ अकेले में ख़त्म करो। उन्होंने वैसा ही किया और ख़ुदा की सोच में ऐसे महव हो गए कि सुबह तक मशग़ूल रहे। फिर तो वो अपने मुर्शिद पर निहायत गरवीदा हो गए। बड़े बड़े मुबाहिसों में जो अक्सर हुआ करते थे कोई इस्माईल की हमसरी नहीं कर सकता था। तो हब के इस सरगर्म वाइज़ का नाम ख़ासकर तक़्वियतुल ईमान के सबब से अब तक यादगार ज़माना है। मैंने इस बाब में अक़ाइद वहाबिया का बयान इसी किताब से अख़ज़ किया है। अगर मज़ामीन मन्क़ूला के साथ मुसन्निफ़ का हवाला ना हो तो यूँही समझना चाहीए कि सय्यद अहमद के निहायत नामवर मुरीद मुहम्मद इस्माईल से इन मज़ामीन को नक़्ल किया है।

तक़्वियतुल ईमान के बाद दूसरी किताब सिरात-उल-मुस्तक़ीम है जिसे इस्माईल के एक मुरीद की तस्नीफ़ बताते हैं। वहाबियों के अक़ाइद अब तमाम हिन्दुस्तान में फैल गए हैं। दक्कन में हालाँकि दीनदारी का शौक़ और मज़्हब की तहक़ीक़ कम है। तिस पर (इस पर) भी बहुतेरे वहाबी[22] हो गए हैं। ये तहरीक भी अजीब थी और अब भी है। एक मअनी से ये ऐसी सई है जिसे पिछले मुहद्दिसों के ख़िलाफ़ समझना चाहीए लेकिन ये किसी तरह नहीं कह सकते कि वहाबियों को हदीस से इन्कार है। वहाबी उस को तस्लीम करते हैं कि ईमान का पहला रुक्न क़ुरआन है और दूसरा वो अहादीस हैं जो बसनद अस्हाब कलमबंद हुईं और इज्मा सहाबा के भी क़ाइल हैं यानी जिन उमूर में क़ौलन या फ़ेअलन अस्हाब मुत्तफ़िक़ थे उनको भी मानते हैं। पस सुन्नीयों की तरह वहाबियों के नज़्दीक भी मुहम्मद अरबी के कुल अफ़आल और अक़्वाल पुख़्ता हिदायत है।

पस वहाबियों के मज़्हब से तरक़्क़ी की उम्मीद इसलिए कि उनका रुजू इस्लाम के असली अक़ाइद की तरफ़ है, निहायत बईद है क्योंकि ये फ़िर्क़ा

22 पिछली मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट से साबित होता है कि चार हज़ार वहाबी अहाता मद्रास में और कुल तादाद मुसलमानों की इस मुल्क में बीस लाख है।

इस्लाम की पुरानी बेड़ियों को और भी मुस्तहकम करता है। इस से कोई नई बात नहीं निकलती है। ना ऐसे मज़्हब से आज़ाद होने की इस में कुछ तद्बीर है। जो क़ुरआन और अहादीस को तहज़ीब, अख़्लाक़, हुस्न मुआशरत और दीनदारी की पुख़्ता और मुकम्मल शरीअत बनाता है। वहाबी तौहीद के मसअले पर बड़ा ज़ोर देते हैं। ये सच्च है कि कुल मुसलमान फ़िर्क़े तौहीद को अव्वल मर्तबे पर रखते हैं। लेकिन वहाबी उन फ़ेअलों से भी मुनहरिफ़ हैं जिनमें शिर्क पाया जाता है। हालाँकि और फ़िर्क़ों में उनका रिवाज है। इस सबब से उनमें और मुसलमानों में फ़साद रहता है। उनके नज़्दीक बड़ा गुनाह शिर्क है। (ख़ुदा के साथ किसी तरह पर दूसरों को शरीक करना) मुशरिक वो है कि जो मुर्तक़िब शिर्क का हो। सब मुसलमान ईसाईयों को मुशरिक कहते हैं और वहाबी सिवाए अपने और सब मुसलमानों को मुशरिक जानते हैं क्योंकि वो नबी से शफ़ाअत की उम्मीद रखते हैं। वलीयों से मुरादें मांगते हैं। ज़यारतों को जाते हैं। अला हाज़-उल-क़यास और नाजायज़ काम करते हैं। तक़्वियतुल ईमान में लिखा है कि दीन में दो बातें लाज़िमी हैं। ख़ुदा को ख़ुदा और नबी को नबी जानना और बुनियाद ईमान की दो चीज़ें हैं, तौहीद और सुन्नत की पैरवी। दो बड़ी गल्तीयां जिनसे बचना चाहीए शिर्क व बिद्दत है। चूँकि ये लोग बिद्दत को (यानी नई बात निकालने को) बड़ा अजीब जानते हैं। इस वास्ते इनसे तरक़्क़ी की उम्मीद दुशवार मालूम होती है। शिर्क चार क़िस्म का होता है :-

(1) शिर्क-फ़ील-इल्म यानी ख़ुदा के इल्म में ग़ैरों को शरीक करना।
(2) शिर्क-फ़ील-तसर्रुफ़, ख़ुदा की क़ुदरत में ग़ैरों को शरीक करना।
(3) शिर्क-फ़ील-इबादत, ग़ैर ख़ुदा की बंदगी करने या ख़ुदा की बंदगी में औरों को शरीक करना।
(4) शिर्क-फ़ील-आदत, ऐसी रस्में करनी जिनसे सिवाए ख़ुदा के दूसरों पर भरोसा हो।

देखो तक़्वियतुल ईमान **अव्वल क़िस्म यानी शिर्क-फ़ील-इल्म** की इसी तरह शरह की है कि अम्बिया व औलिया ग़ैब की बातें जब तक कि ख़ुदा उन पर ज़ाहिर ना करे नहीं जानते हैं। चुनान्चे बाअज़ अश्रार (शरीर की जमा ने) एक दफ़ाअ बीबी आईशा पर तोहमत लगाई। नबी अलैहि इस्लाम

बहुत रंजीदा हुए और जब तक कि ख़ुदा ने ख़बर ना दी मुआमले की हक़ीक़त पर मुत्ला`अ (बाख़बर) ना हुए। इस वास्ते ये जानना कि नुजूमियों, रुमालों और वलीयों में ग़ैब दानी की क़ुदरत है, सरासर शिर्क है और जो लोग ऐसा कहते हैं कि हम ग़ैब की बातें जानते हैं, मसलन तक़्दीर की बातें बनाने वाले, फ़ाल निकालने वाले, ख़्वाबों की ताबीर बयान करने वाले और नीज़ वो जो इल्हाम पाने का क़रार पाते हैं, सब झूटे हैं। फिर अगर कोई बजाय ख़ुदा के किसी वली का नाम ले या मुसीबत के वक़्त उसे पुकारे या दुश्मन पर हमला करते वक़्त उस का नाम ले या नाम लेकर पुकारे या उस का ख़्याल बाँधे, ये शिर्क-उल-इल्म है।

दूसरी क़िस्म शिर्क-फ़ील-तसर्रुफ़ है कि ख़ुदा की क़ुदरत में दूसरे को शरीक समझे जो कोई ख़ुदा के साथ किसी दूसरे की शफ़ाअत की उम्मीद रखे, वो मुशरिक है। जिन लोगों ने सिवाए उस के दोस्त पकड़े हैं ये कह कर कि हम इनकी इबादत नहीं करते मगर इसलिए कि हमें ख़ुदा से नज़्दीक करें अल्लाह उनके (और मोमिनों के दर्मियान उस चीज़ की बाबत जिसमें कि वो मुख़्तलिफ़ फि या (वो जिसमें इख़्तिलाफ़ हो) हैं इन्साफ़ करेगा। शफ़ाअत तीन तरह पर हो सकती है। (सूरह ज़ुमर 39 आयत 3) मसलन बाशाह के सामने कोई मुजरिम खड़ा हो और वज़ीर उस की शफ़ाअत करे। बादशाह उस के रुत्बे का लिहाज़ कर के मुजरिम को छोड़ दे। उसे शफ़ाअत-उल-वजाहत (रियायती बख़्शिश) कहते हैं। लेकिन ख़ुदा की निस्बत ये गुमान करना कि उस के सिवा कोई ऐसा रुत्बे वाला है जिसके कहने से गुनाहगार को माफ़ कर दे, शिर्क है। दूसरा मलिका या शहज़ादे मुजरिम की शफ़ाअत करें। बादशाह उनकी मुहब्बत के सबब से उसे माफ़ कर दे। उसे शफ़ाअत-उल-मुहब्बत कहते हैं। लेकिन ख़ुदा की निस्बत ये समझना कि उसे किसी से ये मुहब्बत है कि उसने इस के सबब से गुनाहगार को छोड़ दिया, महबूब को इस की क़ुदरत में शरीक करता है और ये शिर्क है। क्योंकि ख़ुदा की अदालत में ऐसी क़ुदरत ग़ैर-मुम्किन है। चाहे ख़ुदा अपने फ़ज़्ल से मक़्बूल बंदों को हबीब (बमाअनी महबूब) और ख़लील (दोस्त) वग़ैरह ख़िताब दे लेकिन बंदा आख़िर बंदा है। गुलामी की हदूद से क़दम बाहर नहीं ले जा सकता। ना बंदगी के मुक़ाम से तजावुज़ कर सकता है। तीसरा बादशाह ख़ुद मुजरिम को

बख़्शना चाहता है। लेकिन उसे ये अंदेशा है कि अगर मैंने बख़्श दिया तो मेरे क़ानून में फ़र्क़ आ जाएगा। वज़ीर बादशाह की नीयत पा कर शफ़ाअत करने लगता है। इस क़िस्म की शफ़ाअत जायज़ है। उसे शफ़ाअत-बिल-इज़्न (इजाज़त पा कर शफाअत करने) कहते हैं और इसी क़िस्म की शफ़ाअत की क़ुदरत हिसाब के रोज़ मुहम्मद अरबी को होगी। वहाबियों के नज़्दीक मुहम्मद अरबी को बाफ़अल ये क़ुदरत नहीं है। अगरचे और मुसलमानों का अक़ीदा बिलफ़अल यही है। वहाबी इस सबब से और मुसलमानों को मुशरिक बह शिर्क तसर्रुफ़ कहते हैं और अपने अक़ाइद की ताईद में उन आयात को दस्तावेज़ गरदानते हैं। इस के सामने बजुज़ उस के इज़्न के और कौन शफ़ाअत कर सकता है। सूरह बक़रह 256 में आया है कि कह दे कि जमीअ शफ़ाअत ख़ुदा की है और आस्मान और ज़मीन सब उसी का है। (सूरह ज़ुमर 39:46) वहाबी ये कहते हैं कि जहां कहीं क़ुरआन या अहादीस में किसी नबी या रसूल की निस्बत शफ़ाअत का कुछ ज़िक्र आया है वो इसी क़िस्म की शफ़ाअत मुराद है।

तीसरी क़िस्म शिर्क की ये है कि सिवाए ख़ुदा के दूसरे की बंदगी के इरादे से सज्दा करना। इस में औलिया के मज़ारों का तवाफ़ भी दाख़िल है। सज्दा करना, सर झुकाना, हाथ बांध कर खड़ा होना, किसी के नाम पर रुपया सर्फ़ करना या किसी दिली की ताज़ीम के वास्ते रोज़ा रखना या हाजी बन कर किसी वली की ज़यारत को जाना और रास्ते में उस का नाम लेकर पुकारना, शिर्क-फ़ील-इबादत है। क़ब्रों पर ग़लाफ़ चढ़ाना या दुआ माँगना या किसी पत्थर को बोसा देना किसी मज़ार की दीवार से मुँह या सीना रगड़ना, अला हाज़ा-उल-क़यास जायज़ नहीं। इस में बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर जाने की जिसका आम रिवाज हो गया था और बाअज़ और रस्मों के मुताल्लिक़ हज मक्का के सख़्त मज़म्मत है। कुल रस्में जिनकी इस जगह मज़म्मत है शिर्क-फ़ील-इबादत में दाख़िल हैं।

चौथा शिर्क रसूम तुहमात का जारी रखना जैसे इस्तिख़ारा (तस्बीह के दानों पर पढ़ के हिदायत तलब करनी) शुगून नेक या बद को मानना और दिनों को सअद या नहस जानना इस क़िस्म के नाम रखना जैसे अब्दुल नबी

(नबी का ग़ुलाम) और अला हाज़ा-उल-क़यास। फ़िल-हक़ीक़त ऐसे रसूम की मज़म्मत करने से और उन्हें शिर्क गर्दानने से वहाबियों को और मुसलमानों से रोज़मर्रा लड़ना पड़ता है क्योंकि दुनिया में मुसलमानों से ज़्यादा तावीज़, गंडों और नुजूमियों की मानने वाली कोई क़ौम नहीं है। पहली और चौथी यानी शिर्क-फील-इल्म और शिर्क-फ़ील-इबादत में ये फ़र्क़ है कि अव्वल-उल-ज़िक्र में ग़ैब दानी का अक़ीदा होता है और दूसरी में अमल करने की आदत होती है। नबी की या अली की या इमामों की क़सम खाना ऐसी ताज़ीम है जो सिर्फ ख़ुदा को सज़ावार है। इस वास्ते ये शिर्क-फ़ील-अदब है।

दूसरे आम अक़ीदा जिससे वहाबी इन्कार करते हैं ये हैं कि और मुसलमानों के नज़्दीक हज करने, नमाज़, विर्द, फ़ातिहा, क़ुरआन पढ़ने का, मुराक़बा करने का और ख़ैरात देने का और कार-ए-ख़ैर का सवाब मुर्दों का पहुंच सकता है और वहाबियों के नज़्दीक इन कामों का सवाब मुतलक़ नहीं पहुंचता है। वहाबियों के अक़ाइद मज़ुकूर-उल-सदर की तफ़्सील से साबित है कि वो लोग तौहीद को सख़्त पकड़ते हैं। कलिमा ला-इलाहा इल-लल्लाह (सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद दूसरा नहीं) नफ़्स हक़ीक़त है। बईं-हमा मुसलमान ख़ुदा की हक़ीक़त से बहुत दूर पड़े हैं। ख़ुदा की अबवीयत के इन्कार करने से उन्होंने एक ऐसा माबूद क़रार दे दिया है जो करम व मुहब्बत में कम और क़हर व ग़ज़ब में ज़्यादा है। सब काम अपनी ख़ुशी से करने वाला और कुल तरीक़ों में बेपर्वा और बेनयाज़ है। मुसलमान ख़ुदा का बेटा होने से ग़ुलाम बनना पसंद करता है। वहाबी इन सब बातों पर जो मुसलमान के पहले रुक्न ईमान से निकलते हैं, बहुत ज़ोर देते हैं। मैं इस बारे में पालगेरलो साहब को तर्जीह देता हूँ क्योंकि वो वहाबियों से ख़ूब वाक़िफ़ हैं और उनकी निस्बत तास्सुब का गुमान भी नहीं हो सकता है। जो इबारत उनकी बयान की है, वो भी ज़रा तवील है। लेकिन इस का देखना फ़ायदे से ख़ाली ना होगा। बल्कि दर-हक़ीक़त इस कुल मज़्मून को पढ़ना चाहीए जिसको हमने नक़्ल किया है। वो इबारत ये है :-

सिवाए ख़ुदा के कोई ख़ुदा नहीं है यानी बजुज़ ख़ुदा के कोई दूसरा माबूद बंदगी के लायक़ नहीं। अरबी में इस के मअनी ब तहक़ीक़ इसी क़द्र हैं लेकिन मुसलमान इस से और बातें भी मुराद लेते हैं। उनका मक़्सूद ना सिर्फ

इस से इस अम्र का इन्कार है कि ख़ुदा तआला की ज़ात या तशख़ीस में कस्रत और जमईयत को मुतलक़ दख़ल नहीं और ना सिर्फ इस बात का इस्तिक़रार है कि वो जो ना वालिद है, ना मौलूद है, उस की ज़ात-ए-पाक मुजर्रिद व मुतलक वहदत है। बल्कि अल्फ़ाज़ मज़्कूर से अरबी में और अरबों में इलावा मअनी मस्बूक ज़िक्र (जिसका साबिक़ में ज़िक्र आ चुका है।) के ये मुराद भी होती है कि ख़ुदा की ज़ात बुज़ुर्ग और बरतर, सारे जहान की ख़ुद-मुख़्तार, मह्ज़ और क़ादिर मह्ज़ और फ़ाइल मह्ज़ है। बाक़ी मुम्किनात आम इस से कि वो रूह हो या जिस्म अक़्ल हैवानी या इन्सानी हिक्मत से हो या अख़्लाक़ से तमाम हरकअत-ओ-सकनात अफ़आल व इरादा, क़ाबिलीयत और इस्तिदाद (सलाहियत) में उस की क़ुदरत की महल है।

पस इस छोटे से जुम्ले में इस सारे मज़्हब का ख़ुलासा है जिसे इस सबब से कि कोई बेहतर नाम मुझे नहीं मिलता हयागर हमा औसत कहा जाये तो ग़ैर-मुनासिब ना होगा। हर फ़ेअल में जो उस की मुतलक़ क़ुदरत और निशान हाज़िर व नाज़िर से मुताल्लिक़ हो, मह्ज़ अकेला है। उस की क़ुदरत किसी क़ायदे या क़ानून या हद के मह्कूम नहीं। वो अपनी मर्ज़ी से जो चाहता है सो करता है। उस की क़ुदरत में कोई शरीक हो तो नहीं सकता जो क़ुदरत और फ़ेअल बज़ाहिर इस से मालूम होता है, वो सब उसी का है। उस की ख़ुशी भी है कि उस की मख़्लूक़ हमेशा उस के सामने अपनी अबदीयत का इज़्हार और उस की उलूहियत का और इलोहियत का इक़रार करती है और उस की बुलंदी और इज़्ज़त से कुछ किसी को नहीं पहुंचता है। उसे सिवाए अपनी मर्ज़ी और हुक्म के कुछ सरोकार नहीं। ना उस का कोई बेटा है, ना मुसाहब है, ना मुशीर है, ना अपनी ज़ात से किसी चीज़ का मुहताज है और ना उसे अपनी मख़्लूक़ की कुछ पर्वा है। यही सबब है कि अपनी शान बेनियाज़ी से जो चाहता है, सो करता है पालगीर लू साहब की (किताब दरबारा अरब जिल्द अव्वल, सफ़ा 369)

पालगीर लू साहब के नज़्दीक ख़ुदा की माबूदियत की निस्बत ऐसा ख़्याल मकरूह और ख़िलाफ़ नेचर है। लेकिन वो ये दावा करता है कि क़ुरआन के मुसन्निफ़ के ज़हन व तबीयत का सही आईना है। मुहम्मद अरबी

के अक़ाइद दर-हक़ीक़त ऐसे थे और सही मोअतबर अहादीस व रिवायत और आलिम मुफ़स्सिरों की तफ़्सीरों से ऐसा ही साबित होता है। बहरनहज इस में शक नहीं कि पालगीर लू साहब में दो ज़रूरी औसाफ़ इस्लाम की बातें बयान करने के वास्ते मौजूद थे। एक तो ये कि वो अरबी ज़बान से ख़ूब वाक़िफ़ थे। दूसरा एन उन लोगों से राह-ओ-रस्म रखते थे जहां कि मेरा तजुर्बा पहुंचता है। इस की रू से मैं यही कहता हूँ कि पालगीर लू साहब के बयान से मुख़ालिफ़त करने की मुझे कोई वजह नहीं मालूम होती है।

अक्सर ऐसा होता है कि बाअज़ आदमी इस क़द्र अच्छे होते हैं कि इतना अच्छा उनका दीन नहीं होता बल्कि ख़ुद नबी भी हमेशा एक हाल पर नहीं रहते थे। इस्लाम की बाअज़ बातें अच्छी भी हैं। लेकिन कुल का नफ़्स व मतलब वही है जो ऊपर मज़्कूर हुआ जिससे कोई ऐसी राह नहीं निकल सकती है जो ज़माने ब ज़माना नेकी की तरक़्क़ी का मूजिब हो। अरबों में एक कहावत है कि "जैसा माबूद वैसा ही आबिद" (पालगीर लू साहब की किताब जिल्द अव्वल, सफ़ा 372)

पस पहले अक़ाइद की तरफ़ मुसलमानों की बाज़गश्त जिससे बाज़ों को तुर्की की इस्लाह की उम्मीद पड़ती थी। सिर्फ यही है कि उनकी तरक़्क़ी को रोकना और इसी हालत में छोड़ देना क्योंकि इस्लाम की ज़ात ऐसी है कि इस में तरक़्क़ी मुम्किन नहीं और इसी वास्ते वज़ा हुआ कि एक हाल पर रहे। अपने ख़ुदा की मानिंद बे-समर और अव्वल रुक्न ईमान की मानिंद बेजान और वो सब लवाज़म जो हक़ीक़ी ज़िंदगी हैं, उनके वास्ते महज़ ग़ैर मुकतफ़ी हैं। क्योंकि हक़ीक़ी ज़िंदगी दर-हक़ीक़त मुहब्बत, रिफ़ाक़त और तरक़्क़ी का नाम है। इन सबसे क़ुरआन का ख़ुदा मुअर्रा है। कुल तरक़्क़ी, ईजाद और तग़य्युर इस से ममनू है।

मुहम्मद इब्ने अब्दुल वहाब ज़हन के रसा और तबीयत के ज़की थे। उन्होंने हज़ार बरस की तारीकी के बाद ऐसी आँख से जो उक़ाब की मानिंद दूरबीन थी, ये देखा कि मुसलमानों ने दीन में बहुत सी बातें बढ़ा दी हैं। ताअलीम की बे-बहा नेअमत उसे हासिल थी और ये जान सकता था कि तग़य्युर (यानी बिद्दत) तरक़्क़ी इस्लाम के मुख़ालिफ़ है। ये तहक़ीक़ अलबत्ता उस की लियाक़त की दलील थी। लेकिन उस की क़ाबिलीयत और इल्म का

नतीजा क्या ही अफ़्सोस के लायक़ था यानी अपने दीन-ओ-मिल्लत का मतबअ हो कर तरक़्क़ी की कुल उम्मीदों को रोकना और इस्लाम के मंशा को पूरा करना चाहता था। इस में शक नहीं कि जो कुछ अच्छे मुसलमानों को करना चाहीए था वही उसने किया। लेकिन उस के इस काम से इस्लाम की तरक़्क़ी की उम्मीद रखनी ऐसी बात है जैसे कोई जो इस मज़्हब से ख़ूब वाक़िफ़ है कभी यक़ीन नहीं करेगा।

पस ख़ुलासा वहाबियों के अक़ाइद का ये है कि सिवाए उनके और सब मुसलमान मुशरिक हैं। इत्तिबा सुन्नत नब्वी की बड़ी ताकीद करते हैं। ज़ियारत को तोड़ते हैं लेकिन मक्का के हज्र अस्वद के वास्ते सफ़र हज के फ़र्ज़ होने पर इसरार करते हैं। तस्बीह का इस्तिमाल उनके यहां गुनाह है लेकिन उंगलीयों पर ख़ुदा के निनान्वें नाम गिनना बड़ा सवाब है। वहाबीयत से इन्सान के तौर व तरीक़ में सख़्ती और बे तहज़ीबी आ जाती है। सिवाए मामारी के और सब नक़्क़ाशी, संग तराशी और फ़न मौसीक़ी की तहसील उनके यहां नाजायज़ है। इस्माईल ने एक हदीस मोअतबर और अपने मतलब की मोइद समझ कर नक़्ल की है। वो ये है कि :-

मैंने एक शतरंज ख़रीदी जिस पर कुछ तस्वीरें बनी थीं। नबी दरवाज़े में आकर खड़े हो रहे और चेहरे से मलालत के आसार ज़ाहिर होते थे। ऐ अल्लाह के रसूल (तौबा करती हूँ मैं ख़ुदा की और उस के सामने) मुझसे क्या क़सूर सरज़द हुआ जो आप अंदर नहीं दाख़िल होते। तब आपने फ़रमाया कि ये शतरंज कैसा है। मैंने जवाब दिया कि ये भी आपके बैठने और आराम करने को ख़रीदा है। इस पर रसूल अल्लाह ने फ़रमाया कि क़ियामत के दिन ख़ुदा तआला तस्वीरों के बनाने वाले से कहेगा कि इस में जान डाल और वो ना कर सकेगा। फिर उसे सज़ा देगा। जिस घर में तस्वीरें होती हैं उस में रहमत का फ़रिश्ता नहीं आता है।

एक हदीस इब्ने अब्बास से मन्क़ूल है। उस का ये मतलब है कि नबी अलैहिस्सलाम मुसव्विरों को क़ातिलों के माँ और बाप का ख़ून करने वालों के बराबर बताते थे। वहाबी इन सब बातों को पसंद (नहीं) करते हैं। पस ऐसे मुफ़ीद और मुफ़र्रेह फनों के ममनू क़रार देने से वहाबी (अपने) आपको बाक़ायदा रियाकार बनाना चाहते हैं। बजुज़ तबईन मिल्लत के और सभों के

दिलों में उनके ऐसे अक़ाइद की तहक़ीर और नफ़रत बढ़ जाएगी और जहां कहीं उस का क़ाबू हो सकता तल्वार के ज़ोर से अपने अक़ाइद को मनवाता।

वहाबियों का मज़्हब भी दर हक़ीक़त एक तरह की इस्लाह है और इस्लाम की हालत दर्याफ़्त करने से मालूम होता है कि और तरफ़ों में इस्लाह की कोशिशें हुईं और हमेशा ऐसी कोशिशें होती रहेंगी। लेकिन जब तक क़ुरआन-ओ-सुन्नत से इस दुनिया के मुआमलात की इस्लाह हुआ करेगी, तब तक नई रोशनी और तहज़ीब की तरक़्क़ी ग़ैर मुम्किन है। पस इस्लाम की ये तासीर जो तरक़्क़ी की मानेअ (रुकावट) है ईसाई को अपने दीन के फैलाने में इस से बड़ी दिक्कतें पेश आती हैं। इस्लाम का एक हाल पर रहना ही बहुत से मुल्कों की बर्बादी का मूजिब है। इस से ताल्लुक़ रखना ऐसा है जैसे ज़िंदा का ताल्लुक़ मुर्दा से और जैसा कि बाअज़ लोग कहते हैं कि इस्लाम दीन ईस्वी की बहन है, वो सरासर ऐसी नादानी है जिनकी नादानी में कुछ उज़्र की गुंजाइश नहीं हो सकती और ये ज़ाहिर है कि सब मुसलमान यकदिल और मुत्तफ़िक़-उल-मज़्हब नहीं। दूसरे[23] बाब में ये साबित करना चाहते हैं कि इस्लाम कोई सीधा मज़्हब नहीं बल्कि इस के उसूल निहायत दक़ीक़ और पेच दर पेच हैं।

23 एक किताब दरबार रुम में सल्तनत के एक होशयार मुसन्निफ़ मिस्टर फ़िनली ने जो तरफ़-दारी से ख़ाली ना थे बिल-उमूम ये दावा किया है कि इस से ज़्यादा और कोई बात धोके की नहीं कि मसीही कलीसिया को मुत्तफ़िक़ समझें। मसीही कलीसिया की निस्बत ये बात धोके की हो या ना हो लेकिन इस का मैं दावा कर सकता हूँ कि इस्लाम पर ये बात बख़ूबी सादिक़ आती है। दुनिया के किसी हिस्से में ऐसा पोशीदा तफ़रक़ा, इख़्तिलाफ़ और बद-एतिक़ादी नहीं है जैसे कि उन मुल्कों में है जहां कि सरसरी तौर पर देखने वाले को निहायत इत्तिफ़ाक़ और यकसाँ अक़ीदा क़ुरआन पर उस के मुसन्निफ़ पर मालूम है। (पालगेरलो साहब की किताब दरबारा अरब जिल्द अव्वल, सफ़ा10)

ज़मीमा बाब सोम

दरबाब तोहब्

एशियाटिक सोसाइटी की किताब में मिर्ज़ा मुहम्मद अली ख़ान के बहरी सफ़र का अजीब हाल छपा है। मिर्ज़ा मौसूफ़ ईरान की तरफ़ से कुछ अरसे तक पार्स (दार-उल-सल्तनत फ़्रांस) में सफ़ीर रहे थे। मिर्ज़ा साहब लिखते हैं कि जब मैं फ़ारस से हिन्दुस्तान को जाता था तो अस्नाए राह में एक वहाबी से इत्तिफ़ाक़ मुलाक़ात का हुआ। जिसके पास एक रिसाला इस फ़िर्क़े के बानी (मौलाना मुहम्मद इस्माईल) की तस्नीफ़ से था। उस शख़्स ने मिर्ज़ा मुहम्मद को रिसाले के नक़्ल करने की इजाज़त दे दी थी। मैं इस का ख़ुलासा इस ज़मीमे में दर्ज करता हूँ। इस किताब में अस्ल इबारत यानी अरबी भी मौजूद थी। मैंने नफ़्स-ए-मतलब अख़ज़ किया है। अरबी की इबारत को छोड़ दिया है। बुत-परस्ती के ख़िलाफ़ वो मज़्मून बहुत दिलचस्प है और वो इस तरह पर है कि "मैं जानता हूँ कि ख़ुदा रहीम है और अबू हनीफा का तरीक़ मिल्लत इब्राहीमी है। जब तू ने ये जान लिया कि ख़ुदा ने अपने बंदों को इसलिए पैदा किया है कि उस की बंदगी करें तो ये भी जानना चाहीए कि बंदगी व इबादत अकेले ख़ुदा को होनी चाहीए। इसी तरह नमाज़ नमाज़ नहीं जब तक कि तहारत उस के साथ ना हो। ख़ुदा तआला ने फ़रमाया है कि मुशरिकों के वास्ते नहीं लायक़ है कि अल्लाह के सज्दों को आबाद करें। हालाँकि अपनी जानों पर साथ कुफ़्र के गवाही देते हैं। ये लोग नापैद हुए, अमल उनके और आग में हमेशा रहने वाले हैं।...." (सूरह 9:17) जो लोग कि सिवाए ख़ुदा के दूसरे की बंदगी इस उम्मीद पर करते हैं कि जो कुछ सिर्फ़ ख़ुदा के इख़्तियार में है वो उनसे हासिल हो, वो मुशरिक हैं और उनकी इबादत रायगां जाएगी। उस शख़्स से ज़्यादा कौन गुमराह है जो ख़ुदा के सिवाए उस चीज़ को पुकारता है जो क़ियामत के दिन तलक उस को जवाब ना दे सकेगी। (सूरह अह्क़ाफ़ 46:4) बल्कि जब क़ियामत का दिन आएगा तो वही लोग उनके दुश्मन हो जाएंगे और उन्हें काफ़िर बना देंगे। इस सबब से कि उन्होंने ग़ैर ख़ुदा की बंदगी की है। और जिनको तुम पुकारते हो सिवाए ख़ुदा के। वो एक खजूर की गुठली के छिलके के भी मालिक नहीं हैं।

अगर तुम उन्हें पुकारो तो वो तुम्हारा पुकारना नहीं सुनेंगे और अगर सुनेंगे तो जवाब तुम्हें नहीं देंगे और क़ियामत के दिन तुम्हारे इस शिर्क को नहीं मानेंगे। (सूरह फातिर 35:14-15) जो कोई या नबी अल्लाह या ऐ इब्ने अब्बास या ऐ अब्दुल क़ादिर जीलानी या किसी और बुज़ुर्ग का नाम लेकर पुकारे और ये उम्मीद रखे कि इन बुज़ुर्गों के कहने से ख़ुदा हमारी मुश्किलें आसान कर देगा वो शख़्स काफ़िर है और क़त्ल करने के क़ाबिल है। उस का माल जो चाहे लूट ले कुछ मुवाख़िज़ा ना होगा।

मुशरिक चार तरह के होते हैं :-

अव्वल वो जिन पर नबी ने जिहाद किया था। ये काफ़िर ख़ुदा को जहान का पैदा करने वाला और तमाम जानदारों का राज़िक़ और दानाई से सब पर हुकूमत करने वाला जानते हैं कि कौन तुम्हें आस्मान और ज़मीन से रिज़्क़ देता है और वो कौन शख़्स सुनने और देखने का मालिक है और कौन शख़्स ज़िंदा को मुर्दा से और मुर्दा को ज़िंदा से निकालता है? और कौन काम की तदबीर करता है, पस अलबत्ता कहेंगे अल्लाह (सूरह यूनुस 10:22) इस क़िस्म के शिर्क का दर्याफ़्त करना मुश्किल है लेकिन उनसे ज़ाहिर में भी ज़लालत के अफ़आल सरज़द होते हैं क्योंकि वो अपनी पसंद के माबूदों से रुजू करते हैं और उन्हीं की बंदगी करते हैं।

दूसरे वो मुशरिक हैं जो कहते हैं कि हम उन्हें इस वास्ते पुकारते हैं कि ख़ुदा से हमारी सिफ़ारिश करें यानी जो कुछ हमें मतलूब है वो ख़ुदा से तलब करते हैं। लेकिन बुज़ुर्गों को सिर्फ वसीला गरदानते हैं। (सूरह यूनुस 10:19)

तीसरे वो मुशरिक जो सिर्फ एक बुत को अपना माबूद क़रार देते हैं या वो लोग हैं जो बहुत से बुतों को छोड़कर सिर्फ एक बुज़ुर्ग या नबी जैसे ईसा या उनकी माँ मर्यम है, मुअतक़िद (अक़ीदतमंद) होते हैं और ये जानते हैं कि मलाइका हमारी हिफ़ाज़त करते हैं। चुनान्चे इस आयत में उनकी मज़म्मत है। (सूरह 17:59) इस जगह से मालूम होता है कि नबी ने बुत परस्तों में और मुशरिकों में कुछ फ़र्क़ नहीं किया है, बल्कि सबको मुशरिक

और काफ़िर बताया है और ख़ुदा के दीन के मज़्बूत करने को उन पर जिहाद किया है।

चौथे वो हैं जो मुसीबत के वक़्त ख़ुदा की बंदगी करते हैं और आसाइश के ज़माने में ग़ैरों से रुजू करते हैं। ये लोग भी मुशरिक हैं मसलन (सूरह 29:65) हमारे ज़माने के मुशरिक और काफ़िर अगलों से भी बदतर हैं। हमारे हम-असर मुशरिक मुसीबत के वक़्त भी ग़ैरों को पुकारते हैं और उनसे इमदाद चाहते हैं। नबी के ज़माने में मुशरिक ऐसे मुल्ज़िम नहीं थे जैसे इस ज़माना के हैं। वो मुसीबत के वक़्त ख़ुदा से रुजू करते थे। ये ऐसे सख़्त हैं कि मुसीबत और आसाइश दोनों हालतों में सिवाए ख़ुदा के अपने दिलों से मदद चाहते हैं और उन्हीं की बंदगी करते हैं।

बाब चहारुम

ईमान के बयान में

मुसलमानों ने ईमान की तारीफ़ इस तरह पर की है कि ज़बान से इक़रार और दिल से तस्दीक़ करना। कहते हैं कि ईमान ख़ौफ़ वर्जा (उम्मीद, ख़्वाहिश) के दर्मियान रहता है और वो दो तरह पर है, ईमान मुजमल और मुफ़स्सिल। ईमान मुजमल ये है :-

''امنتُ باللّٰہ کما ھو با سما بہ وصفا تہ و فبلت جمیع احکامہ''

तर्जुमा : ईमान लाता हूँ ख़ुदा पर जैसा कि वो है और उस के नामों पर और सिफ़तों पर और उस के सब अहकाम को क़ुबूल करता हूँ।

ईमान मुफ़स्सिल ये है :-

''امنت باللّٰہ و ملائکتہ و کتبہ و رسلہ و الیوم والقدر خرہ و شرہ من اللّٰہ تعالیٰ والبعث بعد الموت''

तर्जुमा : ईमान लाता हूँ ख़ुदा पर और उस के फ़रिश्तों पर और उस की किताबों पर और उस के रसूलों पर और आख़िरत के दिन पर और इस बात पर कि नेकी व बदी सब ख़ुदा की तरफ़ से है और इस बात पर कि मौत के बाद जी उठना बरहक़ है।"

यही ईमान मुजमल और मुफ़स्सिल हैं। हर मुसलमान को इस पर ईमान लाना ज़रूर है। ईमान के पुख़्ता करने को और काम भी ज़रूरी हैं यानी :-

(1) कलिमा तय्यब, सिवाए ख़ुदा के कोई दूसरा माबूद बंदगी के लायक़ नहीं और मुहम्मद अरबी ख़ुदा के रसूल हैं।

(2) सलात, यानी हर रोज़ पांचों वक़्त की नमाज़

(3) रोज़ा, तीस दिन के रोज़े रमज़ान के।

(4) ज़कात, यानी ख़ैरात मुईन।

(5) हज (के लिए) मक्का को जाना।

इस बाब में उसूल ईमान का बयान है। अहकाम दीन का बयान दूसरे बाब में होगा।

(1) ख़ुदा

उसूल ईमान से एक अस्ल ये भी है कि ख़ुदा की हस्ती पर, उस की वहदत पर और उस की सब सिफ़तों पर ईमान लाना चाहीए और इसी ईमान के अहकाम में इख़्तिलाफ़ राय वाक़ेअ होने से बहुत से फ़र्क़ हो गए हैं। इस बाब में तरह तरह की बहसें जो पैदा हुई हैं उनसे थोड़ी सी वाक़फ़ीयत हासिल करनी इस्लाम का सही हाल जानने के वास्ते ज़रूरी है। लिहाज़ा एक नबी की मोअतबर किताब रिसाला बर्ख़ीवी से इस मज़्मून की बह्स को शुरू करता हूँ। शर्क़ी उलूम के आलिम मिस्टर गार कुन दी तासे ने इसे ऐसा मोअतबर समझा है कि अपनी किताब दरबाब क़ुरआन में इस रिसाले का तर्जुमा यही नक़्ल किया है। मुहम्मद अल्बर खेवे सिफ़ात के ज़िक्र में फ़रमाते हैं :-

(1) हयात यानी ज़िंदगी है। अकेला ख़ुदाए बरतर परस्तिश के लायक़ है। ना उस का कोई साथी है, ना शरीक है। उस की ज़ात उन ऐबों व नुक़्सों से पाक है जो आदमी में होते हैं। ना उसे किसी ने जना है, ना वो किसी को जनता है। वो किसी को नज़र नहीं आता है। उस की कोई शक्ल-ओ-सूरत और रंग नहीं और ना वो कट सकता है या बट सकता है। उस की हस्ती की कुछ इब्तिदा और इंतिहा नहीं है। वो ग़ैर मुतग़य्यर (बदला हुआ) है। चाहे तमाम आलम को एक दम में नापैद कर दे और ख़ुशी हो तो एक लहज़ा में फिर पैदा कर दे, उसे कुछ मुश्किल नहीं है। मक्खी का पैदा करना, सातों आस्मान का बनाना उस के नज़्दीक सब बराबर है। जो कुछ वाक़ेअ होता है उस से ना उसे कुछ फ़ायदा पहुंचता है, ना नुक़्सान। अगर तमाम काफ़िर ईमान लाएं और परहेज़गार हो जाएं तो उस का कुछ फ़ायदा

नहीं। इसी तरह अगर सब ईमानदार काफ़िर हो जाएं तो उस का नुक़्सान नहीं हो।

(2) इल्म है, वो सब चीज़ों को ख़्वाह ज़ाहिर हों या पोशीदा आस्मान के ऊपर हों या ज़मीन के अंदर ख़ूब जानता है। दरख़्तों की एक एक पति की और गेहूँ के एक एक दाने और रेत के ज़र्रे की गिनती उसे मालूम होती है। जो कुछ गुज़र चुका है और जो कुछ गुज़रने को है, सब उस के इल्म में है। जो कुछ आदमी के दिल में है और जो कुछ उस की ज़बान पर जारी होता है, सब उसे मालूम है। वही अकेला सिवाए उन लोगों के जिन पर उसने ज़ाहिर की हैं, ग़ैब की सब बातें जानता है। सहवों सियान (चूक) और ख़ता व ग़लती से पाक है। उस का इल्म क़दीम है यानी ये इल्म उस की ज़ात के बाद नहीं हासिल हुआ है बल्कि हमेशा से है।

(3) क़ुदरत है, वो क़ादिर-ए-मुतलक़ है, अगर चाहे मुर्दों को जिला दे, पत्थरों को गोयाई दे और दरख़्तों को रफ़्तार की ताक़त दे, आसमानों और ज़मीनों को नापैद कर दे और वैसे ही हज़ारों आस्मान और ज़मीन सोने और चांदी के बिना कर खड़े कर दे। किसी शख़्स को दम-भर में पूरब से पच्छम और पच्छम से पूरब या सातवें आस्मान तक पहुंचा दे। उस की क़ुदरत क़दीम यानी अज़ल से है और अबद तक रहेगी यानी उस की ज़ात के पीछे उस की क़ुदरत है।

(4) इरादा है, जो चाहे कर सकता है और जो कुछ चाहता है वही होता है। वो किसी काम पर मज्बूर नहीं है। हर चीज़ भली या बुरी इस दुनिया में उस की मर्ज़ी से है। मोमिन का ईमान और दीनदार का इत्तिक़ा (परहेज़गारी, तक़्वा) सब उसी की मर्ज़ी से है। अगर वो अपने इरादे को बदल डाले तो कोई मोमिन ईमानदार और कोई दीनदार परहेज़गार ना हो। बे-ईमानों की बेईमानी और शरीरों की बेदीनी सब उसी के इरादे से है। अगर उस का इरादा ना हो तो बेईमानी और बेदीनी नहीं रह सकती है। जो कुछ हम करते हैं सब उसी के इरादे से होता है। जो कुछ उस के इरादे में नहीं है, वो नहीं होता है। अगर कोई पूछे कि ख़ुदा क्यों नहीं चाहता कि सब ईमानदार हो जाएं तो हम ये जवाब देंगे कि उस के इरादों और फ़ेअलों

में हमें दम मारने की मजाल नहीं। जो चाहे करे, ख़ुद-मुख़्तार है। काफ़िरों के के पैदा करने और उनको उसी हालत पर रहने दे। साँपों, बिच्छूओं और सुअरों के बनाने में ख़ुलासा ये है कि कुल बड़े कामों में ख़ुदा की हिक्मत है जिसको वही जानता है। हम पर इस का जानना लाज़िम नहीं। हमें उस का यक़ीन करना ज़रूर है कि ख़ुदा का इरादा क़दीम है, उस की ज़ात के बाद नहीं है।

(5) समा (سمع सुनने वाला) है। वो सब आवाज़ें सुनता है, ख़्वाह नीची हों या ऊंची। वो बुदून (बग़ैर) कानों के सुनता है क्योंकि उस की कोई सिफ़त आदमी की मानिंद नहीं है।

(6) बसर (بصر देखने वाला) है, वो सब चीज़ों को देखता है। ता आंका शब-ए-तारीक में स्याह पत्थर पर काली चियूंटी के क़दम को भी देखता है। फिर भी उस की आदमीयों की सी आँखें हैं।

(7) कलाम है, वो कलाम करता है लेकिन आदमीयों की तरह ज़बान से नहीं। उसने अपने बाअज़ बंदों से बग़ैर वसातत कलाम किया। वो मूसा से हम-कलाम हुआ और मुहम्मद अरबी से शब मेअराज को उसने कलाम किया और बाज़ों से बवसीला जिब्रईल के कलाम करता है और यही मामूली तरीक़ा नबियों को अपने इरादे से मुत्ला`अ (बाख़बर) करने का है। इस से साबित होता है कि क़ुरआन ख़ुदा का कलाम और क़दीम और ग़ैर-मख़्लूक़ है।

इन्हीं हफ़्त (7) सिफ़ात इलाहीया यानी ख़ुदा की सात सिफ़तें कहते हैं। तादाद सिफ़ात में राय का इत्तिफ़ाक़ है जो इल्म इन सिफ़ात की निस्बत इन्सान को हासिल हो सकता है इस की असलीयत व वुसअत में इख़्तिलाफ़ है, मसलन बाअज़ कहते हैं कि अव्वल ख़ुदा का इल्म हासिल करना चाहीए लेकिन इमाम शाफ़ई और मोतज़िला कहते हैं कि पहले वो ख़्याल हासिल करना चाहीए जिससे ख़ुदा का इल्म आए।

ख़ुदा के इल्म के ये मअनी हैं कि जहां तक इन्सान की समझ रसाई करे वहां तक उस के वजूद की और उस की सिफ़ात सुबूती व अददी की हक़ीक़त दर्याफ़्त करे। ख़ुदा की वहदत बमुक़ाबला तादाद के नहीं है बल्कि

मुतलक़ वहदत है। क्योंकि एक जो अदद है वो आदाद में अव्वल है जिसे दूसरा भी लाज़िम है। लेकिन ख़ुदा का कोई दूसरा नहीं है। वो बेहमता है, कोई उस की मानिंद नहीं। वो अकेला है, कोई उस का शरीक नहीं। क्योंकि अगर आस्मान या ज़मीन में ख़ुदा की मिस्ल और भी माबूद होता तो अलबत्ता दोनों बर्बाद हो जाते (सूरह 21:22) ख़ुदा का जिस्म नहीं क्योंकि जिस्म को वहदत लाज़िम है। ख़ुदा इन दोनों से मुबर्रा है। अगर ऐसा ना होता तो उस की ज़ात क़ायम बिल-ग़ैर और मुहताज दूसरे की होती। उस की ज़ात कटने और बटने से पाक है क्योंकि अगर ऐसा होता तो जब तक कुल अजज़ा अत्रकेब नहीं पाते तब तक वो मौजूद ना होता और उस का वजूद मौक़ूफ़ होता, अजज़ा पे यानी ऐसी चीज़ पर जो उस के सिवा है।

उलमा दक़ीक़ जज़ईआत में पड़ने की सख़्त मुमानिअत करते हैं, क्योंकि वो कहते हैं कि जैसे सूरज के सामने नज़र काम नहीं करती है इसी तरह समझ भी ख़ुदा की हक़ीक़त दर्याफ़्त करने से हैरान है। नबी ने फ़रमाया कि माइरफ़नाक हक़ मारफ़नक (ماعرفناک حق معرفنک) **यानी जो हक़ तेरे पहचानने का है वो हमने नहीं पहचाना** और मुसलमानों को ये नसीहत दी कि ख़ुदा की बख़्शिशों को सोचो। उस की हक़ीक़त मत दर्याफ़्त करो। ब-तहक़ीक़ वो तुम्हारी ताक़त से बाहर है। ख़लीफ़ा अबू बक्र ने फ़रमाया है कि उस की मार्फ़त की जुस्तजू में महव हो जाना, ऐन मार्फ़त है और उस की हक़ीक़त की जुस्तजू करना शिर्क है। (शरा अक़ाइद जामी, सफ़ा 27) लेकिन जो लोग मुसलमान के इलाहयात से वाक़िफ़ हैं, उनको मालूम होगा कि नबी के हुक्म की और ख़लीफ़ा के आगाह करने की कुछ परवा ना की यानी ख़ुदा की हक़ीक़त पर राय ज़नी की।

इब्तदाए ज़माने के मुसलमानों ने और अस्हाब ने और ताबईन ने ख़ुदा की ज़ात व सिफ़ात की तहक़ीक़ को जायज़ नहीं रखा। नबी पहचानते थे कि लोगों के हक़ में क्या बेहतर है। उन्होंने नजात की राह साफ़ बता दी और (ख़ुदा की निस्बत) ये ताअलीम दी कि कह ख़ुदा अकेला है, अल्लाह पाक है, ना वो जनता है किसी को ना किसी ने उस को जना है। और उस की मानिंद कोई नहीं है। उलूहियत के इसरार में सिर्फ इसी क़द्र जानना उन्हें काफ़ी था। ख़ुदा की ज़ात इन्सान की समझ से निहायत बरतर है। वही अपने

आपको ख़ूब जानता है। इस वास्ते आदमीयों को अपनी तहक़ीक़ पर एतिमाद ना रखना और नबी के फ़रमाने पर अमल करना चाहीए। जो उम्मत को इस क़द्र अज़ीज़ रखते थे कि उम्मत ख़ुद अपने आपको इस क़द्र अज़ीज़ नहीं रखती थी और जो कुछ उनके हक़ में बेहतर था उसे उनसे ज़्यादा जानती थी। जो कुछ उन्हें मानना और अमल में लाना चाहीए वो सब बता दिया था। ये सच्च है कि अक़्ल को बेकार छोड़ना ना चाहीए। लेकिन ख़ुदा की सिफ़ात में अक़्ल को दख़ल देना हरगिज़ मुनासिब नहीं है।[24]

ये मसअला मुनक़सिम है, उसूल और फ़ुरू (जज़ईआत, ग़ैर अहम उमूर, शाख़ें) पर (जड़ों और शाख़ों पर) उसूल में दाख़िल वो ताअलीम है जो ख़ुदा की निस्बत है और फ़ुरू में वो बातें हैं जो उसूल के मानने से लाज़िम आती हैं। सुन्नी आलिमों का अक़ीदा ये है कि अक़्ल को सिर्फ फ़ुरू में दख़ल देना चाहीए क्योंकि उसूल की बिना (बुनियाद) क़ुरआन व सुन्नत है। इस में अक़्ल को दख़ल देना नहीं चाहीए, सिर्फ अमल करना चाहीए। फ़रुआत में इख़्तिलाफ़ राय वाक़ेअ होने से मुबाहिसों की नौबत उसूल तक पहुंची जिनसे इल्म-ए-कलाम की बिना (बुनियाद) पड़ी। मैं क़ब्ल-अज़ीं बाब तफ़्सीर क़ुरआन में आयात मुहकम और मुतशाबहा (आसान, दक़ीक़) के मअनी का फ़र्क़ बता चुका हूँ। लेकिन ये फ़र्क़ ख़ास इन आयात में है कि आया मुहकमात से हैं या मुतशाबिहात से। इस वास्ते थोड़ी सी तफ़्सील इस की भी ज़रूरी है।

सूरह आले-इमरान आयत 5 के तर्जुमे पर बड़ी बह्स है। **वही है जिसने उतारी तुझ पर किताब इस में बाअज़ आयतें पक्की मुहकम हैं, सो जड़ हैं किताब की और दूसरी हैं कई तरफ़ मिलती। सो जिनके दिल फिरे हुए हैं वो लगते हैं उनके ढब वालियों से। तलाश करते गुमराही और तलाश करते उनकी कुल भानी और उनकी कुल कोई नहीं जानता सिवाए ख़ुदा के और जो मज़्बूत इल्म वाले हैं, सो कहते हैं इस पर हम यक़ीन लाए। सब कुछ हमारे रब की तरफ़ से है और समझाए वही समझते हैं जिनको अक़्ल है।** इस जगह

---

[24] 3, 30 ये जुम्ला मुफ़ीद मतलब है जिसमें क़ुरआनव सुन्नत की निस्बत दख़ल अक़्ल इमत्तीनअ है।

साफ़ बता दिया है कि आयात मुतशाबेह के मअनी सिवाए ख़ुदा के और कोई नहीं है।

ये कि अक़्लमंद आदमी अगरचे उस के मअनी नहीं समझते लेकिन उन सबको यक़ीन जानते हैं। मगर बहुत से उलमा ये समझते हैं कि الاّالـلـہ। पर वक़्फ़ नहीं चाहीए, فـی العلم पर है। तो उनके नज़्दीक इस आयत के मअनी ये होंगे "और उनकी कुल कोई नहीं जानता सिवाए ख़ुदा के और उनके जो मज़्बूत इल्म वाले हैं वो कहते हम यक़ीन लाए इस पर कि सब कुछ, अलीख...वक़्फ़ के ज़रा बदल जाने से जिससे ज़ाहिर है कि मज़्बूत इल्म वाले आयात मुतशाबेह की हक़ीक़त जानते हैं। इस्लाम में इख़्तिलाफ़ मज़ाहिब का पैदा हो गया है। पिछली क़िरअत से उन सब बातों के तहक़ीक़ की सूरत निकलती है जिन्हें अगले मुसलमान अपनी समझ से बाहर जानते हैं।

आग़ाज़ इस्लाम में लोग ये समझते थे कि सिवाए आयात-ए-महकमात और ख़ालिस अख़्बार के और सब आयतें मुतशाबिहात से हैं यानी कुल आयात जिनमें सिफ़ात इलाहीया और वजूद मलाइका और जिनका और ज़हूर दज्जाल का और ज़माना क़ियामत का और उस के आसार का और बिल-उमूम। उन सब बातों का जो इन्सान के रोज़मर्रा के तजुर्बे से बाहर हैं, ज़िक्र है वो सब मुतशाबिहात हैं। लोग यक़ीन जानते थे कि मुतशाबिहात में यही नहीं है कि किसी क़िस्म की बहस उन पर नहीं चाहीए बल्कि उनके मअनी समझने और उन पर अमल करने की कोशिश भी दुरुस्त नहीं है। इब्ने अब्बास एक सहाबी कहते हैं कि आयात-ए-मुतशाबिहात पर यक़ीन लाना ज़रूरी है लेकिन उन पर कारबंद होना ना चाहीए।

इब्ने जबर से एक दफ़ाअ किसी ने क़ुरआन के मअनी लिखने को पूछा। आपने निहायत नाराज़ हो कर कहा कि मेरे आधे धड़ का रह जाना इस से बेहतर है। (इब्ने ख़लीफ़ान जिल्द अव्वल, सफ़ा 565) बीबी आईशा ने कहा कि उन लोगों से परहेज़ करो जो क़ुरआन के मअनी पर बहस करते हैं क्योंकि वो वही लोग हैं जिनकी तरफ़ ख़ुदा ने अपने कलाम में इशारा किया है, जिनके दिल फिरे हुए हैं। पहली क़िरअत को अस्हाब, ताबईन और तबेअ ताबईन और अक्सर मुफ़स्सिरीन ने इख़्तियार किया था। बिलउमूम सुनी और

अज़ रुए शहादत इमाम फ़ख़्र उद्दीन राज़ी की (544-606) फ़िर्क़ा शाफ़ई के लोग भी यही राय रखते हैं। जो लोग इस के मुख़ालिफ़ राय रखते हैं यानी जो वलरसखुन-फ़ील-इल्म (والراسخون فی العلم) पर वाक़िफ़ (واقف) लाज़िम क़रार देते हैं वो मुजाहिद (जिन्हों ने 10 हिजरी हमें क़ज़ा की) और रबी बिन अनस और बाअज़ और मुफ़स्सिरीन हैं। मुतकल्लिमीन[25] बिलउमूम अख़ीर क़िरअत को इख़्तियार करते हैं। (तफ़्सीर फ़ैज़ उल-करीम, सफ़ा 250) और उनकी हुज्जत है।

जिस बात को आदमी जानता ना हो उसे क्योंकर यक़ीन करेगा। मुख़ालिफ़ इस का जवाब ये देते हैं कि इस जगह ख़ुदा ने यही तो तारीफ़ की है कि बग़ैर समझे यक़ीन लाते हैं। इस पर मुतकल्लिमीन ये सवाल करते हैं कि अगर क़ुरआन लोगों की हिदायत और रहनुमाई को नाज़िल हुआ था तो फिर उस की कुल आयात महकमात क्यों नहीं हैं। इस का जवाब ये दिया जाता है कि अरब दो क़िस्म की फ़साहत तस्लीम करते थे। एक तो ये कि अल्फ़ाज़ और ख़यालात को ऐसे साफ़ और सीधे साधे तर्ज़ पर तर्तीब देना कि उस के मअनी फ़ौरन ज़ाहिर हो जाएं। दूसरा ज़बान मजाज़ी में कलाम करना। अगर क़ुरआन में दोनों तर्ज़ ना होते तो (जो) मर्तबा और वक़अत मुद्दई की कि अब है यानी इस की इबारत और मआनी दोनों पुख़्ता और कमाल फ़साहत और बलाग़त रखते हैं, वो वक़अत ना होती। (तफ़्सीर फ़ौज़ा उल-करीम, सफ़ा 250) राय के इस अस्ल इख़्तिलाफ़ को समझ कर सिफ़ात की तरफ़ मुतवज्जा होते हैं। हयात, इल्म, क़ुदरत और इरादा सिफ़ात लाज़िमी हैं क्योंकि इन सिफ़ात के बग़ैर और सिफ़तों का वजूद ग़ैर मुम्किन है। फिर सिफ़ात समाअ (सुनने वाला), बसर (देखने वाला) और नुत्क़ सिफ़ात सुबूती हैं क्योंकि ना होना नुक़्स का मूजिब होता। इसी तरह बाअज़ सिफ़ात

---

25 मुसलमान मुसन्निफ़ों के नज़्दीक मुतकल्लिम में फ़र्क़ है। एक तो मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के लोग) कहलाते हैं। दूसरे मुताख़रीन मुतक़द्दिमीन जिनका इस जगह ज़िक्र है ख़ालिस दीनी बहसों से ताल्लुक़ रखते थे। लेकिन गिरोह मुताख़रीन ने जो मुसलमानों के दर्मियान यूनानी हिक्मत के रिवाज पाने से पैदा हुआ बहुत से मसाइल हिकमिया को इख़्तियार कर लिया और उन मसाइल को अपनी दीन की बातों से मिलाना चाहा। (मुलांजी साहब की किताब हिकमत-ए-यूनान मुरव्वजा अरब, सफ़ा 320)

सल्बियाह (سلبیہ) भी हैं, मसलन ख़ुदा की कोई सूरत नहीं है, ज़मान-ओ-मकान से महदूद नहीं है, कोई उस का शरीक और मिस्ल नहीं है, अला हाज़ा-उल-क़यास। बैठना, उठना, उतरना, मुँह, हाथ, आँख वग़ैरह रखना। ऐसे अफ़आल हैं जो मौजूदात ज़ी जिस्म से ताल्लुक़ रखते हैं। इस वास्ते मुस्तल्ज़िम नुक़्स वहदूस (हदस की जमा, वुज़ू जाना) हैं और अलानिया मुनाक़िस मसअला तंज़िया हैं जिसके मुताबिक़ ख़ुदा तआला फ़ी हदज़ाता किसी तरह अपने मख़्लूक़ के मुमासिल नहीं। अलबत्ता ये एक मुश्किल थी। लेकिन चारों बुज़ुर्ग इमामों का यही हुक्म था कि ऐसे मुआमलात में पड़ना शरीअत के ख़िलाफ़ है क्योंकि इसी क़िस्म की सब बातें मुतशाबिहात से हैं।

इमाम हम्बल और दीनदार क़ुदमा इस्लाम की पैरवी करते थे और ये कहते थे कि हम किताब और सुन्नत पर यक़ीन लाते हैं और तशरीहात की ख़्वाहिश नहीं रखते हैं। हम जानते हैं कि ख़ुदाए तआला को उस की किसी मख़्लूक़ से और किसी मख़्लूक़ को उस से कुछ मुनासबत नहीं हो सकती। (दबिस्ताँ, सफ़ा 218) इमाम शाफ़ई कहते थे कि जो आदमी ऐसे मुआमलात की तफ़्तीश करे चाहीए कि उस की मुशकीं बांध के तशहीर की जाये और ये ऐलान उस के रूबरू दिया जाये कि जिन्हों ने क़ुरआन-ओ-अहादीस को जरह निकालने और मुतकलिमाना बह्स करने के वास्ते छोड़ रखा है, उनकी यही सज़ा है। **इमाम हम्बल कहते हैं कि जो कोई क़ुरआन की इस इबारत को कि मैंने अपने हाथ से पैदा किया है, पढ़ते वक़्त हाथ हिलाए तो उस के हाथ क़ताअ करने चाहिऐं और जो कोई मुहम्मद अरबी की इस हदीस पर कि मोमिन का दिल रहमान की दोनों उंगलीयों के बीच है, उंगली उठाए तो उस की उंगलियां क़लम करनी चाहिऐं।**

जब अल-तिर्मज़ी मुहम्मद अरबी के इस क़ौल को दर्याफ़्त करते थे कि ख़ुदा सबसे नीचे के सातवें आस्मान पर उतरा। उन्होंने कहा था कि उतरना ज़ाहिर है तरीक़ उतरने का मालूम नहीं है। इस पर यक़ीन लाना फ़र्ज़ है और इस की निस्बत कुछ पूछना (या तहक़ीक़ करना) सख़्त बिद्दत है। लेकिन इस क़िस्म की कुल कोशिशें जो बह्स-ओ-तहक़ीक़ के रोके के वास्ते की गईं, बेसूद हुईं और बावजूद सख़्त मुमानिअत के लोग तफ़्तीश से बाज़ है। मोतज़िला सिफ़ातियों के बड़े मुख़ालिफ़ थे। वो सिफ़ात के क़दीमी होने के

मुन्किर थे और कहते थे कि क़दीम होना ख़ुदा की ज़ात वाहिद का ऐन वसफ़ है और बिलफ़र्ज़ अगर तस्लीम कर लें कि कोई सिफ़त क़दीमी है तो (चूँकि सिफ़ात मुतअद्दिद और कसीर हैं) मुतअद्दिद और कसीर वजूदों का क़दीम होना लाज़िम आएगा। उन्हें सिफ़ात समअ व बसर (सुनने देखने) नुत्क़ से भी इन्कार था। क्योंकि ये सब हादिसात से हैं जो ज़ी जिस्म को लाहक़ हासिल होती हैं। ये समझते थे कि सिफ़ात इलाहिया बमंज़िला इख़तिराआत ज़हनी के हैं जो ख़ुदा की ज़ात में कोई हक़ीक़ी वजूद नहीं रखते हैं। मुसलमानों में मोतज़िला बड़े मुहक्क़िक़ यानी आज़ाद राय लोग थे।

इब्तिदा इस फ़िर्क़े की इस तरह हुई। अल-हसन नामी एक मारूफ़ आलिम बसरा की मस्जिद में एक रोज़ बैठे थे। इस मसअला पर बह्स शुरू हुई कि आया कोई मोमिन जो गुनाह कबीरा का मुर्तक़िब हो काफ़िर हो जाता है या नहीं। ख़ारसों ने कहा (सफ़ा 76 देखो) कि हाँ काफ़िर हो जाता है और सीनों ने इस से इन्कार किया और ये कहा कि अगरचे गुनाह का मुर्तक़िब गुनाहगार होता है लेकिन इस सबब से कि उस का अक़ीदा दुरुस्त था, नहीं होता। (इब्ने ख़लीफ़ान जिल्द 3 सफ़ा 343) एक तालिबे इल्म व अस्ल इब्ने अता (जो 80 हिजरी को मदीना में पैदा हुए थे।) उठकर कहने लगे मैं जानता हूँ कि जो मुसलमान गुनाह कबीरा का मुर्तक़िब हो वो ना मोमिन है ना काफ़िर बल्कि दोनों के दर्मियान में है। ये कह कर उसी मस्जिद की किसी और जगह जा बैठा जहां कि उस का दोस्त उमर इब्ने उबीद और बाअज़ और आ के शामिल हो गए और बह्स होने लगी। इसी अस्ना में एक आलिम फ़तहवा नामी दाख़िल मस्जिद हो कर उनकी तरफ़ आया और फ़रीक़ अल-हसन से उन्हें जुदा देखकर कहने लगा कि ये मोतज़िला हैं। अबुल हसन ने उन्हें फ़ौरन अपने मदरिसा से ख़ारिज कर दिया। वासिल ने अपना एक (बामसलक) अलेहदा (अलग) क़ायम किया और उस की वफ़ात के बाद उमर इब्ने उबीद क़ाइम मक़ाम हुआ।

वासिल का ये अक़ीदा था कि मोमिन बावजूद गुनाहगार होने के मुस्तूजिब ऐसी सज़ा का नहीं है जो काफ़िर को होनी चाहीए और इसी तरह मुरातिब सज़ा के बह्स को छेड़ने से इन्सान की जवाबदेही और इख़्तियार मह्ज़ के मसअले पर भी बह्स की राह निकल आई। इस से बहुत जल्द उस

के और दीनदार आलिमों के दर्मियान से मसअला तक़्दीर पर और फिर इल्हाम पर और क़ुरआन की तफ़्सीर और उस के क़दीम होने पर और सिफ़ात इलाहीया पर झगड़ा पैदा हो गया। वासिल के मोअतक़िदों ने हक़ इमामत को मिंजानिब अल्लाह होने से इन्कार किया और ये क़रार दिया कि मोमिनों को इख़्तियार है कि मुत्तफ़िक़ हो कर किसी लायक़ आदमी को ख़्वाह वो नस्ल क़ुरैश से हो या ग़ैर क़ुरैश से अपना इमाम मुक़र्रर करें। उसूल मंतिक़ और मसाइल हिक्मत से अहकाम दीन को नतबीक दी जाती थी। मुश्तहिर आस्ताती की तहरीर के मुताबिक़ मोतज़िला के अक़ाइद इस तरह हैं।

ख़ुदा क़दीम है, उस की ज़ात क़दीम है। इन्हीं वजूद सिफ़ात क़दीमा से (इस तरह पर कि उस की ज़ात से अलेहदा (अलग) हों) इन्कार महज़ है। क्योंकि वो कहते हैं कि इल्म, हयात और क़ुदरत उस की ज़ातियात में से हैं और उस की ज़ात के अजज़ा हैं। उस की ज़ात से जुदा और सिफ़ात क़दीमा नहीं हैं क्योंकि अगर ऐसा हो तो लाज़िम आएगा कि क़दीमी ज़ातें मुतअद्दिद और कसीर हैं। वो दावा करते हैं कि ख़ुदा का इल्म इन्सान की समझ में इसी क़द्र आ सकता है, जैसा कि और किसी चीज़ का इल्म आ सकता है। निगाह जिस्मानी ख़ुदा को नहीं देख सकती है और सिवाए उस की ज़ात हर चीज़ हादिस व फ़ानी है। उनका दावा ये भी है कि अदल इन्सान के सब कामों की जड़ और अस्ल है। उनके नज़्दीक अदल अहकाम अदल से और उन अहकाम के नताइज से सरासर मुनासिब है।

फिर उनका अक़ीदा ये भी है कि अफ़आल इन्सान के वास्ते कोई ऐसा क़ानून या शराअ नहीं है जो हमेशा से हो और हमेशा तक रहे। इल्हाम इलाही जिन पर अफ़आल इन्सान का बंद-ओ-बस्त मौक़ूफ़ है (तरक़्क़ी अक़्ल व ईजाद के नताइज हैं) जिस शरीअत से अवामिर (अहकामे इलाही, शरई हुक्म) और नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) वाअदे और वईद ख़ुदा ने बताए हैं, वो भी बतदरीज हद मुईन को पहुंचे हैं। इस के साथ मोतज़िला ये भी कहते हैं कि जो नेक काम करता है, सवाब पाता है और जो बुरे काम करता है, मुस्तूजिब अज़ाब होता है। ये भी कहते हैं कि कुल इल्म अक़्ल से हासिल होता है और अक़्ल ही से उसे हासिल होना चाहीए। उनके अक़ीदे में नेकी और बदी की तमीज़ अक़्ल ही पर मौक़ूफ़ है और बग़ैर अक़्ल के नेकी

और बदी की तमीज़ ग़ैर मुम्किन है और ख़ुदा की नेअमतों की शुक्रगुज़ारी को भी किसी क़ानून के मुश्तहिर होने से पेशतर ही अक़्ल ने हम पर वाजिब कर दिया है। वो ये भी दावा करते हैं कि इन्सान ख़ुद-मुख़्तार महज़ है। वही ख़ुद फ़ाइल ख़ैर व शर है और इसी के मुताबिक़ बाद को जज़ा या सज़ा पाएगा।

ख़ुलफ़ाए अब्बासिया यानी मामून और मोतसिम और वॉक के अय्याम ख़िलाफ़त में (98 हिजरी 232 हिजरी) शहर बग़दाद में मोतज़िला का बड़ा रसूख़ दरबार में रहा। अहद अब्बासिया में क़दीम अरब की जमाअत बिल्कुल जाती रही और फ़ारसी मुल्क की आला ख़िदमात पर मुम्ताज़ हुए और अरब के मसाइल की जगह फ़ारसियों के मसाइल ने राह पाई। सुन्नी आलिमों को बड़ी ईज़ाएं पहुंचीं। इन ईज़ाओं का हाल बाद अज़ीं लिखा जाएगा। ख़लीफ़ा वासिक़ ने आख़िरुल-अम्र नर्मी इख़्तियार की। एक रोज़ किसी मुसन् (सन रसीदा, बूढ़ा) आदमी को बक़यदन उनके हुज़ूर लाए। क़ैदी ने ये दरख़्वास्त की कि अहमद इब्ने दाऊद मोतज़िली से (जो अदालत मुहक़्क़िक़ का अफ़्सर था) चंद सवाल करने की इजाज़त मिल जाये। चुनान्चे वो दरख़्वास्त मंज़ूर हुई और दोनों के दर्मियान ये गुफ़्तगु हुई। अव्वल, क़ैदी ने कहा कि ऐ अहमद तुम्हारा अक़ीदा किया है। अहमद ने कहा मेरा अक़ीदा ये है कि क़ुरआन मख़्लूक़ है। इस से लाज़िम आता है कि ये मसअला बिलाशुब्हा दीन का जुज़्व लाज़िमी है, क्योंकि दीन को बग़ैर इस के मुकम्मल नहीं कह सकते हैं। अहमद ने कहा अलबत्ता। आया रसूल अल्लाह ने ये बात लोगों को सिखाई है या उन्हें अपनी अक़्ल पर छोड़ दिया है। आया ख़ुदा के रसूल इस मसअले से वाक़िफ़ थे या नहीं, मगर हाँ वाक़िफ़ थे। फिर तुम ऐसे मसअले को जिसके इख़्तियार करने में ख़ुद रसूल अल्लाह ने लोगों को उनकी मर्ज़ी पर छोड़ दिया था, बजुज़ क्यों मनवाते हो। अहमद ने इस का कुछ जवाब नहीं दिया। तो इस बुड्ढे ने वासिक़ की तरफ़ मुतवज्जा हो के अर्ज़ किया कि ऐ अमीर-ऊल-मोमनीन अब मेरी एक बात तो साबित हो गई।

फिर अहमद की तरफ़ मुख़ातब हो के कहा कि ख़ुदा ने फ़रमाया है कि आज के दिन इस दीन को तुम्हारे वास्ते पुख़्ता किया और अपनी नेअमत को तुम पर पूरा किया और मेरी ख़ुशी है कि इस्लाम तुम्हारा दीन हो। (सूरह

5:5), लेकिन तुम्हारे कहने के बमूजब जब तक इस मसअले को इख़्तियार ना करें कि क़ुरआन मख़्लूक़ है, इस्लाम पुख़्ता नहीं होता। तो अब किस का कहना ज़्यादा एतबार के लायक़ है। आया ख़ुदा का जो कहता है कि इस्लाम को तुम्हारे वास्ते पूरा किया यह तुम्हारा जो इस के मुख़ालिफ़ कहते हो। अहमद ने इस का भी कुछ जवाब नहीं दिया। बुड्ढे ने अर्ज़ किया कि ऐ अमीर-ऊल-मोमनीन अब मेरी दूसरी बात भी साबित हो गई। फिर उस बुड्ढे ने अहमद से कहा कि ख़ुदा ने कलाम मजीद में फ़र्माया है, ऐ रसूल जो कुछ तुझ पर तेरे रब की तरफ़ से नाज़िल हुआ है, उसे पहुंचा दे क्योंकि अगर तू ने ऐसा ना किया तो तब्लीग़ रिसालत मुतलक़ ना होगी।" इस के तुम क्या मअनी लेते हो। आया ये मसअला जिसे तुम मोमिनों में रिवाज देना चाहते हो, रसूल ने बताया था या नहीं। अहमद ने कुछ जवाब ना दिया, ख़ामोश ही रहा। तो बुड्ढे ने बादशाह की तरफ़ मुख़ातब हो के अर्ज़ की कि ये मेरी तीसरी दलील है और फिर अहमद की तरफ़ फिर के बोला कि आया नबी को इस मसअले से जिसे तुम फैलाना चाहते हो, बावजूद वाक़िफ़ होने के सुकूत इख़्तियार करने का मन्सब था। अलबत्ता ये उन्हें मन्सब था और आया अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली को भी यही मन्सब था। हाँ उन्हें भी था। इस पर क़ैदी बोला कि ऐ अमीर-ऊल-मोमनीन अगर ख़ुदा उस आज़ादी से जब उसने अपने नबी और अस्हाब को अता की थी, हमें महरूम रखता है तो वो दर-हक़ीक़त ज़ालिम था। ख़लीफ़ा को ये बात पसंद आई और बुड्ढे को फ़ौरन रिहाई दी और उन ईज़ाओं का जो सुन्नीयों को मुद्दत से सहनी पड़ती थीं, ख़ातिमा हो गया और सुन्नत की तक़्लीद से निकलने की कोशिशें भी जाती रहीं।

दूसरे ख़लीफ़ा मुतवक्किल[26] ने जो कि बड़ा जाबिर व ज़ालिम था, पुरानी दीनदारी को फिर रिवाज दिया। उसने फ़त्वा जारी कर दिया कि मसअला मख्लुक़ीयत क़ुरआन का महज़ बातिल था और मसीहीयों, यहूदीयों,

---

26 तमाम मुबाहिसे जो इस ज़माना में वाक़ेअ हुए, उन का मतलब समझने के वास्ते हालात ख़ुलफ़ा से और मुसलमानों के उलूम हिक्मत से किसी क़द्र वाक़िफ़ होना ज़रूरी है। ख़ुलफ़ा के हालात इसबर्न साहब की किताब दुबारा ख़ुलफ़ाए बग़दाद में मुंदरज हैं। मुसलमानों के उलूम हिक्मत की निस्बत इस बाब के आख़िर में मैंने कुछ लिखा है।

शीयों और मोतज़िलों पर बड़ा तशद्दुद इख़्तियार किया। सबसे पहले ये आफ़त अहमद इब्ने दाऊद पर आई। बेदीनी और आज़ादी बिल्कुल दूर हो गई। लेकिन मोतज़िलों का इख़राज कामिल इस ख़लीफ़ा के अह्द में नहीं हुआ, बल्कि चंद मुद्दत के बाद अबू हसन अल-अशअरी के अह्द में हुआ। (270-340) बावजूद ये कि बग़दाद की हुकूमत से मोतज़िलों का इख़राज हो चुका था, लेकिन बस्रा में अब तक बकस्रत रहते थे। वहां एक रोज़ ये वाक़िया हुआ कि एक आलिम मोतज़िला अबू अली अल-जबानी नए शागिर्दों को दर्स दे रहा था कि अल-अशअरी ने उस्ताद से अर्ज़ किया कि तीन भाई थे, जिनमें एक सच्चा मोमिन, सालिह और रास्त बाज़ था। दूसरा काफ़िर, शरीर और गुमराह था और तीसरा नाबालिग़ था। तीनों ने क़ज़ा (वफात) की, तो उनका क्या हाल होगा? अलजबानी ने कहा कि जो भाई नेक था बहिश्त में आला मुक़ाम पाएगा और काफ़िर दोज़ख़ में जाएगा और बच्चा भी नजात पाए हुओं में होगा। अल-अशअरी ने कहा अगर नाबालिग़ अपने नेक भाई की जगह जाना चाहे तो पहुंच सकेगा। अलजबानी ने जवाब दिया कि नहीं। उस से कहा जाएगा कि तेरा भाई इस सबब से इस दर्जे पर पहुंचा कि उसने ख़ुदा की इताअत बहुत की और तू ने ऐसा कोई काम नहीं किया। अल-अशअरी ने कहा अर्ज़ कीजिए कि अगर वो नाबालिग़ कहे कि ये कुछ मेरा क़सूर नहीं था, तू ही ने मुझे ज़िंदा नहीं रखा, ना ऐसा मौक़ा दिया कि तेरी इताअत बजा लाता। अलजबानी ने कहा कि उस वक़्त ख़ुदा ये कहता मुझे मालूम था कि मैं तुझे ज़िंदा रखता त तो तू नाफ़रन होता और दोज़ख़ में जाता। मैंने तेरे हक़ में बेहतर किया।

अल-अशअरी ने कहा फ़र्ज़ कीजिए अगर काफ़िर भाई उस वक़्त ये कहता कि ऐ रब-उल-आलमीन अगर तुझे इस का हाल मालूम होता तो मेरा भी ज़रूर मालूम होगा। तू ने इस के हक़ में बेहतरी की और मेरे हक़ में नहीं की। (इब्ने ख़लीकान जिल्द 2, सफ़ा 669) अलजबानी अगरचे अपने शागिर्द से नाराज़ था, मगर साकित हो गया और अशअरी को यक़ीन हो गया कि मुताज़लों का ये मसअला कि इन्सान मुख़्तार महज़ है, बातिल है। बल्कि ख़ुदा ने बग़ैर सबब के बाज़ों को रहमत के वास्ते और बाज़ों को अज़ाब के वास्ते मख़्सूस किया है। ग़रज़ कि इस मसअले में उस्ताद से

मुख़्तलिफ़ हो कर और बहुत सी बातों में इख़्तिलाफ़ निकालने लगा और बहुत जल्द उसने ये अक़ीदा ज़ाहिर किया कि क़ुरआन मख़्लूक़ नहीं है। ये वाक़ियात यौम जुमा को जामा बस्रा में गुज़रा। मैंबर पर बैठ कर ब-आवाज़-ए-बुलंद पुकारा। जो मुझे जानते हैं सो जानते हैं, लेकिन जो नहीं जानते हैं उनसे ये कहना चाहता हूँ कि मैं इब्ने इस्माईल अल-अशअरी हूँ। मैं क़ुरआन को मख़्लूक़ बताता था और ये अक़ीदा रखता था कि हमारी आँखें ख़ुदा को नहीं देखेंगी और अपनी बुराईयों के फ़ाइल हम आप ही हैं। अब मैंने हक़ की तरफ़ रुजू किया है। इन अक़ाइद को तर्क करता हूँ और मोतज़िलों की शरारत का इज़्हार और इस्तीसाल चाहता हूँ। (इब्ने ख़लकयान की किताब सफ़ा 228) फिर उसने मुतकलिमाना तरीक़े जारी कर के अपना मसलक अलेहदा (अलग) क़ायम किया जो सुन्नीयों से मिलता है। इशारीयों के मसाइल सिफ़ायतों से ज़रा मुख़्तलिफ़ हैं और वह ये हैं :-

(1) ख़ुदा की सिफ़ात उस की ज़ात से जुदा हैं, लेकिन वो ऐसी जुदाई नहीं है जिससे ख़ुदा व मख़्लूक़ के दर्मियान कुछ मुशाबहत या मुनासबत हो सके। वो कहते हैं कि उस की सिफ़ात ना ऐन ज़ात, ना ग़ैर ज़ात हैं। ना उन्हें ख़ुदा की ज़ातियात से कह सकते हैं, ना उस से जुदा तसव्वुर कर सकते हैं यानी किसी चीज़ से उन्हें कुछ मुशाबहत नहीं दी जा सकती है।

(2) ख़ुदा का इरादा वाहिद और क़दीम है, जिससे तमाम चीज़ें ख़ैर-ओ-शर और मुफ़ीद व मुज़िर पैदा होती हैं। जो कुछ इन्सान की तक़्दीर में है, वो सब दुनिया के ज़हूर से क़ब्ल लौह-ए-महफ़ूज़ पर सब्त हो चुका था। यहां तक ये लोग सिफ़ायतों से मुत्तफ़िक़ हैं, लेकिन इसलिए कि इन्सान की जवाबदेही और इख़्तियार में भी फ़र्क़ ना आए। ये कहते हैं कि उसे इरादा इलाही की तहरीक देने की क़ुदरत है, लेकिन इस तहरीक से कोई नई बात जो ख़ुदा के इरादे में ना हो पैदा हो सकती है, क्योंकि अगर ऐसा हो तो उस की हुकूमत व मालिकियत में फ़र्क़ आ जाएगा। वो कहते हैं कि ख़ुदा ने पहले से ये मुक़र्रर कर दिया है कि जब कभी आदमी अच्छा या बुरा काम करने की नीयत करता है तो उसी वक़्त उस नीयत के मुवाफ़िक़ ख़ुदा उस के अस्बाब पैदा कर देता है। पस बज़ाहिर ऐसा मालूम होता है कि इन्सान ने अपने इरादे से किया, हालाँकि फ़िलवाक़ेअ ऐसा नहीं होता है। ऐसे काम को

कसब इस सबब से कहते हैं कि ख़ुदा के ख़ास पैदा होने वाले फ़ेअल से हासिल होता है, लेकिन चूँकि ये काम जलब-ए-मुनफ़अत (नफ़ा हासिल करना) और दफ़ाअ मुज़र्रत के वास्ते बताया गया है। इस वास्ते ख़ुदा की निस्बत उस का इस्तिमाल हो सकता है। अबू बक्र अल-बकानी शागिर्द अल-अशअरी कहता है कि नस इस फ़ेअल का यानी ऐन फ़ेअल ख़ुदा की क़ुदरत से होता है, लेकिन मानना या ना मानना इस फ़ेअल का जैसी बंदगी करना या हरामकारी करना उस के औसाफ़ में से है जो इन्सान के इख़्तियार व क़ुदरत से होता है। इमाम-उल-हरमेन (419-474) ये अक़ीदा रखते थे कि इन्सान के फ़ेअल इस क़ुदरत के सबब से हैं जो ख़ुदा ने आदमी को अता की है। अबू इस्हाक़ अल-असफ़री कहते हैं कि जिस चीज़ से दिल पर असर पहुंचता है या किसी फ़ेअल की रग़बत हुई है, वो ख़ुदा व इन्सान की क़ुदरत का मजमूआ है।

(3) वो कहते हैं कि ख़ुदा का कलाम अज़ली है, लेकिन इस के साथ ये अक़ीदा भी है कि क़ुरआन की क़िरअत जो इस कलाम के इज़्हार के वास्ते इस्तिमाल की जाती है, मख़्लूक़ है। क़िस्सा मुख़्तसर ये है कि इस में :-

(1) वो कलाम क़दीमी है जो ख़ुदा की ज़ात में ज़माने के वजूद से क़ब्ल मौजूद था।

(2) वो कलाम है जो आवाज़ व हुरूफ़ से मुरक्कब है। इस आख़िर-उल-ज़िक्र को वो लोग मख़्लूक़ कहते हैं। ग़रज़ कि अल-अशअरी ने इस से मुन्किर हो के कि इन्सान महज़ अक़्ल से ख़ैर व शर का इल्म हासिल कर सकता है, मोतज़िलों के ख़ास अक़ाइद से आराज़ (मुँह फेरना, रुगिरदानी करना) किया। जो कुछ ख़ुदा ने बताया है आदमी को चाहीए कि बे-हुज्जत उसे क़ुबूल करे। अक़्ल को दख़ल ना दे। उसे कोई मन्सब नहीं है कि अफ़आल इलाहीया को क़वाइद अक़्ली से जो आदमीयों पर मोअस्सर हैं, जांचे। आदमी की अक़्ल नहीं कह सकती कि उक़्बा में नेकी का बदला या बदी पर तअज़ीर होगी। इन्सान को हमेशा ख़ुदा के सामने बंदगी का इज़्हार चाहीए। इस में ये अक़्ल व इल्म नहीं कि हकीम अली-उल-इत्लाक़ की हिक़मतों को आज़माऐ। आदमी नहीं कह सकता कि गुनाहगार की तौबा क़ुबूल होती है या नहीं। ख़ुदा मालिक मुतलक़ है, जो चाहे करे। वो किसी क़ानून या क़ायदे का पाबंद नहीं

है। सिवाए उस के सिफ़ातियों के अक़ाइद में और बहुतेरी जूज़ईयात हैं, जिनकी तफ़्सील फ़ुज़ूल समझ कर क़लम अंदाज़ हूँ।

मुतशाबही वो लोग हैं जो आयात मुतशाबेह का लफ़्ज़ी तर्जुमा करते हैं और ये अक़ीदा रखते हैं कि ख़ुदा के और उस की मख़्लूक़ के दर्मियान एक क़िस्म की मुशाबहत है और ये कि ख़ुदा में इम्कान एसी हरकत का है जो महदूद बिल-मकान हो, मसलन चढ़ना और उतरना ग़ैर सिफ़ात ज़ालिक। इन सिफ़ात को वो लोग सिफ़ात ज़ाहिरी कहते हैं। मुजस्समी वो लोग हैं जो कहते हैं कि ख़ुदा जिस्म रखता है। इनमें बाअज़ उस के जिस्म को महदूद और बाअज़ ग़ैर-महदूद समझते हैं। जबरी वो लोग हैं जो कहते हैं कि इन्सान महज़ बे-इख़्तियार है। ख़ैर व शर जो कुछ इन्सान से सरज़द होता है, वो सब ख़ुदा करता है। पस ये लोग मोतज़िलों के ऐन मुख़ालिफ़ हैं, जिन्हें बमुक़ाबिल जबरियों के क़ुदरिया कहते हैं यानी उन्हें क़द्र से इन्कार महज़ है और कहते हैं कि ख़ैर व शर सब इन्सान की तरफ़ है। ग़रज़ कि इस क़िस्म की और जुज़ईयात हैं, जिनके ज़िक्र की चंदाँ ज़रूरत नहीं है। सुन्नीयों को अशअरी के अक़ाइद से और शीयों को मोतज़िला से मुनासबत है।

सिफ़ात के मुताल्लिक़ अस्मा की बहस भी है जो ख़ुदा के ज़िक्र में इस्तिमाल किए जाते हैं। कुल फ़िर्क़े इस पर मुत्तफ़िक़ हैं कि हई, हकीम, क़दीर, समीअ, बसीर और बोलने वाला ग़ैर ज़ालिक ऐसे अस्मा हैं जिनका इतलाक़ ख़ुदा पर हो सकता है। लेकिन सुन्नीयों का अक़ीदा ये है कि ये अस्मा तो सैफ़ी हैं यानी इनका इस्तिमाल मौक़ूफ़ है हुक्म पर यानी ख़ुदा के इज़्हार वसफ़ में ऐसे किसी नाम का इस्तिमाल उस वक़्त तक जायज़ नहीं है, जब तक कि मुहम्मद अरबी का कोई क़ौल या हुक्म उस के जवाज़ में ना हो। ख़ुदा को शाफ़ी कहना दुरुस्त है, लेकिन तबीब कहना दुरुस्त नहीं है। हालाँकि मआनन दोनों में चंदाँ फ़र्क़ नहीं है। इस का सबब सिर्फ यही है कि तबीब का लफ़्ज़ क़ुरआन या अहादीस में ख़ुदा की निस्बत कहीं नहीं आया है। इस तरह ख़ुदा को आलिम (जानने वाला) कहना जायज़ है, लेकिन या आक़िल (बमाअनी हकीम व दाना) कहना दुरुस्त नहीं है। मोतज़िला कहते हैं कि अगर क़ुरआन या अहादीस में कोई कलिमा किसी सिफ़त की तारीफ़ में आया है तो इस इस्म सिफ़त से जो कलिमा सिफ़त बनेगा, उस का इतलाक़

ख़ुदा पर जायज़ है। अगरचे क़ुरआन व हदीस में बईंही वही कलिमा ना आया हो।

अल-ग़ज़ाली (450-550 हिज्री) में जिनके दलाईल मुदल्लिल ने मशरिक़ी मुल्कों में मुसलमानों के फ़ल्सफे को नापैदा कर दिया था। कहते हैं कि जो असमा-ए-इलाही शराअ में नहीं आए हैं, अगर उनसे ख़ुदा की बुज़ुर्गी ज़ाहिर होती हो तो उनका इस्तिमाल में महज़ इज़्हार वसफ़ के वास्ते कुछ मज़ाइक़ा नहीं है, लेकिन ज़ात की निस्बत हरगिज़ इतलाक़ नहीं कर सकते। चूँकि "ख़ुदा" फ़ारसी ज़बान का लफ़्ज़ है और क़ुरआन व हदीस में कहीं नहीं आया है, इस सबब से इस पर यही एतराज़ वारिद होता है। इस का जवाब ये दिया जाता है कि चूँकि ख़ुदा हम-मअनी वाजिब-उल-वजूद के है, इस वास्ते तावक़्ते के इस्म-ए-ज़ात ना समझा जाये, इस्तिमाल जायज़ है। (शरह अक़ाइद जामी सफ़ा 63) पस आम अक़ीदा ये मालूम होता है कि अस्मा मुरव्वज ज़बान जो हम-मअनी अल्लाह के हैं, उनका इस्तिमाल हो सकता है। बशर्ते के वो नाम काफ़िरों की ज़बान से ना लिए हों, मसलन ईश्वर, परमेश्वर वग़ैरह ज़ालिक जायज़ नहीं। लेकिन जो अस्मा क़ुरआन-ओ-अहादीस से साबित हैं, वो सिवाए लफ़्ज़ अल्लाह के 99 हैं। उन्हें अस्मा अहसन (2) अच्छे नाम कहते हैं, लेकिन इलावा उनके बहुत से और अल्फ़ाज़ हम-मअनी हैं जिनका इस्तिमाल अज़ रुए इज्मा दुरुस्त है, मसलन हन्नान मुरादिफ़ (हम-मअनी) रहीम के और मन्नान बमाअनी मिन्नत नहंदा के। तफ़्सीर बहर में लिखा है कि :-

"ख़ुदा के तीन हज़ार नाम हैं, जिनमें एक हज़ार फ़रिश्तों को और एक हज़ार नबी को मालूम हैं। बाक़ी रहे एक हज़ार, वो इस तरह पर मुनक़सिम हैं कि तीन सौ तौरेत में और तीन सौ ज़बूर में और तीन सौ इंजील में और 99 क़ुरआन में आए हैं और एक अब तक पोशीदा है।"

"और अल्लाह के हैं सब नाम ख़ासे, सो उस को पुकारो वो कह कर और छोड़ो उनको जो कज राह चलते हैं उस के नामों से।" (सूरह आराफ़ 7 आयत 179)

सिफ़ात बारी के इस्बात हक़ीक़त के लिए आयात ज़ेल पेश की जाती हैं :-

(1) **सबूत हयात में :** ये आयतें वारिद हैं। اللّٰهُ لَا إِلٰهَ إِلَّا هُوَ الْحَيُّ الْقَيُّومُ सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद नहीं, ज़िंदा है। हमेशा क़ायम रहने वाला" (सूरह 2:256) وَتَوَكَّلْ عَلَى الْحَيِّ الَّذِي لَا يَمُوتُ और भरोसा रख उस ज़िंदा पर जो नहीं मरता" (सूरह 60:25)

(2) **सबूत इल्म में :** اَلَمْ تَرَ اَنَّ اللّٰہَ یَعْلَمُ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَ مَا فِی الْاَرْضِ क्या तू ने नहीं देखा कि अल्लाह जानता है जो कुछ आसमानों और ज़मीनों में है।" (सूरह अल-मजादला 58:7) وَعِندَهُ مَفَاتِحُ الْغَيْبِ لَا يَعْلَمُهَا إِلَّا هُوَ ،الخ और उस के पास ग़ैब की कुंजियाँ हैं जिन्हें सिवाए उस के और कोई नहीं जानता और जानता है जो कुछ जंगल और दरिया में है।" "और कोई पत्ता ऐसा नहीं गिरता जिसे वो जानता ना हो और कोई दाना नहीं गिरता है अँधेरी ज़मीन में और ना तर और ना कोई ख़ुशक में जो किताब में ना हो।" (सूरह अन्नाम आयत 59)

(3) **सबूत क़ुदरत में :** وَ لَوْ شَآءَ اللّٰہُ لَذَہَبَ بِسَمْعِہِمْ وَ اَبْصَارِہِمْ اِنَّ اللّٰہَ عَلٰی کُلِّ شَیْءٍ قَدِیْر और अगर अल्लाह चाहे उनके कान और आँखें ले जाये। तहक़ीक़ अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है।" (सूरह बक़रह आयत 20) اَلَیْسَ ذٰلِکَ بِقٰدِرٍ عَلٰٓی اَنْ یُّحْیِۦَ الْمَوْتٰی क्या वो इस पर क़ादिर नहीं कि मुर्दे को ज़िंदा करे" (75:40) ख़ुदा हर शैय पर क़ादिर है। (3:159)

(4) **सबूत इरादे में :** فَعَّالٌ لِّمَا يُرِيدُ "करने वाला है जो कुछ चाहे" (सूरह बुरूज आयत 16) "और अगर चाहता अल्लाह अलबत्ता इकट्ठा करता उनको ऊपर हिदायत के" (सूरह अन्आम आयत 35) "पस गुमराह करता है अल्लाह जिसको चाहे और राह दिखाता है जिस को चाहे करता है अल्लाह जो चाहे।" (सूरह अन्आम 3:32)

चूँकि इस सिफ़त को ईमान (मुफ़स्सिल) से जिसमें तक़्दीर का बयान है, ख़ालिस ताल्लुक़ है। इस वास्ते जो कुछ आराए (राय की जमा) मुख़्तलिफ़ उस की निस्बत हैं उनकी तफ़्सील मौक़े पर की जाएगी।

ये चारों सिफ़ात जो क़ुरआन में बासराहत मज़्कूर हैं, उनके वजूद में इख़्तिलाफ़ आराए मुतलक़ नहीं है। अलबत्ता उनकी फ़अलियत और तरीक़ वजूद में इख़्तिलाफ़ है।

अव्वल सिफ़ातियों का पुराना मसअला ये है कि सिफ़ात इलाहीया क़दीम और ऐन ज़ात हैं।

दूसरे मोतज़िलियों के अक़ीदे में ये है कि सिफ़ात क़दीम नहीं हैं।

तीसरे अशअरीयों के नज़्दीक सिफ़ात क़दीम हैं, लेकिन ज़ात से मुग़ाइर हैं।

बाक़ी रही तीन सिफ़ात समअ (सुनने वाला), बसर (देखने वाला) और नुत्क़। सो इनकी निस्बत भी बड़ा इख़्तिलाफ़ है। पहली दो सिफ़तों के वजूद पर क़ुरआन की आयात ज़ेल से इस्तिदलाल करते हैं, إِنَّهُ هُوَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ "तहक़ीक़ वही है सुनता और जानता" (सूरह दुख़ान आयत 5) لَّا تُدْرِكُهُ الْأَبْصَارُ وَهُوَ يُدْرِكُ الْأَبْصَارَ उस को नहीं पा सकती आँखें और वो पा सकता है आँखों को" (सूरह अन्आम आयत 103)

बैठना, उठना वग़ैर ज़ालिक हाथ, मुँह, आँखें अला हाज़ा-उल-क़यास ऐसे अल्फ़ाज़ हैं कि इन के इस्तेमाल के मआनी मुख़्तलिफ़ से (जैसा कि मैं बयान कर चुका हूँ) सिफ़ातियों में मुतअद्दिद फ़रीक़ हो गए हैं। इमाम ग़ज़ाली कहते हैं कि :-

वो अपने तख़्त पर ऐसे तौर से बैठा है जिसे उसने आप ही बयान किया है और वो आप ही इस का मतलब समझता है। उस का बैठना ऐसा है कि कोई इदराक या तअक़्क़ुल नशिस्त व मकान का उस तक नहीं पहुंच सकता है।

ये अक़ीदा अल-अशरीयों का है, लेकिन अशअरीयों के और उनके दर्मियान में जो मुजस्समों की ग़लती में पड़े हैं, एक और फ़िर्क़ा है। मुक़ल्लिदीन इमाम हम्बल कहते हैं कि ये अल्फ़ाज़ उन सिफ़ात पर दलालत करते हैं जिनका इम्कान ख़ुदा की ज़ात में है, मसलन ख़ुदा अपने तख़्त पर बैठा है के ये मअनी हैं कि उस में बैठने की क़ुदरत है। उनका क़ौल है कि हम अल्फ़ाज़ के हक़ीक़ी मअनी क़ायम रखते हैं और मजाज़ी मअनी लेने दुरुस्त नहीं जानते। क्योंकि इबारत के सरीह मअनी से अहितराज़ करना और नए मअनी गढ़ना ऐसा फ़ेअल है कि इस से वही की वक़अत व एतबार में ज़ोफ़ का एहतिमाल है। दूसरा हमारी ये मजाल नहीं कि उस के काम को समझ सकें या समझा सकें। क्योंकि ये लिखा है "और नहीं उस के जोड़ का कोई" (सुरह इख़्लास आयत 112) لیس کمثلہ شے उस की तरह का कोई नहीं है (सुरह शुरा आयत 19) अल्लाह की क़द्र नहीं समझे जैसे उस की क़ुदरत है।" (सुरह हज आयत 73) इस अम्र के सबूत में कि ख़ुदा के रहने की जगह मुईन है, ये हदीस पेश करते हैं कि इब्ने हकम ने जब चाहा कि एक लौंडी को जिसका नाम सोवा था आज़ाद करे। नबी से इस मुआमले में सलाह पूछी। आपने इस लौंडी से बुला कर पूछा "तू जानती है कि ख़ुदा कहाँ है?" उसने कहा कि आस्मान में है। इस पर आपने फ़रमाया ये औरत मोमिना है, उसे आज़ाद करना चाहीए। मुफ़स्सिर कहते हैं कि उस की आज़ादी का बाइस ये नहीं था कि ख़ुदा को एक जगह में रहने वाला जानती थी, बल्कि इस सबब से कि उसने उन अल्फ़ाज़ को लफ़्ज़ी मअनी में इस्तिमाल किया। शीया के नज़्दीक हरकअत सकनात वग़ैरह को ख़ुदा से मंसूब करना, सरासर ग़लती है, क्योंकि ये सिफ़ात मुस्तल्ज़िम जिस्मियत को हैं। उनका ये अक़ीदा भी सुन्नीयों के ख़िलाफ़ है कि ख़ुदा को कभी कोई देख नहीं सकेगा, क्योंकि देखने में वो शेअ आती है जो महदूद हो।

सातवीं सिफ़त कलाम है। इस पर बड़ी बह्स है जो क़ुरआन की असलीयत से मुताल्लिक़ है, क्योंकि कलाम के मअनी मुजर्रिद गोयाई और कलाम के नहीं हैं, बल्कि वही और नीज़ जो तरीक़े तब्लीग़ अहकाम और अख़्बार के हैं, सब कलाम के मफ़्हूम में दाख़िल हैं। इमाम ग़ज़ाली लिखते हैं कि "ख़ुदा तआला कलाम क़दीमी से जो उस की ज़ात में है, बोलता है और

अमरो नही और वाअदे वईद करता है। उस के कलाम को मख़्लूक़ के कलाम से कुछ मुमासिलत नहीं। ना वो मुरक्कब है ऐसी सौत से जो अजसाम के इत्तिसाल और हवा के सदमे से पैदा होती है। ना वो ऐसे हुरूफ़ हैं। जो लबों के वस्ल और ज़बान की हरकत से सरज़द हों। क़ुरआन व तौरेत और इंजील व ज़बूर ऐसी किताबें हैं, जिन्हें ख़ुदा ने अपने रसूलों पर नाज़िल किया है और क़ुरआन दर हक़ीक़त इन क़िरअत से जो किताबों में मुंदरज हैं पढ़ा जाता है और दिलों में रखा जाता है। बईं-हमा इस हैसियत से कि ख़ुदा की ज़ात में मुम्किन उल-तफ़रिक़ वल-तक़्सीम नहीं। हालाँकि दिलों में और काग़ज़ पर मुंतक़िल हो सकता है। इसी तरह मूसा ने भी ख़ुदा का कलाम बिला सौत या हर्फ़ सुना था और नीज़ औलिया अल्लाह भी ख़ुदा की ज़ात को बग़ैर वसासतत किसी शय हादिसा के देखते हैं।

सब सुन्नी मुसलमान आलिम ये अक़ीदा रखते हैं कि ख़ुदा दर-हक़ीक़त कलाम करता है। मोतज़िला को इस से इन्कार है। वो कहते हैं कि ख़ुदा मुतकल्लिम उस माअनी से है कि अल्फ़ाज़ व अस्वात का पैदा करने वाला है। क़ुरआन के क़दीम होने के मुख़ालिफ़ वो लोग ये एतराज़ वारिद करते हैं:-

(1) ये कि (क़ुरआन) ज़बान अरबी में लिखा गया है, नाज़िल हुआ है,
पढ़ा जाता है, सुना जाता है और लिखा जाता है और ये कि मौज़ू मोअजिज़ा का था और मुनक़सिम हिसस पर है और बाअज़ आयात बाअज़ से मंसूख़ हैं।

(2) इस में अख़्बार का बयान बज़मान माज़ी है। अगर क़ुरआन क़दीम होता तो ज़मान इस्तिक़बाल इस्तिमाल किया जाता।

(3) क़ुरआन में अवामिर (हुक्म शरा) व नवाही (नाजायज़,) का ज़िक्र है। पस अगर क़दीमी है तो मामूर कौन थे और नसीहत किसे दी गई थी?

(4) अगर क़दीम से मौजूद है तो चाहीए कि अबद तक रहे और अज़ल से मौजूद हो और जिस तरह कि लोगों पर उस के अहकाम का बजा

लाना बिलफ़अल वाजिब है, ऐसे ही उक़्बा में इन सब अहकाम का बजा लाना और शरीअत के ज़ाहिरी रसूम का क़ायम रखना वाजिब हो।

(5) अगर क़ुरआन क़दीम है तो लाज़िम आएगा कि दो वजूद क़दीम हैं। जिस महल पर ये एतराज़ पेश किए जाते हैं, ईब्तदाअन एतिक़ादियात इस्लाम से उसे चंदाँ ताल्लुक़ ना था। अवाइल में ये महज़ एक राय थी, लेकिन मोतज़िलों की मुख़ालिफ़त में इन सभों ने जो चाहते थे कि दीनदार तसव्वुर किए जाएं, ना सिर्फ क़ुरआन के क़दीम होने का इक़रार किया बल्कि जो कुछ वो हक़ समझते थे, उस की हिफ़ाज़त में जान से भी दरेग़ नहीं किया। मोतज़िलों ने ये दावा कर के कि क़ुरआन वही ग़ैर मत्लू यानी उस का मतलब इल्हामी है, ना कि अल्फ़ाज़। क़ुरआन को नुक्ता-चीनी से ख़ाली ना छोड़ा। सुन्नी मुसलमानों को ये बात बर्दाश्त से बाहर थी। हालाँकि 213 हिजरी में ख़लीफ़ा मामून ने ये फ़त्वा जारी किया था कि जो कोई क़ुरआन के क़दीमी होने का मुद्दई होगा बेदीनी और अल-हाद (बेदीन, मुल्हिद) का मुल्ज़िम होगा। छः बरस बाद उस के इमाम अहमद इब्ने हम्बल को इसी बात पर सख़्त तअज़ीर देकर मुक़य्यद (क़ैद) कर दिया कि उन्होंने ख़लीफ़ा के क़ुबूल हुक्म से रुगिरदानी की थी। जब शाफ़ई के नामी शागिर्द दाल्नबुवी को ख़लीफ़ा के हुक्म से तअज़ीर दी गई तो उसने अपने दिल की पुख़्तगी को एक बरजस्ता दलील बयान की। क़ाहिरा से बग़दाद तक उन्हें ले गए और ये कहा गया कि क़ुरआन के मख़्लूक़ होने का इक़बाल करे और जब उसने इन्कार किया तो बग़दाद में क़ैद कर दिया। जहां कि मौत के दिन तक मुक़य्यद रहे। अलीरबीअ इब्ने सुलेमान हैं! मैंने देखा कि अल-नबवी एक ऊंट पर सवार था। गर्दन में तौक़ चौबें और पांव में बेड़ियाँ थीं। बेड़ियों से तौक़ तक लोहे की एक ज़ंजीर बंधी थी, जिसमें 25 सैर वज़न का एक उड़ाना (बड़ा मोटा थम, सतून) लगा था जिससे जुंबिश नहीं हो सकती थी। जब उसे गिरफ़्तार कर के लिए जाते थे तो ये अल्फ़ाज़ ज़बान से जारी थे "ख़ुदाए क़ादिर ने आलम को कुन से पैदा किया। पस अगर कलिमा कुन (کن) मख़्लूक़ है तो एक मख़्लूक़ ने दूसरी मख़्लूक़ को पैदा किया।" (इब्ने ख़ुलक़ान जिल्द सफ़ा 394)

इस जगह अल-नबवी ने इस आयत की तरफ़ इशारा किया है कि "उस का हुक्म ये है जब चाहे किसी चीज़ को कहे उस को हो, वो हो जाये (यासीन 63:82) जिस तरह अल-नबवी ने उसे पेश किया है, उसी तौर से सुन्नीयों के नज़्दीक क़ुरआन के इस्बात क़दामत की मुस्तहकम दलील है। जब ज़माना बदला तो जो लोग उस के मुख़ालिफ़ राय रखते थे, क़त्ल किए गए। इमाम शाफ़ई ने बग़दाद में एक मग़रिबी आलिम हफ़्स से इसी अम्र ख़ास पर अला-उल-ऐलान मुबाहिसा किया। शाफ़ई ने क़ुरआन की ये आयत नक़्ल कर के कि ख़ुदा ने फ़रमाया "हो जा" और वो हो गया, पूछा कि आया ख़ुदा ने कुल शैय कुन (كن) से नहीं पैदा की? हफ़्स ने कहा कि हाँ। इस पर शाफ़ई ने कहा कि "अच्छा अगर क़ुरआन मख़्लूक़ था तो लफ़्ज़ कुन (كن) तो ज़रूर ही मख़्लूक़ होना चाहीए।" हफ़्स ऐसी सरीह व वाज़ेह दलील से इन्कार ना कर सका। फिर शाफ़ई ने कहा कि "तुम्हारे अक़ीदे के मुवाफ़िक़ कुल अश्या को मख़्लूक़ ने ख़ल्क़ किया है जो बड़ी ग़लती और खुली बेदीनी है।" हफ़्स ने ये सुनकर सुकूत इख़्तियार किया और शाफ़ई की गुफ़्तगु से सामईन ऐसे मुतास्सिर हुए कि हफ़्स को गुमराह और मुर्तद समझ कर क़त्ल किया। पस अशअरीयों के अक़ाइद ने जो सिफ़ात इलाहीया की निस्बत थे इस तरह फिर ग़लबा[27] पाया। मोतज़िलों का ज़ोर घट गया। इस का सबब ज़ाहिर है। ये क़ायदा है कि जो लोग दीन की बातों में अपनी अक़्लों पर फ़ख़्र करते हैं और हिदायत एज़दी से तमत्तो (फ़ायदा करना) नहीं उठाते हैं, उनका अक्सर यही हाल होता है। चुनान्चे उनमें बहुतेरी चुक़ चुक़ करने वाले थे जिन्हें बुतून (राज़, बेद, हाल) से कुछ सरोकार और नूर इलाही से कुछ बहरा ना था।

इस्लाम की सख़्ती से मुख़ालिफ़त पर मज्बूर हो कर अक़्ल को अपना मुर्शिद ख़ास बनाया चाहते थे और जो लोग उनमें आलमी तबा और बुलंद

---

27 बजुज़ बह्स की किताबों के और कहीं मोतज़िला का निशान नहीं था। सो ये किताबें बर्बाद कर दी गईं। इस वास्ते अब कोई निशान इस ख़िलाफ़ ((त) या इखिलाफ?) का जो मोतज़िला और फ़रीक़ इस्लामी के दर्मियान था, बाक़ी नहीं रहा। (आसबरुन साहब की किताब दरबार, ख़ुलफ़ाए बग़दाद, सफ़ा 148)

हिम्मत थे, उनमें क़ुदरत ना थी कि जिस दीन के इत्तिबा का इक़रार करते थे, इस में तसर्रुफ़ व इस्लाह को दख़ल देते। मगर इस में शक नहीं कि एक ज़माने में ये बहुत बड़ी तहरीक थी जिससे हक़ीक़त इस्लाम के बदल जाने का क़ौमी अंदेशा था। तारीख़ इस्लामी में ये ज़माना जो बमंज़िला यादगार इस अम्र के है कि इस्लाम के सख़्त अहकाम की बेड़ियाँ और क़ुयूद जो रिवायत के अज़ दियाद (ज़्यादा होना, कस्रत) वक़अत व एतबार से तबदरिज बढ़ गई थीं, उनके तोड़ने की और उन क़ुयूद से आज़ाद होने की सई की जाती थी। बड़ी तहज़ीब व तरक़्क़ी का ज़माना था। ख़ुलफ़ा का दार-उल-ख़िलाफ़त बग़दाद कारोबार, आबादी और ख़ुश नज़मी में ज़रब-उल-मसल था, लेकिन ये सब तरक़्क़ी बेशतर ख़ानदान फ़ारस से यानी ऑल बरमकी की बदौलत थी जिनमें से एक शख़्स ख़लीफ़ा हारून रशीद का वज़ीर था। हारून की शौहरत उस के हालात ज़ाती के एतबार से महज़ ना दुरुस्त और ग़ैर वाजिब है। ये दुरुस्त है कि वो इल्म का सरपरस्त था और उस की सल्तनत वसीअ थी और बहुत सी फ़त्ह याबियाँ उस के अह्द में हुईं और अरब का उरूज व इक़बाल हद को पहुंच गया था। लेकिन बईं-हमा तुर्श रो, ख़ुद राय, बेरहम हाकिम और बहमा जिहत ऐसे ऐश-ओ-इशरत में गिरफ़्तार कि सख़्त इल्ज़ाम के लायक़ था। शराबखोरी और फ़िस्क़ व फ़ुजूर की गर्म-बाज़ारी थी। लहू व लइब से हमेशा सरोकार था। ये हालत मुसलमानों के उस अह्दे हुकूमत की थी जिसे अगर कमाल उरूज का ज़माना नहीं तो बड़े उरूज का ज़माना ज़रूर समझना चाहीए, लेकिन किसी नेकी का इस्तिक़रार या ख़ूबी का ईजाद जो इस्लाम से हो सकता है। इस के वास्ते ये अह्द भी कमाल मआत्समात से था। ये याद रखना चाहीए कि जो कुछ ख़ूबी या जाह-ओ-जलाल इंसाफ़न इस अह्द से मंसूब हो सकता है, वो दर-हक़ीक़त इस उस असना से ताल्लुक़ रखता है जिसमें बेदीनी और तदहर (अल-हाद, बेदीन) मुल्हिद, बेदीनी को बग़दाद में ख़ास ग़लबा और दीनदारी और ईमानदारी को ज़ोफ़ आम था और उलूम फ़नून और तहज़ीब की तरक़्क़ी उस ज़माने में सुन्नीयों के सबब से या उनके मुवाफ़िक़ नहीं बल्कि मुख़ालिफ़त थी।

(2) मलाइका (फ़रिश्ते)

अल्बर खेवे ने इस की निस्बत इस तरह लिखा है कि हमें इस अम्र का एतराफ़ करना ज़रूरी है कि ख़ुदा के पास फ़रिश्ते हैं जो उस के हुक्म पर चलते हैं और उस से सरकशी नहीं करते। ना खाते हैं, ना पीते हैं, ना मर्द हैं और ना औरत। बाअज़ ख़ुदा के तख़्त के पास रहते हैं। ये उस के पयाम पहुंचाने वाले हैं। हर फ़रिश्ते का काम जुदा है। कुछ ज़मीन पर रहते हैं और कुछ आस्मान पर। बाअज़ खड़े रहते हैं और बाअज़ हमेशा से सर बसज्दा हैं और बाअज़ ख़ुदा की तस्बीह व तहलील में मसरूफ़ हैं। चंद ऐसे हैं कि आदमीयों पर मुसल्लत हैं और उनके पास किताब आमाल रहती है, जिसमें आदमीयों की नेकी व बदी लिखा करते हैं। बाअज़ मलाइका (फ़रिश्ते) तवील-उल-क़ामत और बड़ी क़ुदरत वाले हैं। उन्हीं में से एक जिब्रईल हैं जो एक साअत में आस्मान से ज़मीन पर आ जाते हैं और एक बाज़ू से पहाड़ को उठा हैं।

हमें इज़राईल (फ़रिश्ते) पर ईमान लाना चाहीए जो मरते वक़्त आदमीयों की जान निकालते हैं और इस्राफ़ील पर भी ईमान लाना चाहीए जो सूर मुँह लगाए खड़े हैं और मुंतज़िर हैं कि जिस वक़्त ख़ुदा का हुक्म हो, उसी वक़्त फूंक दें। जब उस का हुक्म होगा तो ऐसी वहशत-नाक आवाज़ से फूंकेंगे कि सब जानदार मर जाऐंगे। (सूरह 29:68-69) यही रोज़ आख़िरत का आग़ाज़ होगा और चालीस बरस तक सब मुर्दे पड़े रहेंगे। फिर ख़ुदा तआला इस्राफ़ील को जिलाएगा और वो दुबारा ऐसा सूर फूंकेंगे कि उस की आवाज़ से सब मुर्दे उट्ठेंगे। (फ़्रांसीसी किताब दरबारा इस्लाम) अलबर खेवी की इस तहरीर में चौथे मुक़र्रब फ़रिश्ते मीकाईल का कुछ ज़िक्र नहीं है। उनका काम ये है कि तमाम मख़्लूक़ात की हाजतों को देखते रहते हैं। मीना (पानी) बरसाते हैं। दरख़्त उगाते हैं और अनाज पैदा करते हैं और जो कुछ आदमीयों, जानवरों और मछलीयों वग़ैरह को ज़रूरत होती है, मुहय्या करते हैं। जिब्रईल की ख़ास ख़िदमत ये है कि नबियों को ख़ुदा के पयाम पहुंचाते हैं। عَلَّمَهُ شَدِيدُ الْقُوَىٰ **सख़्त कुव्वतों वाला।** (सूरह नज्म आयत 5) में अक्सरिन के नज़्दीक उन्हीं की निस्बत आया है। वो ख़ुदा के मुक़र्रब फ़रिश्तों में शुमार किए जाते हैं। एक हदीस का मज़्मून है कि शब मेअराज को नबी ने देखा कि जिब्रईल के 6 सौ बाज़ू थे और उनका क़द इस क़द्र

दराज़ था कि एक शाना से दूसरे शाना तक जितना बाद था, अगर उसे तेज़ परवाज़ परिंदा क़ता करना चाहता तो पाँच सौ बरस दरकार होते। कहते हैं कि तमाम मख़्लूक़ात में 9 हिस्से फ़रिश्ते हैं और एक हिस्सा बाक़ी और मख़्लूक़ है। फ़रिश्ते नूर से बने हैं। जिस फ़रिश्ते का जो मर्तबा है मुक़र्ररी है, बढ़ता घटता नहीं है और जिसे जो मर्तबा खुदा ने दिया है, उसी पर वो ख़ुश है। उन्हें सिवाए ख़ुदा की मार्फ़त व मुहब्बत के और कुछ ख़्वाहिश नहीं। जो कुछ उस का हुक्म होता है, बजा लाते हैं। "और उसी का है जो कोई है आस्मान और ज़मीन में और जो उस के नज़्दीक रहते हैं बड़ाई नहीं करते उस की बंदगी से और नहीं करते काहिली। याद करते हैं रात और दिन, नहीं थकते।" (सूरह अम्बिया आयत 19) "वो सब के सब मासूम हैं गुनाह नहीं करते।" (शरह अक़ाइद जामी सफ़ा 112)

ये सही है कि फ़रिश्ते आदम का पैदा होना नहीं चाहते थे, जिससे एहतिमाल होता है कि उनके ख़ुलूस अक़ीदत में कमी थी और ख़ुदा पर कामिल भरोसा नहीं रखते थे। मगर ये कहा जाता है कि इस से उनका मक़्सूद ख़ुदा की मुख़ालिफ़त ना थी बल्कि अपने दिलों के शकूक रफ़ाअ (दूर) करना चाहते थे, मसलन "जब ख़ुदा ने फ़रिश्तों से कहा कि मुझको बनाना है ज़मीन पर एक नायब। बोले (यानी फ़रिश्ते) क्या तू रखेगा इस में जो शख़्स फ़साद करे वहां और ख़ून बहाए, दर हाल ये कि हम पढ़ते हैं तेरी खूबियां और याद करते हैं तेरी पाक ज़ात को। ख़ुदा ने कहा मुझको मालूम है जो तुम नहीं जानते।" ये सच्च है कि इब्लीस नाफ़रमान था, लेकिन ना-फ़रमानी के बाद फ़रिश्ता भी नहीं रहा। बल्कि जिन्न की क़िस्म से हो गया था।" और जब कहा हमने फ़रिश्तों को सज्दा करो तो सज्दा कर पड़े मगर इब्लीस जिन्न की क़िस्म से था, सो निकल भागा अपने रब के हुक्म से।) (सुरह कहफ़ 18:48) नीज़ देखो (सूरह बक़रह आयत 33) फ़रिश्ते ख़ास मवाक़े पर बसूरत इन्सान ज़ाहिर होते हैं, लेकिन उमूमन नज़र नहीं आते हैं। ये आम अक़ीदा है कि जानवर फ़रिश्तों और भूतों को देखते हैं।

चुनान्चे हदीस में आया है कि :-

मिश्कात शरीफ़, जिल्द दोम, मुख़्तलिफ़ औक़ात की दुआओं का बयान, हदीस 951

وعن أبي هريرة قال : قال رسول الله صلى الله عليه و سلم : " إذا سمعتم صياح الديكة فسلوا الله من فضله فإنها رأت ملكا وإذا سمعتم نهيق الحمار فتعوذوا بالله من الشيطان الرجيم فإنه رأى شيطانا"

तर्जुमा : जब तुम मुर्ग़ को बाँग देते सुनो तो रहमत माँगो। इस सबब से कि जब उसे फ़रिश्ता नज़र आता है तो बाँग देता है और जो गधे को रैंकते सुनो तो लाहौल पढ़ो और नऊज़बिल्लाह कहो, क्योंकि वो भूत को देखकर चिल्लाता है।

फ़रिश्ते आदमीयों के गुनाह भी बख्शवाते हैं :-

(सूरह शूरा 42:3) में आया है "और फ़रिश्ते पाकी बोलते हैं साथ ख़ूबीयों अपने रब की और गुनाह बख्शवाते हैं ज़मीन वालों के।"

बाअज़ फ़रिश्ते बंदों की निगहबानी करते हैं। "इस के वास्ते पहरे वाले जो आगे से और पीछे से ख़ुदा के हुक्म से उस को बचाते हैं।" (रअद 13:12) क्या तुमको किफ़ायत नहीं करता है कि तुम्हारा रब तुमको मदद भेजे तीन हज़ार फ़रिश्तों से जो आस्मान से उतरे हैं।" (आले-इमरान 3:120) वो अपने बंदों पर ग़ालिब है और तुम पर निगहबान भेजता है ता आंका जब पहुंचे तुम में किसी को मौत तो हमारे क़ासिद उस की जान निकाल लेते हैं, क़सूर नहीं करते।" (अनआम 6:61) हदीसों में आया है कि ख़ुदा ने हर आदमी पर दो फ़रिश्ते दिन के और रात के निगहबानी को मामूर किए हैं, एक दाएं जानिब और दूसरा बाएं रहता है। मगर बाअज़ ये कहते हैं कि वो दाँतों में रहते हैं और आदमी की ज़बान उनका क़लम और लुआब दहन उनकी स्याही है। (शरह अक़ाइद जामी, सफ़ा 187) वो

आदमीयों के कामों को देखते भालते रहते हैं और नेकी व बदी जो कुछ होती है, लिख लेते हैं।

उन्हें माकबात यानी पहरे वाले कहते हैं और किरामन कातबीन बुज़ुर्ग लिखने वाले भी उन्हीं का नाम है। क़ुरआन में इनकी तरफ़ इशारा है "आया वो ये समझते हैं कि हम उनका भेद और मश्वरा नहीं जानते, क्यों नहीं, और हमारे भेजे हुए उनके पास लिखते हैं।" (सूरह ज़ख़रफ़ 53 80) आठ फ़रिश्ते ऐसे भी हैं जो ख़ुदा के तख़्त को थामे रहते हैं। "और फ़रिश्ते उस के किनारों पर हैं और उस दिन अपने ऊपर तेरे रब का तख़्त आठ शख़्स उठाएँगे।" (सुरह हाक़्क़ा 69:17) उन्नीस फ़रिश्ते दोज़ख़ पर मुक़र्रर हैं। "इस पर उन्नीस (19) शख़्स मुक़र्रर हैं और हमने बजुज़ फ़रिश्तों के और किसी को दोज़ख़ का निगहबान नहीं मुक़र्रर किया है।" (सूरह मुदस्सिर 74:30) ख़ुदा ने अपने बंदों के वास्ते एक ख़ास इंतिज़ाम किया है, जिससे शैतान अच्छी तरह नहीं बहकाने पाता। जाबिर मग़रिबी लिखते हैं कि :-

शैतान अगरचे और सब सूरतें इख़्तियार कर सकता है, लेकिन ख़ुदा की या किसी फ़रिश्ते की या किसी नबी की सूरत नहीं बन सकता है। वर्ना इन्सान की नजात में बड़ा ख़तरा रहता क्योंकि जब चाहता किसी नबी या बुज़ुर्ग की सूरत बन कर लोगों को गुमराह करता और जब कभी कोई ऐसी सूरत बनना चाहता है तो आस्मान से आग नाज़िल हो कर उसे भगा देती है।

हारूत मारूत का क़िस्सा किसी क़द्र क़ाबिल लिहाज़ है। ख़ुसूसुन इस सबब से कि उस को फ़रिश्तों की बहस मासूमियत से ताल्लुक़ है। जो लोग रसूल-ए-ख़ूदा के मुन्किर हैं, उनके ज़िक्र में क़ुरआन ये ख़बर देता है "और पैरवी करते हैं इल्म की जो पढ़ते थे, शैतान सुलेमान की सल्तनत में और सुलेमान ने कुफ़्र नहीं किया बल्कि शैतानों ने किया और लोगों को सहर (जादू) सिखाते थे और जो कुछ दो फ़रिश्तों हारूत मारूत पर बाबुल में उतरा (वो सिखाते थे) मगर ये दोनों किसी को नहीं सिखाते थे जब तक कि ना कह देते कि हम आज़माईश हैं। सो तू काफ़िर मत हो।" (सुरह अल-बक़रह 2:102) इस मुक़ाम से साफ़ ज़ाहिर है कि फ़रिश्ते सहर (जादू) सिखाते थे, जिसे सब बुरा जानते हैं। मुफ़स्सिर इस मज़्मून पर मुत्तफ़िक़

अलैह नहीं हैं। मगर ये क़िस्सा इस तरह पर है कि जब हनोक नबी के अह्द में फ़रिश्तों ने आदमीयों को बुरे काम करते देखा तो जनाब बारी में अर्ज़ की कि "ऐ रब आदम और उस की औलाद जिसे तू ने ज़मीन पर अपना नायब मुक़र्रर किया है, ना-फ़रमानी करते हैं। ख़ुदा ने इस के जवाब में ये फ़रमाया कि अगर मैं तुमको दुनिया में भेजूँ और शहवत और ग़ुस्सा तुम में डाल दूं तो तुम भी गुनाह करने लगो। फ़रिश्तों ने इस के ख़िलाफ़ गुमान किया तो ख़ुदा ने उनसे कहा कि अच्छा तुम अपने दर्मियान से दो शख़्स चुन लो जो इस इम्तिहान में पूरे उतरें। चुनान्चे उन्होंने ऐसे दो फ़रिश्ते जो इबादत और मुहब्बत इलाही में निहायत मशहूर थे, चुन लिए और ख़ुदा ने उनमें शहवत व ग़ुस्सा डाल कर कहा कि अच्छा जाओ आज तमाम दिन जिधर चाहो ज़मीन की सैर करो, आदमीयों को फ़साद से रोको, शिर्क से बचोगे, ज़िना मत करो, शराब ना पियो और हर शब को इस्म-ए-आज़म पढ़ कर आस्मान को वापिस आ जाया करो। चंद मुद्दत उन्होंने ऐसा ही किया, लेकिन आख़िरकार एक हसीन औरत मुसम्मात ज़ुहरा ने उन्हें बहका दिया। एक रोज़ वो औरत उनके पास जाम-ए-शराब लाई। इस पर एक फ़रिश्ता बोला कि ख़ुदा ने इस के पीने को मना किया है। दूसरे ने कहा कि ख़ुदा ग़फ़ूरुर-रहीम है। चुनान्चे दोनों ने शराब पी कर ज़ुहरा के शौहर को मार डाला और उसे इस्म-ए-आज़म बता दिया और आप सख़्त गुनाह में मुब्तला हो गए। इस के बाद उन्होंने देखा कि इस्म-ए-आज़म भी याद से जाता रहा, जिसके सबब से हसब-ए-मामूल आस्मान पर जाने से मुतअज़्ज़िर (दुशवार, मुश्किल) रहे। ये कैफ़ीयत देखकर बहुत घबराए और हनोक से शफ़ाअत के मुस्तदई हुए। नबी ने जनाब बारी में अर्ज़ की तो ये हुक्म हुआ कि उन्हें इतना इख़्तियार दिया जाता है कि चाहें दुनिया में अज़ाब सह लें, चाहें उक़्बा (आखिरत) पर रखें। उन्होंने आख़िरत के अज़ाब से दुनिया की तअज़ीर को ग़नीमत जाना और जब ही से चाह-ए-बाबुल[28] में उल्टे लटक रहे हैं। बाअज़ कहते हैं कि फ़रिश्तों ने आकर आग के दुर्रे (कोड़े) लगाए और ये कि उनके ख़ुशक लबों के ऐन ऊपर से एक ताज़ा चशमा निकला है जो हमेशा जारी रहता है। वो

---

28 बाबुल (इराक़) का एक बहुत पुराना कुँआं जो बग़दाद से जुनूब की तरफ़ तक़रीबन पचपन मील के फ़ासले पर है। कहते हैं कि इस में दो फ़रिश्ते "हारूत और मारूत उल्टे लटक हुए हैं।"

औरत इस्म-ए-आज़म के ज़ोर से तारा हो गई। बाअज़ कहते हैं कि शहाब साक़िब बन गई थी, जिसका अब वजूद नहीं रहा। बाअज़ कहते हैं कि ज़ुहरा उसी को कहते हैं। अलबत्ता ये सही है कि क़ाज़ी ईयाज़ और इमाम फ़ख़्रउद्दीन राज़ी (544-606 हिज्री), क़ाज़ी नासिर उद्दीन बैज़ावी (620-691 हिज्री) और अक्सर मुतकल्लिमीन इस क़िस्त्र की सेहत से इन्कार करते हैं और कहते हैं कि सब फ़रिश्ते गुनाह से पाक हैं। लेकिन ये ज़ाहिर है कि इस से वो मुश्किल जो ख़ुद क़ुरआन से हारूत मारूत की निस्बत पैदा होती है, दफ़ाअ नहीं हो सकती। वो कहते हैं कि जो शख़्स ख़ुद ऐसे अज़ाब में मुब्तला, हो वो क्या सहर (जादू) सिखाएगा। दूसरे आदमीयों को ऐसी ख़ौफ़नाक जगह पर जाने की जुर्रत कब होगी और औरत की निस्बत कुल क़िस्से को सरासर लगू जानते हैं। ना सिर्फ इस सबब से कि वो सितारा जिसका नाम ज़ुहरा है, ज़मान आदम से अव्वल पैदा हुआ था, बल्कि इस सबब से कि ये अम्र खिलाफ-ए-क़ियास है कि जो शख़्स ऐसा अशद गुनाहगार और शरीर हो वो ऐसा मर ना पाए कि हमेशा को आस्मान का मुनव्वर तारा हो जाये। मगर चूँकि वो मुफ़स्सिर थे, इस मुश्किल का हल करना उन पर लाज़िम था, इस वास्ते वो इस तरह लिखते कि :-

"सहर (जादू) बहुत बड़ा फ़न है। ख़ुदा को चाहीए था कि इस के जानने का इख़्तियार आदमीयों को देता, जिसके जानने का इख़्तियार ख़ुदा ने आदमीयों को दिया है। अम्बिया का मर्तबा ऐसा नहीं था कि लोगों को ऐसी बातें सिखाते जो यक़ीनन मुज़िर थीं। इसी वास्ते दो फ़रिश्ते नाज़िल किए गए और अब सब आदमी मोअजज़ात अम्बिया, करामात औलिया और अजाइबात साहिर (जादू) उन में जो कुछ फ़र्क़ है, बख़ूबी जानते हैं। हारूत मारूत भी लोगों को जादू सुखाने से अव्वल मना करते थे और जो कोई उनके पास आता था, उस से कहते थे कि हम तो आज़माईश हैं तू काफ़िर मत हो।"

बाअज़ कहते हैं कि ये यहूदीयों की रिवायत बज़बान मजाज़ी है, जिसमें दो फ़रिश्तों से इबारत अक़्ल व हलिम है और औरत से ख़्वाहिशात नफ़्सानी और औरत के उरूज आस्मान से मुराद मौत है। लेकिन मुहद्दिसों का बड़ा गिरोह इस तावील को नहीं क़ुबूल करता है। वो दावा करते हैं कि ये क़िस्सा सही हदीस से साबित है और अस्नाद भी दुरुस्त हैं, मिनजुम्ला उन

उलमा के जिनकी ये राय है। चंद के नाम इस जगह दर्ज किए जाते हैं और वो ये हैं। इमाम इब्ने हम्बल, इब्ने मसऊद, इब्ने उमर, इब्ने अब्बास और हाफ़िज़ अस्क़लानी। (तफ़्सीर फ़ैज़ उल-करीम, सफ़ा 58 वग़ैरहुम) (दो से ज़्यादा के लिए वग़ैरहुम आता है।) जलाल उद्दीन सिवती ने तफ़्सीर दुर्रे मंसूर में सब अहादीस ब-तर्तीब नक़्ल की हैं और अगरचे उनकी तफ़्सील में क़दरे इख़्तिलाफ़ है, लेकिन नफ़्स-ए-मतलब उस रिवायत के मुताबिक़ है जो मैंने नक़्ल की है। मुहद्दिसीन अहले कलाम के एतराज़ों का जवाब इस तरह देते हैं। फ़रिश्ते बेगुनाह उसी वक़्त तक हैं जब तक हालत मलकूती में रहें और हारूत मारूत बावजूद मुक़य्यद होने के सहर (जादू) सिखा सकते थे, क्योंकि इस मतलब के वास्ते दो एक कलिमे काफ़ी होते हैं और ये कि बाज़ों को ऐसी जगह से कुछ बाक (डर) नहीं होता और अगर हो भी तो क़ियास चाहता है कि फ़रिश्तों ने शैतान या जिन्न की वसातत से सिखा दिया हो। ज़ुहरा की निस्बत ये समझते हैं कि रोशन तारे की सूरत में मुक़ल्लिब (बदलने वाला, पलटने वाला) होना, उस की नेकी का सिला था क्योंकर इस्म-ए-आज़म सीखने की आरज़ू ऐसे सवाब का काम था जिससे उस की कुल बदी (बुराई) मादूम (गायब) हो गई। ज़ुहरा तारे की पैदाइश की निस्बत ये कहा जाता है कि इल्म हईयत के मसाइल का वजूद इन तहक़ीक़ात पर है जो बाद तूफ़ान के इन फ़न के आलिमों ने की थीं और ये हनोक के अह्द का क़िस्सा है, जो नूह से पहले दुनिया में गुज़रे हैं। ग़रज़ कि इस क़िस्म की बह्स चली जाती है और बड़े बड़े फ़ाज़िल और आलिम इस क़िस्से को सही जानते हैं। मुन्किर नकीर दो फ़रिश्ते हैं। डरावनी सूरत, सियाह-रंग और नीली आँखों वाले जो क़ब्र में हर मुर्दा के पास जा कर आज़माते हैं कि आया ख़ुदा पर और उस के रसूल मुहम्मद अरबी पर ईमान रखता है या नहीं। मौत के मुर्दे "आलम-ए-बजर्ख़" में रहते थे। "बर्ज़ख़" उस मुक़ाम का नाम है जो इस दुनिया के और उस जहान के दर्मियान वाक़ेअ है, जहां कि क़ियामत तक इन्सान को जगह मिलेगी। (तक्मील-उल-ईमान, सफ़ा 19)

क़ब्र का लफ़्ज़ जब ऐसे मौक़े पर इस्तमाल किया जाये तो इस के यही मअनी हैं। काफ़िर और गुनाहगार मुसलमान आलम-ए-बजर्ख़ में तक्लीफ़ उठाते हैं। सच्चे मोमिन जो फ़रिश्तों को ख़ूब जवाब देते हैं, राहत पाते हैं। बाज़ों के

नज़्दीक फ़रिश्तों का एक गिरोह इस काम पर मामूर है। जिनमें से बाअज़ मुन्किर और बाअज़ को नकीर कहते हैं और चूँकि हर शख़्स पर ज़िंदगी में दो फ़रिश्ते आमाल लिखने वाले मुसल्लत रहते हैं। दो उनमें से मुर्दा के आज़माने को मुक़र्रर होते हैं। नाबालिगों की निस्बत राय का इख़्तिलाफ़ है। लेकिन अक्सरिन का अक़ीदा ये है कि मोमिनों के लड़कों से सवाल होगा, मगर ख़ुद फ़रिश्ते ही उन्हें बता देंगे कि इस तरह कहें। हमारा रब अल्लाह है और हमारा दीन इस्लाम है और नबी हमारे मुहम्मद अरबी हैं। काफ़िरों के लड़कों के सवाल किए जाने की निस्बत कुछ राय नहीं दी है। अबू हनीफा को लड़कों के अज़ाब की निस्बत भी ताम्मुल था।

बाअज़ कहते हैं कि काफ़िरों के लड़के आराफ़ में रहेंगे, जो दोज़ख़ व बहिश्त के दर्मियान एक मुक़ाम है। बाअज़ का गुमान ये है कि बहिश्त में सच्चे मुसलमानों के ग़ुलाम होंगे। फ़रिश्तों से अलेहदा (अलग) एक और क़िस्म की मख़्लूक़ है, जिन्हें "जिन्न" कहते हैं। आदम के वजूद से हज़ार दिन बरस पहले पैदा हो चुकी थी। "और हमने आदम को खनखनाते सुने गारी से और जिन्नों को इस से पहले लोन (नमक, ख़ार की आग) से हमने बनाया।" (सुरह हिज्र 15:26-27) वो खाते और पीते हैं। "उनके औलाद होती है और मौत भी उनको लगी है। अगरचे उनमें अक्सर सैंकड़ों बरस जीते हैं। उनकी सुकूनत की ख़ास जगह कोह-ए-क़ाफ़ है। ये एक सिलसिला पहाड़ों का है। जिसे लोग समझते हैं कि मुहीत[29] आलम है। इनमें बाअज़ मुसलमान और बाअज़ काफ़िर हैं। काफ़िरों को सज़ा होगी। "अलबत्ता भरूँगा मैं दोज़ख़ जिन्नों से और आदमीयों से।" (सूरह हूद 11:120) सूरह जिन्न में जो बहोत्तरवीं (72) सूरत है, जिन्नों के इस्लाम लाने का ज़िक्र है और वो आयत जिसमें ये ज़िक्र है बहुत बड़ी है। इस सबब से मैंने नक़्ल नहीं की है। जिन्न आस्मान की बातें सुनना चाहते हैं (देखो सूरह जिन्न आयत 38) "और हमने उस को हर शैतान मर्दूद से बचा रखा। मगर जो चोरी से सुन गया" (सुरह हिज्र 15:18) जिन्न सुलेमान के ताबे थे और उस की इताअत करते थे। (सूरह

---

29 जब से तारीख़ की इब्तिदा है, उस वक़्त से कोह-ए-क़ाफ़ दोनों मुहज़्ज़ब क़ौमों यानी यूनानियों और मशरिक़ियों के नज़्दीक इल्म जुग़राफ़िया की हद थी (ब्राइटस साहब की किताब मुसम्मा ब मावरा-ए-इल्क़ाफ़ वाला अरात, सफ़ा 48)

साद 38:36) जिन्नों के एक इफ़रीयत ने सुलेमान से कहा "मैं ला देता हूँ तुझको इस से पहले कि तो अपनी जगह से उठे और मैं इस पर ज़ोर का मोअतबर हूँ।" (सूरह नमल 27:29) आख़िरत के दिन जिन्नों से भी हिसाब लिया जाएगा। इमाम हनीफा को इस में शक था कि आया मुसलमान जिन्न ख़ुदा के यहां नेकी का बदला पाएँगे या नहीं। अलबत्ता जो जिन्न काफ़िर हैं उन पर अज़ाब ज़रूर होगा। हदीस में जिन्नों की तफ़रीक़ इस तरह पर है: **(1) जान (2) जिन्न (3) शैतान (4) इफ़रीयत (5) मुरीद।** लोगों ने अपनी तरफ़ से बहुत से क़िस्से जिन्नों की निस्बत बना लिए हैं। अगरचे अक़्लमंद मुसलमानों को इन अजीब बयानात पर शक है। ताहम ये एतिक़ाद ऐसा हुक्मी है कि जब तक क़ुरआन पर ईमान है, जिन्नों पर भी यक़ीन रखना ज़रूर है। जो लोग इस मज़्मून को और ज़्यादा जानना चाहते हैं उन्हें मुनासिब है कि लेन साहब की किताब दरबारा मिस्रियों ज़माना-ए-हाल के देखें कि इस में एक बात निहायत दिलचस्प जिन्नों पर भी है।

(3) कुतुब

अल्बर खेवे कहते हैं कि इस बात पर ईमान लाना ज़रूरी है कि ख़ुदा की किताबें जिब्रईल के वसीले से नबियों के पास दुनिया में पहुंचीं और वो किताबें बजुज़ अम्बिया के और किसी पर नहीं उतरीं। क़ुरआन मुहम्मद अरबी पर जूज़वन जूज़वन (थोड़ा-थोड़ा) 23 बरस के अरसे में नाज़िल हुआ। तौरेत मूसा पर और इंजील ईसा पर और ज़बूर दाऊद पर और सहाइफ़ अम्बिया पर नाज़िल हुए। कुल कुतुब इलाहीया तादाद में 104 हैं। क़ुरआन जो सबसे अख़ीर में हुआ है, इस की पैरवी ता-क़ियामत चाहीए। इस में किसी तरह का नस्ख़ व तसर्रुफ़ नहीं हो सकता है। अगली किताबों के बाअज़ अहकाम क़ुरआन में मंसूख़ हो गए हैं, जिनकी पैरवी नहीं चाहीए। एक सौ चार किताबें आस्मान से इस तर्तीब से नाज़िल हुई थीं। आदम पर दस, शीत पर पच्चास, इदरीस पर तीस, इब्राहिम पर दस, मूसा पर तौरेत (पाँच किताबें), दाऊद पर ज़बूर, ईसा पर इंजील और मुहम्मद अरबी पर क़ुरआन। एक सौ किताबों को जिनके नाम जुदा-जुदा नहीं हैं "सहफ़ अम्बिया" (नबियों की किताबें) कहते हैं। क़ुरआन के मुतअद्दिद नाम हैं। "फ़ुर्क़ान" फ़र्क़

करने वाला हक़ व बातिल में। "क़ुरआन शरीफ़" और "क़ुरआन मजीद" (बुज़ुर्ग क़ुरआन) "अल-मुसहफ़" बमाअनी मख़्सूस किताब। कहते हैं कि क़ुरआन तौरेत व ज़बूर व इंजील सब का ख़ुलासा है। (शरह अक़ाइद जामी, सफ़ा 140) इस वास्ते मुसलमानों को इन किताबों के पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। फ़ारस का नामी शायर शेख़ सादी बोसतान में लिखता है :-

'' یتیمے کہ نا کردہ قرآن درست. کتب خانۂ چند ملت بشست''

"ऐसे यतीम कि हनूज़ पूरा क़ुरआन नहीं उतरने पाया था कि बहुत से मज़्हबों को मंसूख़ कर दिया।"

लेकिन दीनदार आलिमों का ये अक़ीदा है कि क़ुरआन[30] ने सबको मंसूख़ कर दिया है। अगरचे सय्यद अहमद ख़ान साहब इन मुसलमानों को जो ऐसा कहते हैं, "जाहिल व नादान बताते हैं।"[31] ग़रज़ कि जो कुछ हो, मगर

---

30 शरह अक़ाइद जामी, सफ़ा 147, मंसूख़ शुद तिलावतन व किताबतन (منسوخ شد تلا و تاً وکتابتاً) यानी अज़ रुए तिलावत और किताबत दोनों के मंसूख़ है। तक्मील-उल-ईमान, सफ़ा 64 में आया है कि دین وے ناسخ جمیع ادیان ست यानी आपका दीन सब दीनों का मंसूख़ करने वाला है।

31 तफ़्सीर तबीय्यीनुल-कलाम (تفسیر تبیین الکلام) मुसन्निफ़ सय्यद अहमद साहब नज्म-उल-हिंद (जिल्द अव्वल), सफ़ा 268, ये तफ़्सीर उर्दू में है, लेकिन मुसन्निफ़ ने अंग्रेज़ी ख़वाँ के फ़ायदे के वास्ते अंग्रेज़ी में इस का तर्जुमा किया है। जो लोग इस बात को मुसलमानों के अक़ाइद का जुज़्व समझते हैं कि एक शरीअत दूसरे की नासिख़ है, सरासर ग़लती पर हैं। हमारा ये अक़ीदा नहीं है कि तौरेत को ज़बूर ने और ज़बूर को इंजील ने और इंजील को क़ुरआन ने मंसूख़ किया। हमारे यहां ऐसा कोई मसअला नहीं और अगर कोई जाहिल मुसलमान इस के ख़िलाफ़ दावा करे तो महमूल किया जाएगा कि वो उसूल व अक़ाइद इस्लाम से वाक़िफ़ नहीं। आलिम सय्यद ने इस जगह आज़ाद मन्श मुसलमान का क़ायदा इख़्तियार किया है, लेकिन उर्दू अंग्रेज़ी से मुख़्तलिफ़ है। अगर उर्दू का लफ़्ज़ी तर्जुमा किया जाये तो इस तरह पर होगा। अब ये समझना चाहीए कि जो लोग इस बात को मुसलमानों के अक़ीदे का जुज़्व (हिस्सा) समझते हैं कि ज़बूर के आने से तौरेत और इंजील के आने से ज़बूर और क़ुरआन के आने से इंजील मंसूख़ हो गई। इस ख़्याल से कि उनमें कोई नुक़्स था, वो सरासर ग़लती पर हैं। जिस फ़िक़्रह पर मैंने ख़त खींचा है, वो अंग्रेज़ी में बिल्कुल नहीं है जिससे कुल इबारत का मतलब बदल जाता है। पस अपने हम मज़्हबों के सामने सय्यद साहब ये कहते हैं कि ये किताबें मंसूख़ तो हो गईं, लेकिन इस सबब से नहीं कि उनमें कुछ नुक़्स था। चूँकि किसी मुसलमान का ये अक़ीदा नहीं कि किताब आस्मानी नाक़िस है। इस वास्ते यहां पर सय्यद ने नस्ख़ की मुजर्रिद हक़ीक़त बयान की और दीनदारों के नज़्दीक

और कुतुब इल्हामी क़ुरआन से मर्तबे में कमतर हैं। इंजील में क़िसस व अख़्बार बहुत हैं। सिर्फ मसीह का अस्ल कलाम जो आस्मान से नाज़िल हुआ है, इल्हामी है। यही सूरत अम्बियाए अहद अतीक़ की निस्बत है। मगर ये क़ायदा हो गया है कि कुल किताब को नबी के नाम से मौसूम करते हैं। आम इस से कि इस का मज़्मून महज़ अहकाम हों या इस में क़िसस व अख़्बार भी हों। लेकिन ये लिहाज़ रखना चाहीए कि जो मुकाशफ़ात और इल्हामात हमारे नबी पर हुए हैं उनसे फ़साहत का मख़्सूस मोअजिज़ा मक़्सूद था और वो जिस तरह पहुंचते बईंही उसी तरह लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ क़लम-बंद कर लिए जाते थे। कोई ख़बर या क़िस्सा उस के साथ नहीं मिलाया जाता था। (सय्यद अहमद साहब की तफ़्सीर तबीयनुल-कलाम, जिल्द अव्वल, सफ़ा 22)

रसूलों के नविश्ते अगरचे इस मर्तबा के नहीं तसव्वुर किए जाते जिस मर्तबा का ईसा का कलाम है और आमाल अल-रसूल और ख़ुतूत अगरचे उम्दा किताबें हैं, मगर हम उन्हें अह्दे जदीद का जुज़्व या हिस्सा नहीं क़रार दे सकते हैं। ताहम रसूलों के सब नविश्तों को हम अपने नबी के नविश्ता जात अस्हाब के बराबर जानते हैं यानी उनकी वैसी ताज़ीम-ओ-तकरीम करते हैं। (तबीयन-उल-कलाम,सफ़ा 31)

क़ुरआन में मुतअद्दिद आयात हैं जिनमें अगली किताबों का ज़िक्र है, मसलन (सूरह माइदा आयत 50 में आया है **"और पीछे भेजा हमने उन के क़दमों पर मर्यम के बेटे ईसा को सच्च बताता तौरेत को जो आगे से थी और उस को हमने इंजील दी जिसमें हिदायत और रोशनी है। सच्चा करती है अगली तौरेत को और राह व नसीहत बताती है, डर वालों को।"** हमने यक़ीन किया अल्लाह पर और जो और उतरा हम पर और जो उतरा इब्राहिम व इस्माईल व इस्हाक़ व याक़ूब और उस की औलाद पर और जो मिला मूसा को और ईसा को और जो मिला सब नबियों को अपने रब से, हम उनमें से किसी में फ़र्क़ नहीं करते और हम उसी के हुक्म पर हैं।"

दीनदार हैं। पस इस बारे में हिन्दी मुसलमानों के आज़ाद फ़रीक़ का सरदार यानी सय्यद मौसूफ़ उसी क़द्र सख़्त है, जैसा कोई सख़्त मुतअस्सिब मुसलमान हो सकता है।

(अल-बक़रा आयत 130) "तुझ पर उतारी किताब जो ब-तहक़ीक़ अगली किताब को साबित करती है और उतारी थी तौरेत व इंजील इस से पहले लोगों की हिदायत को और अब उस ने उतारा फुर्क़ान[32] फ़र्क़ करने वाला हक़ व बातिल के दर्मियान यानी क़ुरआन।" (सुरह आले-इमरान आयात 2-4) मुसलमानों का अमल तौरेत व इंजील पर नहीं, हालाँकि ये अम्र सरीह मुख़ालिफ़ क़ुरआन है और चूँकि कोई वजह इस तर्क-ए-अमल की बताने की ज़रूर थी। इस वास्ते मौलवी ये कहते हैं कि यहूदीयों और मसीहीयों की किताबें बिगड़ गई हैं यानी उनमें तहरीफ़ वाक़ेअ हुई है। तहरीफ़ के मअनी उनकी इस्तिलाह में बदल डालने के या किसी चीज़ को हक़ से फेरने के हैं। तहरीफ़ दो तरह पर हो सकती है। पहली "**तहरीफ़ माअनवी**" यानी मअनी अल्फ़ाज़ को बदल डालना, दूसरी "**तहरीफ़ लफ़्ज़ी**" ख़ुद अल्फ़ाज़ को बदल डालना। अक्सर मुसलमान तहरीफ़ लफ़्ज़ी के क़ाइल हैं। इस वास्ते उनके नज़्दीक लाज़िम नहीं है कि अगली किताबों को जिनका जा-ब-जा क़ुरआन में ज़िक्र है, पढ़ें। यहूदीयों पर तहरीफ़ का इल्ज़ाम क़ुरआन की इस आयत के बमूजब है। "और उनमें एक गिरोह हैं जो ज़बान मरोड़ कर किताब से पढ़ते हैं ताकि तुम जानो कि वो किताब में है। हालाँकि वो किताब में नहीं है और कहते हैं कि वो अल्लाह का कहा है। हालाँकि अल्लाह का कहा नहीं है और अल्लाह पर जान कर झूट बोलते हैं।" (सूरह आले-इमरान 3:77) तमाम क़दीम मुफ़स्सिर इस आयत से तहरीफ़ माअनवी साबित करते हैं यानी जिन यहूदीयों की तरफ़ इस जगह इशारा है, वो या तो कुतुब मुक़द्दसा की इबारत पढ़ कर ग़लत मअनी बताते थे या ऐसी इबारत पढ़ते थे जो कुतुब मुक़द्दसा में नहीं होती थी और कहते थे कि हम इसी किताब में से पढ़ते हैं। इस के ये मअनी नहीं कि किताब के मतन को बदल डालते थे। मगर ये अम्र मुसलमानों के तर्क-ए-अमल के वास्ते उज़्र काफ़ी नहीं है। इस जिहत से मताख़रीन ये दावा करते हैं कि तहरीफ़ लफ़्ज़ी वाक़ेअ हुई है। ग़रज़ कि मसअला तहरीफ़ पर कामिल बहस हो चुकी है और सय्यद अहमद साहब

32 इसी क़िस्म की और आयात में जो सर विलियम म्यूर की किताब दरबारे क़ुरआन में ये तफ़्सील मुंदरज हैं और उनके साथ मोअतबर मुसन्निफ़ों का तर्जुमा भी है।

तबीयनुल कलाम फ़ी तफ़्सीर अल-तौरेत व इंजील में क़दीम मुफ़स्सिरों की राय को तर्जीह देते हैं। (तबीयनुल कलाम मुसन्निफ़ सय्यद अहमद साहब, सी॰ ऐस॰ आई॰, सफ़ा 64-95)

(4) नबी

मुहम्मद अल्बर खेवे लिखते हैं कि "इस बात पर ईमान लाना ज़रूरी है कि ख़ुदा ने नबी भेजे हैं। आदम पहले नबी हैं और तमाम आदमीयों के बाप हैं और मुहम्मद अरबी आख़िरी नबी हैं और आदम और मुहम्मद अरबी के दर्मियान बहुत नबी गुज़रे हैं। मुहम्मद अरबी ख़ैर-उल-बशर और उनकी उम्मत ख़ैर-उल-उम्माह। (बेहतरीन उम्मत) अगले नबियों में हर नबी मय किताब या बग़ैर किताब के मख़्सूस गिरोह के पास भेजा गया, लेकिन मुहम्मद अरबी तमाम जिन्न व इन्स की तरफ़ भेजे गए हैं। ये शरीअत दुनिया के ख़त्म होने तक क़ायम रहेगी और आपके मोअजज़ात कस्रत से हैं। आपने अपनी उंगलीयों से पानी जारी किया, चांद के दो टुकड़े किए, जानवरों और दरख़्तों और पत्थरों ने गवाही दी कि तो नबी बरहक़ है। "और इस बात पर भी ईमान लाना चाहीए कि एक रात में मक्का से मस्जिद अक्सा (यरूशलम) पहुंचे और वहां से आस्मान पर गए। बहिश्त व दोज़ख़ की सैर की। ख़ुदाए तआला से हम-कलाम हुए और सुबह के क़ब्ल फिर मक्का को वापिस आ गए। आपके बाद कोई और नबी नहीं आएगा क्योंकि आप ख़ातिम हैं।"

जो अम्बिया ख़ुदा ने अपनी बातें बताने को भेजे हैं, उनकी तादाद मुंदरजा हदीस में इख़्तिलाफ़ है। लेकिन अक्सर दो लाख के क़रीब बयान की जाती है। मिनजुम्ला उनके 25 का नाम भी क़ुरआन में आया है और उनमें भी 6 मख़्सूस अल्क़ाब से मुम्ताज़ आदम "सफ़ी अल्लाह" बरगज़ीद-ए-ख़ुदा, नूह "नबी अल्लाह" ख़ुदा के नबी, इब्राहिम "ख़लील-उल्लाह" ख़ुदा के दोस्त, मूसा "कलीम-उल्लाह" ख़ुदा से कलाम करने वाले, ईसा "रूह अल्लाह" ख़ुदा की रूह और मुहम्मद "रसूल अल्लाह" पैग़म्बर ख़ुदा। उन्हें अम्बिया उलुल-अज़्म (साहब इरादा) इस सबब से कहते हैं कि वो अपनी उम्मतों के सरदार थे और अदालत के रोज़ ख़ुदा उन्हें इजाज़त देगा कि अपनी उम्मत की शफ़ाअत करें। ये सब नबियों में बुज़ुर्ग और आली मर्तबा थे।

(तक्मील-उल-ईमान, सफ़ा 95) नबियों के मुरातिब में फ़र्क़ है। चुनान्चे सूरह बक़र 2:256 में आया है कि "इन रसूलों में हमने एक को एक पर बड़ाई दी कोई है कि उस से अल्लाह ने कलाम किया और बाज़ों के दर्जे बुलंद किए और ईसा मर्यम के बेटे को सरीह निशानीयां दीं और रूह पाक से उसे ज़ोर दिया।" अम्बिया उलुल-अज़्म (साहबे इरादे वाले) के मुरातिब इस तर्तीब से हैं। नूह, ईसा, मूसा, इब्राहिम और सब में ख़ास मुहम्मद अरबी हैं, जिनकी निस्बत रसूल अल्लाह व ख़ातिम-उन्नबियिन अह्ज़ाब 33:40 में आया है। एक हदीस से आपकी फ़ज़ीलत इस तरह साबित होती है। आदम के बेटों में ख़ास मैं हूँ। आदम और उनके सिवा और सब इन्साफ़ के दिन मेरे झंडा के नीचे होंगे। (तक्मील-उल-ईमान सफ़ा 59)

कहते हैं कि मूसा की शरीअत के अहकाम बहुत सख़्त और मसीह की शरीअत के बहुत नरम व आसान थे। लेकिन मुहम्मद अरबी की शरीअत पुख़्ता है, क्योंकि इस में दोनों वस्फ़ हैं। सख़्ती भी है और नर्मी भी। इस हदीस के मुताबिक़ कि "मैं हमेशा हँसता हूँ और हंसी से कुशता करता हूँ।" कहते हैं कि हर नबी अपनी क़ौम की तरफ़ भेजा गया है, लेकिन मुहम्मद अरबी तमाम आदमीयों के वास्ते भेजे गए हैं। चुनान्चे इस क़ौल की ताईद में ये हदीस पेश की जाती है। मैं तमाम आदमीयों के लिए मबऊस हुआ हूँ। ख़्वाह वो गोरे हों या काले हों और और नबी बजुज़ अपनी क़ौम के और किसी की तरफ़ नहीं भेजे गए। "ऐ मुहम्मद अरबी भेजा हमने मगर रहमत तमाम आलम के लिए, इस बाब में कि आया नबियों को फ़रिश्तों पर फ़ज़ीलत है, थोड़ा सा इख़्तिलाफ़ है।" हनफ़ियों के अक़ाइद में आदमीयों के नबी फ़रिश्तों के नबियों से बड़े हैं और फ़रिश्तों के नबी औसत दर्जे के आदमीयों के से बड़े हैं। मगर इन आदमीयों से बजुज़ नबियों के और फ़रिश्ते कमतर हैं। मोतज़िला कहते हैं कि मलाइका अम्बिया से बड़े हैं। शीयों का ये दावा है कि दवाज़ दह इमाम (12 इमाम) अम्बिया से ज़्यादा रुत्बा रखते हैं।

जिस तरह से वहयी आती थी, इस का ज़िक्र बाब मा सबक़ में हो चुका है। लेकिन इब्ने ख़ल्दून ने इल्हाम अम्बिया पर ऐसा दिल-चस्प बयान लिखा है कि मैं इस का ख़ुलासा इस मुक़ाम पर दर्ज करना मुनासिब समझता हूँ और वो इस तरह पर है (इब्ने ख़ल्दून की किताब जिल्द अव्वल, सफ़ा

196-205) अगर हम दुनिया पर और इस में जो मख़्लूक़ है, इस पर नज़र करें तो मालूम होगा कि इस में पुख़्ता तर्तीब, मुनासिब इंतिज़ाम, इल्लत मालूल का माक़ूल सिलसिला और मुख़्तलिफ़ हालात वजूद का बाहमी ताल्लुक़ और एक हालत वजूद से दूसरी में मुनासिब तग़य्युर पाया जाता है। आलम महसूस के वाक़ियात ऐसे वजूद ज़ी इरादा की तरफ़ दलालत करते हैं जो बिलासालता जिस्म से मुख़्तलिफ़ है और जैसे यक़ीनन वजूद रूही से ताबीर करना चाहीए। ये फ़ाइल बाला इरादे कि ताबीर इस से रूह है। एक जानिब को इस आलम की मौजूदात से इत्तिसाल रखता है और दूसरी जानिब ऐसे मौजूदात से मुक़तरिन है जो दूसरे महल फ़ज़लित में वाक़ेअ हैं और जिनके ज़रूरी औसाफ़ में ख़ालिस ताक़्क़ुल और सही दराक है और वो मलाइका हैं।

इस से ये नतीजा निकलता है कि आदमी की रूह को फ़रिश्तों से मुनासबत है और ये सब बातें इस राय से मुवाफ़िक़ हैं कि तमाम जहान में जितने जानदार हैं, उन सब में एक दूसरे के साथ कुछ रिश्ता ज़रूर है और हर रूह को हम दिगर (बाहम, आपस में) ताल्लुक़ होता है। अर्वाह इन्सानी तीन किस्मों पर मुनक़सिम हो सकती हैं। एक तो वो रूह जो पैदाइश से ऐसी कमज़ोर हो कि आलम-ए-अर्वाह तक उस का तसव्वुर ना पहुंच सके। सिर्फ आलम हिस व वहम की सैर व हरकत पर क़ाने हो यानी उन्हीं बातों तक उस की रसाई हो जो हवास व अक़्ल से दर्याफ़्त होती हैं। पस ऐसी रूह तरह तरह की बातें सोचती और उन पर हुक्म लगाती और जहां तक इस में गुंजाइश है वहां तक काम करती है। इस से आगे नहीं बढ़ सकती। दूसरी क़िस्म की अर्वाह बा-तबेअ ऐसी क़ाबिलीयत रखती हैं कि ख़ौज़ व फ़िक्र से इदराक रूह तक पहुंच सकती हैं। अव्वल दिलजमई और सुकून से ख़ौज़ व फ़िक्र करती और तसव्वुर बांधती हैं। ताआन्कि वज्द की सी हालत पैदा हो जाती है। इस क़िस्म का हुस्न बातिन औलिया[33] को होता है जिन्हें ख़ुदा अपनी मार्फ़त देता है।

---

33 नस से साबित है कि औलिया का मर्तबा औसत दर्जे के आदमीयों से बड़ा है। सुन रखो जो लोग अल्लाह की तरफ़ हैं, ना डर है उन पर, ना वो ग़म खाएं। (सूरह यूनुस 10:63)

तीसरी क़िस्म की अर्वाह में ऐसी क़ुदरत होती है कि अपने बदनों से अलेहदा (अलग) हो कर हालत मलकूती में पहुंच सकती और मलाइका (फ़रिश्ते) के मिस्ल हो सकती हैं। ऐसी रूह कभी आलम मलाइका की सैर करती और फ़रिश्तों को देखती है। कभी रूह की बातें और ख़ुदा की आवाज़ सुनती है। अर्वाह अम्बिया इसी क़िस्म की होती हैं। इन अर्वाह को ख़ुदा ने ऐसी क़ुदरत दी है कि जिस्म इन्सानी से अलेहदा (अलग) हो सकती हैं और इसी अलैह्दगी की हालत में उन्हें कशफ़ होता है यानी ख़ुदाए तआला अपनी बातें उन्हें बताता है। ख़ुदा ने अम्बिया की तबीअतों में ऐसा ख़ुलूस और क़ल्ब (दिल) में ऐसी सफ़ाई और अक़्लों को ऐसी रास्ती दी है कि उनका रुजहान ख़्वाह-मख़्वाह आलम-ए-अर्वाह की जानिब होता है। उनमें एक ऐसी दिल सोज़ी और हरारत हरकत करती है, जो उन्हीं के गिरोह से मख़्सूस है और जब वो हालत मल्की से ऊद करते हैं, तो आदमीयों को मुकाशफ़ात इलाहीया से इत्तिला देते हैं और ख़ुदा के पैग़ाम लोगों को पहुंचाते हैं। कभी ये कशफ़ नबी के दिलपर बे-तर्तीबी से मिस्ल आवाज़ भनभनाहट के असर करता है और जब आवाज़ मौक़ूफ़ हो जाती है तो इस पैग़ाम के मुतालिब समझता है और कभी फ़रिश्ता आदमी की शक्ल बन कर ख़ुदा का पैग़ाम लाता है और जो कुछ वो कहता है, नबी उसे हिफ़्ज़ कर लेता है।

आलम मलाइका के सफ़र में और फिर वहां से मुराजअत करने में और कशफ़ व इल्हाम का मतलब समझने में तरफ़त-उल-ऐन का तवक़्क़ुफ़ भी नहीं होता यानी अर्वाह अम्बिया (नबियों की रूहें) ऐसी लताफ़त से हरकत करती हैं और ऐसी उज्लत (जल्दबाजी) के साथ ख़ुदा से पैग़ाम लेकर उन पर आगाह हो जाती हैं। इस क़िस्म के इल्हाम को वह्यी कहते हैं। जिसके मअनी बक़ौल इब्ने ख़ल्दून उज्लत (जल्दबाजी) यानी जल्दी के हैं। अव्वल तरीक़ पैग़ाम पहुंचाने का उस वक़्त इख़्तियार किया जाता है जब कि इस का लेने वाला नबी हो, रसूल ना हो और दूसरा तरीक़ रसूल के साथ मरई (रिआयत किया गया, आइद किया गया) होता है और रसूल इस सबब से कि जहां कि ख़ास पाया जाता है, आम ज़रूर पाया जाता है, नबी भी होता है। मुहम्मद अरबी ने ये कहा है कि बाज़-औक़ात मेरे पास वह्यी मिस्ल आवाज़ घंटे के आती थी और मैं इस से आजिज़ हो जाता था। जब आवाज़

मौक़ूफ़ हो जाती थी तो मैं वह्यी का मतलब समझता था और कभी फ़रिश्ता आदमी की शक्ल बन कर मेरे पास आता था और जो कुछ वो कहता जाता था, मैं याद कर लेता था। "और ये बात कि नबी को ऐसे औक़ात में सदमा होता था और वहशत तारी होती थी।" (सूरह मुज़म्मिल 50) में इस की तरफ़ इशारा है।

"और खोल खोल पढ़ क़ुरआन को साफ़। हम आगे डालेंगे तुझ पर एक भारी बात।" नबी (जिसका आक़िल व हुर्र[34] (حُرّ) व मुकल्लिफ़[35] (مکلف) होना है) को वह्यी आती है, लेकिन तब्लीग़ अहकाम इलाही की इस पर लाज़िम नहीं है। रसूल जो औसाफ़ नबुव्वत से ज़रूर मुत्तसिफ़ होता है, वो है जो लोगों को ख़ुदा के पैग़ाम पहुंचाने पर मामूर हो। आम इस से कि अगले रसूल के अहकाम मंसूख़ करे या ना करे और आम इस से कि उस के पास किताब या शरीअत जदीद (नई शरियत) हो या ना हो। बाअज़ रसूलों के साथ किताब व शरीअत जदीद भी होती है, लेकिन रसूल की पहचान यही है कि ख़ुदा के अहकाम बईंही लोगों को पहुंचाए और इसी काम के वास्ते मख़्सूस हो। पस रसूल और नबी में उमूम मख़्सूस मुतलक़ की निस्बत है यानी जो रसूल है, वो नबी ज़रूर है। लेकिन ये ज़रूरी नहीं कि जो नबी है, वो रसूल भी हो। मासूमियत अम्बिया की बह्स भी ऐसी ही है कि मुसलमान आलिमों ने बड़ी ख़ौज़ व फ़िक्र की है। नबी के बारे में मुसलमानों का अक़ीदा ये है अम्बिया मासूम यानी गुनाह से पाक हैं। बाज़ों के नज़्दीक नबी इस सबब से महफ़ूज़ और राह-ए-हक़ पर क़ायम रहते हैं कि ख़ुदा का फ़ज़्ल उन पर हमेशा रहता है, और बाकयदा अशअरियान उनमें गुनाह की क़ुदरत ही नहीं होती। (शरह अक़ाइद जामी, सफ़ा 125) (?) को इस से इन्कार है, लेकिन ये तस्लीम करते हैं कि उनमें कोई वस्फ़ ऐसा होता है जो बदी से महफ़ूज़ रखता है। मगर इन कुल राइयों में से किसी को नफ़्स हक़ीक़त से कुछ मुवाफ़िक़त नहीं। अम्बिया से भी और आदमीयों की तरह ख़ताएँ सरज़द होती हैं, लेकिन मुसलमानों में गुनाह की तफ़रीक़ है। बाअज़ गुनाह कबीरा हैं यानी बड़े गुनाह और बाअज़ सगीरा यानी छोटे गुनाह हैं। क़त्ल, ज़िना,

---

34 हुर्र (حُرّ) वह है जो किसी का ग़ुलाम ना हो आज़ाद हो।

35 मुकल्लिफ़ (مکلف) वो है जो कोई ऐब जिस्मानी या अक़्ली ना रखता हो।

ख़ुदा की और माँ बाप की ना-फ़रमानी, यतीमों को ग़ारत करना, ज़िना की तोहमत लगाना, जिहाद से बचना, शराब पीना, रिश्वत देना या लेना, जुमा की नमाज़ रमज़ान के रोज़ों में सुस्ती करना, ना इंसाफ़ी, ग़ीबत, बद्दयानती, क़ुरआन को पढ़ कर भूल जाना, सच्ची गवाही से मुहतरिज़ होना[36] या झूटी गवाही देना, बेसबब झूट बोलना। (सिरात-उल-इस्लाम, सफ़ा 18), झूटी क़सम खाना या सिवाए ख़ुदा के दूसरे की क़सम खाना, ज़ालिम हाकिमों की ख़ुशामद करना, झूटा फ़ैसला करना, कम तौलना या नापना, जादू, क़मारबाज़ी, कुफ़्फ़ार की रसूम को पसंद करना, ख़ुदा-परस्ती पर फ़ख़्र करना, मुर्दों का नाम लेकर छाती पीटना, नाचना गाना, बजाना, मौक़ा पा कर लोगों को ख़ुदा के अम्र व नवाही (जायज़ और नाजायज़) से मुतनब्बाह (आगाह) ना करना, हाफ़िज़ की ताज़ीम ना करना, डाढ़ी मुंडवाना और जब मुहम्मद अरबी का नाम आए दुरूद ना पढ़ना। (तक्मील-उल-ईमान सफ़ा 18) ये सब गुनाह कबीरा हैं और बग़ैर वाजिबी तौबा के उनकी बख़्शीश नहीं।

सग़ायर अलबत्ता नेक काम करने से दूर हो जाते हैं। चुनान्चे क़ुरआन में आया है "और नमाज़ क़ायम करो की दोनों सुरों में और रात के कुछ टुकड़ों में क्योंकि नेकियां बुराईयों को दूर करती हैं। (सुरह हूद 11:121) और गुनाह इन्सान से दो तरह पर हो सकता है अम्दन या सहूँ। (जानबूझ कर या भूल से) लेकिन ये सब मुसलमानों का अक़ीदा है कि नबी से गुनाह कबीरा ना अम्दन (जानबूझ कर) होता है और ना सहवन। (भूक कर) सग़ायर में अलबत्ता इख़्तिलाफ़ है। बाअज़ कहते हैं कि नबियों से नादानिस्तगी में सग़ायर का इम्कान है, लेकिन वो सग़ायर भी ख़िदमात मुताल्लिक़ा से कुछ निस्बत नहीं रखते हैं और बाअज़ गुनाह सगीरा को भी उस मुद्दत से महदूद करते हैं जो वह्यी से क़ब्ल गुज़री होगी। मगर आम राय ये है कि कुल नबी गुनाहों से पाक हैं, ख़्वाह कबाइर (बड़ेन गुनाह) हों या सग़ायर (छोटे गुनाह) से हों और अहयानन अगर कुछ ज़ोफ़ के आसार उनसे सरज़द भी हों तो बमंज़िला ऐसे क़सूर या कोताही के मुतसव्वर हुए हैं जो गुनाह की हद

---

36 मुहर्रम में शीया ऐसा करते हैं। इन पर एहतिराज़ है, शीयों के नज़्दीक ये फ़ेअल नेक है।

तक नहीं पहुंचते। जो दिक़्क़त ख़ुद क़ुरआन से इस बात में पैदा होती थी, वो सब इस से मुसलमान के नज़्दीक दफ़ाअ हो जाती है। बइस्तस्ना यसूअ मसीह के और सब अम्बिया उलुलअज़्म (साहिबे इरादे वाले) की निस्बत क़ुरआन में ऐसे अफ़आल का ज़िक्र है, जिन्हें बजुज़ सुन्नी मुसलमान के और कोई कुछ अजब नहीं कि गुनाह से ताबीर करे। आदम की ख़ता[37] का सूरह बक़रह आयात 29-37 और सूरह आराफ़ आयात 10-24 में इशारा है। मैं सिर्फ एक आयत को इस मुक़ाम पर नक़्ल करता हूँ :-

"बोले ऐ हमारे रब हमने अपनी जान को ख़राब किया और अगर तू हमको ना बख़्शे और रहम ना करे तो हम ना मुराद हो जाएं।" (आराफ़ आयत 240) नूह के गुनाह की क़ुरआन में कुछ तफ़्सील नहीं, मगर साफ़ इशारा पाया जाता है। "बोला ऐ रब मैं तेरी पनाह लेता हूँ इस से कि पूछूँ जो मुझको मालूम ना हो और अगर तू मुझे ना बख़्शे और रहम ना करे तो मैं ख़राबी वालों में हूँ।" (सूरह हूद 11:49) सूरह नूह 71:29 में भी इसी क़िस्म की दुआ है। इब्राहिम ने अपनी क़ौम से कहा कि "जिन्हें तुम पूजते हो और तुम्हारे अगले बाप दादे (पूजते थे) वो मेरे ग़नीम हैं, मगर जहान का साहब जिसने मुझे बनाया है, सो वोही मुझको सूझ देता है और वो मुझको खिलाता और पिलाता है और जब मैं बीमार हूँ तो वही मुझे चंगा करता है और वो जो मुझको मारेगा और फिर जिलाएगा और वो जो मुझको तवक़्क़ो है कि मेरी तक्सीरें इन्साफ़ के दिन बख़्शे।" (सुरह शोअरा 26:75-82)

मूसा ने जो क़िबती को मारा था, उसे अमल शैतान से मंसूब कर के ये कहने लगा "ऐ रब मैंने बुरा किया अपनी जान का, सो मुझको बख़्श दे। फिर उसे बख़्श दिया। बेशक वही है बख़्शे वाला मेहरबान। बोला ऐ रब जैसा तू ने मुझ पर फ़ज़्ल किया फिर मैं कभी गुनाहगारों का मददगार ना हूँगा। (सुरह क़िसस 28:15-16) आयात ज़ेल में मुहम्मद अरबी की तरफ़ इशारा है। "सो तू ठहरा रह बेशक अल्लाह का वाअदा ठीक है। बेशक अल्लाह का

---

37 कहते हैं कि आदम का गुनाह महज़ लग़्ज़िश थी, लेकिन दुनिया के हक़ में बेहतरी हुई। अगर आदम बहिश्त में रहते तो दुनिया आबाद ना होती और ख़ुदा का कलाम कि "ना पैदा किया हमने जिन्न और इन्सान को, मगर वास्ते बंदगी के" पूरा ना होता।

वाअदा ठीक है और गुनाह बख्शवा।" (सूरह मोमिन 40:56) मुफ़स्सिर बैज़ावी के नज़्दीक इस मुक़ाम पर गुनाह से इबारत इशाअत इस्लाम में ढील और सुस्ती करती है। "और माफ़ी मांग अपने गुनाह के वास्ते और ईमानदार मर्दों और औरतों के लिए।" (सूरह मुहम्मद 47:20) और जो फ़ेअल नदामत का ज़ैद की ज़ौजा (बीवी) ज़ैनब और मिस्री लौंडी मारिया क़िब्तिया के साथ मुहम्मद अरबी से सरज़द हुआ था। उस के जवाज़ के वास्ते भी मस्नूई (खुदसाख्ता) वह्यी ख़ुदा की तरफ़ से उतरनी ज़रूरी थी। चुनान्चे कुल हालात की तफ़्सील सूरह अह्ज़ाब 33 आयात 26-30 और सूरह तहरीम 66 आयात 1-2 में मौजूद है। लेकिन ये दो आयतें निहायत मुफ़ीद मुतालिब रखती हैं :-

اِنَّا فَتَحْنَا لَکَ فَتْحًا مُّبِیْنًا لِّیَغْفِرَ لَکَ اللّٰہُ مَا تَقَدَّمَ مِنْ ذَنْۢبِکَ وَ مَا تَاَخَّرَ

"हमने तेरे वास्ते सरीह फ़ैसला कर दिया ताकि ख़ुदा तेरे गुनाह जो आगे हुए और जो पीछे रहे, मुआफ करे।" (सुरह फ़त्ह 48:1-2) ये साफ़ नहीं मालूम होता है कि इस जगह कौन सी फ़त्ह या फ़ैसला मक़्सूद हो। तफ़्सीर हुसैनी में है कि बाअज़ मुफ़स्सिरों के नज़्दीक इस से इबारत फ़त्ह मक्का है। फ़ेअल माज़ी पीशीनगोई के तौर पर इस्तिक़बाल के वास्ते आया مَا تَقَدَّمَ مِنْ ذَنْۢبِکَ وَ مَا تَاَخَّرَ की तफ़्सीर इस तरह की गई है :-

(1) जो कुछ वही के आने से पहले या बाद गुज़रा है, वो ख़ुदा ने माफ़ कर दिया।

(2) फ़त्ह मक्का से पहले या बाद जो कुछ हुआ। या

(3) क़ब्ल अज़ नुज़ूल इस आयत के

(4) मुफ़स्सिर सलमी रहमतुल्लाह अलैहि ने फ़रमाया है कि "मातक़द्दमा" (ماتقدم) से मुराद आदम के गुनाह हैं। आदम के गुनाह को आपसे इसलिए मंसूब किया है कि गुनाह के वक़्त आप सल्ब आदम में थे और ماتاخر से मुराद उम्मत के गुनाह हैं। उम्मत के गुनाहों को भी

आपसे मंसूब किया, इस सबब से कि आदम के गुनाह उम्मत के गुनाहों के पेशरू और मूजिब थे।

(5) इमाम अबू अललबस ने लिखा है कि गुनाह गुज़श्ता आदम व हव्वा के हैं और जराइम आइंदा उम्मत के गुनाह हैं यानी गुज़श्ता व आइंदा दोनों को आपसे इसलिए मंसूब किया है कि गुज़श्ता आपकी बरकत से और आइंदा यानी उम्मत के गुनाह आपकी शफ़ाअत से गए।" (तफ़्सीर हुसैनी, सफ़ा 332)

ग़रज़ कि क़ुरआन की इन आयात से साबित होता है कि गुनाह नबियों से सरज़द हुए। अगरचे मुसलमान इन दलाईल से जो क़ब्ल अज़ीं बयान कर चुका हूँ इस इल्ज़ाम को दफ़ाअ करते हैं। ख़ैर जो कुछ हो सो हो, लेकिन ये ताज्जुब है कि एक मासूम मुतनफ़्फ़िस अम्बिया उलुलअज़्म (साहबे इरादे वाले) हैं और एक बेगुनाह नबी मुसलमानों में बजुज़ यसूअ मसीह के और कोई नहीं। क़ुरआन में कोई आयत नहीं जिसमें मसीह की तरफ़ किसी ऐसे छोटे गुनाह का इशारा भी हो, जिसे मुसलमान तबह तकल्लुफ़ और नबियों से मंसूब करते हैं। कोई आयत नहीं जिसमें उस की माफ़ी मांगने का ज़िक्र हो। तमाम मुसलमानों का ये अक़ीदा है कि नबी मोअजज़ात दिखाते थे। मोअजिज़ा को फ़र्क़ आदत इस सबब से कहते हैं कि वो क़ुदरत के क़वानीन मुअय्यना के ख़िलाफ़ होता है। मोअजिज़ा किसी दीनी ग़रज़ से अला उल-ख़ुसूस तस्दीक़ नबुव्वत के वास्ते किया जाता है। अगरचे मुहम्मद अरबी ने क़ुरआन में कोई सरीह दावा नहीं किया है कि मुझे मोअजिज़ा दिखाने की क़ुदरत[38] है, लेकिन मुहम्मदी ये दावा करते हैं कि इस अम्र ख़ास में नीज़

38 बल्कि बख़िलाफ़ इस के ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने मोअजिज़ा दिखाने की क़ुदरत से इन्कार किया और बोले हम ना मानेंगे तेरा कहा जब तक तू बहा निकाले हमारे वास्ते ज़मीन से एक चशमा या हो जाये तेरे वास्ते एक बाग़ खजूर और अंगूर का फिर बहा निकाले उस की नहरें चला कर या गिरा दे आस्मान हम पर जैसा कि कहा करता है टुकड़े टुकड़े, या ले आए फ़रिश्तों को और अल्लाह को ज़ामिन, अलीख (यानी आखिर तक पढ़े।) तू कह मैं कौन हूँ, मगर एक आदमी हूँ भेजा हुआ" (बनी-इस्राईल 17:92-95) मुहम्मद ﷺ कहा करते थे कि अगले नबी अपनी उम्मत की तरफ़ भेजे गए थे, लेकिन मैं तमाम जहान के वास्ते भेजा गया हूँ। औरों ने जो मोअजज़ात दिखाए, वो उन्हीं के ज़माने के मुनासिब थे। लेकिन इस्लाम का मोअजिज़ा यानी क़ुरआन हमेशा के वास्ते है। ये भी एक निशानी तस्दीक़ रिसालत को काफ़ी थी और किसी निशानी की एहतियाज ना थी।

और उमूर में आप सब नबियों के बराबर और बाअज़ बड़े थे और चंद आयात क़ुरआनी अपने दावा की ताईद में पेश करते हैं। मसलन शेख़ जलाल उद्दीन से सिवती लिखते हैं कि आदम को अगर ख़ुदा ने हर चीज़ का नाम बताने की क़ुदरत दी थी तो मुहम्मद अरबी को वही क़ुदरत थी। और बस आस्मान को उठाए गए, लेकिन मुहम्मद अरबी को मुक़ाम क़ाब क़ौसैन (दो हाथ का फ़ासिला, दो कमानों फ़ासिला) मिलायानी शब मेअराज को आपके और ख़ुदा के दर्मियान सिर्फ़ क़ाब क़ौसैन यानी दो कमानों का फासला रह गया था। वहां जिब्रईल शदीद-उल-क़वा आप पर ज़ाहिर हुए। (नज्म 53:5-9) इस्माईल क़ुर्बानी को सिर्फ आमादा ही हुए थे, लेकिन मुहम्मद अरबी पर शक़ सद[39] (सीना चाक करने का वाकये) का वक़ूअ हुआ।

यूसुफ़ का हुस्न महदूद था, लेकिन मुहम्मद अरबी का हुस्न कामिल था। मूसा ने पत्थर से पानी निकाला, लेकिन मुहम्मद अरबी ने अपनी उंगलीयों से पानी जारी किया। यशवा ने सूरज चलने से रोक दिया था, ऐसा ही मुहम्मद अरबी ने किया। सुलेमान के पास बड़ी सल्तनत थी, लेकिन मुहम्मद अरबी की सल्तनत इस से बद्रजहा ज़्यादा थी। क्योंकि आपके हाथ में ज़मीन के ख़ज़ानों की कुंजियाँ थीं। जैसे युहन्ना इस्तिबाग़ी को ख़ुदा ने लड़कपन में हिक्मत दी थी, ऐसी ही आपको अह्द तुफ़ुलिय्यत (बचपन) में हिक्मत व दानाई ख़ुदा ने अता की थी। ख़ुदावंद यसूअ मुर्दों को ज़िंदा कर सकता था। ऐसे ही मुहम्मद अरबी भी कर सकते थे। इलावा इन मोअजज़ात के जो मोअजज़ात आप ही से मख़्सूस हैं,वो ये हैं। शक़ क़मर, मेअराज और दरख़्त का आपके सामने चला आना और सबसे बड़ा मोअजिज़ा क़ुरआन है।" (शरह अक़ाइद जामी)

शक़ क़मर का ज़िक्र सूरह क़मर (की) आयत में इस तरह आया है कि **"पास आ लगी वो घड़ी और फट गया चांद।"** इमाम ज़ाहिद कहते हैं कि अबु जहल और एक यहूदी एक रात पैग़म्बर पास पहुंचे। अबू जहल ने कहा ऐ मुहम्मद अरबी मुझे कोई निशानी दिखा, वर्ना तेरा सर तल्वार से उड़ा

39 क्या हमने नहीं खोल दिया तेरा सीना? (सुरह अलमनश्रह 94:1) हदीस में आया है कि बलूग़त से क़ब्ल दो फ़रिश्तों ने मुहम्मद साहब का सीना चाक कर के नुक़्ता स्याह निकाल लिया। नीज़ बहुत से और भी अजाइबात भी मोअजिज़े के मुताल्लिक़ हैं।

दूँगा। आपने अंगुश्त सपाबा से इशारा किया कि फ़ील-फ़ौर चांद दो टुकड़े हो गया। एक टुकड़ा अपनी जगह पर क़ायम रहा और दूसरा बहुत दूर चला गया। ये निशानी देखकर यहूदी तो इस्लाम लाया, अबु जहल ने कहा कि ये जादू है। मगर जब जमाअत मुसाफ़िरों से दर्याफ़्त किया गया तो उन्होंने इक़बाल किया कि इस रात हमने चांद के दो टुकड़े देखे थे। (तफ़्सीर हुसैनी, सफ़ा 362) मगर बाज़ों के नज़्दीक इस आयत में ज़माना आइंदा की तरफ़ इशारा है, क्योंकि चांद का फटना क़ियामत की एक निशानी होगी। शब मेअराज (जिस रात मुहम्मद अरबी आस्मान गए) का ज़िक्र क़ुरआन में इस तरह आया है कि :-

"पाक ज़ात है जो ले गया अपने बंदे को रातों रात अदब वाली मक्का (से परली मस्जिद तक, जिसमें हमने खूबियां रखी हैं कि दिखाएं उस को कुछ अपनी क़ुदरत के नमूने।" (सुरह बनी-इस्राईल 17:1)

मुसलमान मुसन्निफ़ जो अजाइब पसंद हैं इस सब के कुल वाक़ियात को जो मुहम्मद अरबी को पेश आए ब-तफ़्सील बयान करते हैं। जिसे मज़ीद तफ़्सील की ज़रूरत हो इम्मानुएल डीचा की किताब सफ़ा 12-99 देखे। लेकिन बाअज़ कहते हैं कि ये सिर्फ एक रोया (रूहानी सफ़र नाकि जिस्मानी मेराज़) था और इस्बात (सबूत) दाअवे[40] में इन अल्फ़ाज़ से इस्तिदलाल करते हैं। "हमने तर्तीब दिया इस रोया को जो तुझे दिखाई थी।" अल-ग़र्ज़ तमाम सुन्नी मुसलमान ये दावा करते हैं कि मुहम्मद अरबी के मोअजज़ात दिखाने में तमाम अम्बिया पर फ़ज़ीलत है।

---

40 मेअराज की निस्बत जो कुछ अक़ीदा रखना मुसलमानों को ज़रूरी है, वो ये है कि मुहम्मद साहब ने आलम-ए-रोया में देखा कि मक्का से मस्जिद अक़्सा (यरूशलम) तक गया हूँ और इस रोया में अपने रब की निहायत बड़ी निशानीयां आपने दर-हक़ीक़त देखीं (ख़ुत्बात अहमदिया, ख़ुत्बा 6, सफ़ा 34) ये राय अगरचे सही है मगर सुन्नीयों के नज़्दीक मोअतबर नहीं। बल्कि वो ये कहते हैं कि जो कोई इस बात का क़ाइल ना हो कि आपका जिस्म मक्का से मस्जिद अक़्सा तक गया, वो ऐसा ही काफ़िर है जैसे नस क़ुरआन का मुन्किर काफ़िर है और आपके आस्मान पर जाने से और इस रात के अहवाल से जो अहादीस में मुंदरज है, मुन्किर हो तो वो फ़ासिक़ है, अगरचे मुसलमान है।

(5) रोज़-ए-महशर और रोज़-ए-आख़िरत

दोनों का बयान मिला कर लिखा जाता है जो कुछ मुहम्मद अल-बर्ख़ीवी ने इस बाब में लिखा है उस का ख़ुलासा मुंदरजा ज़ैल है :-

(1) इस पर ईमान लाना ज़रूरी है कि क़ब्रें अल-यक़ीन शक़ हो जाएँगी और मुन्किर नकीर (देखो सफ़ा 145) आकर मुर्दे से पूछेंगे कि तेरा माबूद कौन है और तेरे नबी का क्या नाम है? तेरा ईमान क्या है और क़िब्ला कहाँ है? तो मोमिन जवाब देगा। अल्लाह हमारा माबूद है और मुहम्मद अरबी हमारे नबी हैं और इस्लाम हमारा दीन और काअबा हमारा क़िब्ला है।

(2) जो अलामतें क़ियामत की नबी ने बताई हैं, सब ज़ाहिर होंगी। दज्जाल (झूटे मसीह) का ज़हूर, ईसा का आस्मान से नुज़ूल, इमाम महदी का और याजूज माजूज का ज़हूर, सूरज का पच्छिम से तलूअ वग़ैरह ज़ालिक।

(3) सब जानदार मर जाऐंगे। पहाड़ हवा में परिंदों की तरह उड़ते फिरेंगे। आस्मान सब नापैद हो जाएँगे। चंद मुद्दत तक यही हाल रहेगा। इस के बाद ख़ुदा तआला फिर दुनिया को दुरुस्त करेगा और मुर्दों को जिलाएगा। अम्बिया, औलिया, उलमा अशरा और मोमिन देखेंगे कि उनके पास बहिश्त (जन्नत) के कपड़े रखे हैं और सवारियां खड़ी हैं। वो सब कपड़े पहन कर और घोड़ों पर सवार हो कर ख़ुदा के अर्श के साये तले जा खड़े होंगे। बाअज़ आदमी भूके, प्यासे और नंगे पियादा चलेंगे। मोमिन दाएं जानिब को और काफ़िर बाएं जानिब को चलेंगे।

(4) वहां एक तराज़ू होगा जिसमें लोगों के बुरे और अच्छे आमाल तोले जाऐंगे और जिनका नेकी का पल्ला भारी होगा, वो बहिश्त (जन्नत) को जाऐंगे और जिनका बदी का पल्ला भारी होगा, वो दोज़ख़ में रहेंगे। ता आंका ख़ुदा उन पर रहम करे या अम्बिया और औलिया शफ़ाअत करें। जो मुसलमान नहीं हैं उनकी कोई शफ़ाअत नहीं करेगा और ना वो कभी दोज़ख़ से निकलेंगे। जो मुसलमान दोज़ख़ में जाऐंगे वो दोज़ख़ की आग से गुनाहों से पाक हो कर फिर बहिश्त में दाख़िल होंगे।

(5) पुल सिरात जो तल्वार से तेज़ और बाल से बारीक है। दोज़ख़ पर खड़ा होगा। सबको इस पर से उतरना पड़ेगा। बाअज़ उसे ऐसी जल्दी तै कर जाऐंगे, जैसे बिजली जाती है और बाअज़ घोड़े की तरह और बाअज़ गुनाहों के बोझ के सबब से बहुत आहिस्ता चलेंगे और बाअज़ कट कर दोज़ख़ में गिर पड़ेंगे।

(6) हर नबी के पास एक हौज़ होगा जो अपनी अपनी उम्मत के प्यासों को बहिश्त में दाख़िल होने से पहले पानी पिलाते होंगे। लेकिन मुहम्मद अरबी का हौज़ सबसे बड़ा होगा। एक सिरे से दूसरे तक एक महीने की मुसाफ़त होगी। इस का पानी शहद से मीठा और दूध से सफ़ैद होगा।

(7) बहिश्त व दोज़ख़ दर-हक़ीक़त मौजूद हैं। मक़्बूल हमेशा बहिश्त में रहेंगे। ना कभी मौत आएगी और ना बूढ़े होंगे। हूरें और औरतें इन सब अवारिज़ (बीमारीयों) से जो उनकी जिन्स को हुआ करती हैं, महफ़ूज़ रहेंगी। बाल बच्चे मुतलक़ नहीं जनेंगी। बहिश्तीयों को बग़ैर मेहनत व मशक़्क़त के जो चाहेंगे, खाने और पीने को मिलेगा। बहिश्त की ज़मीन मुश्क की और ईंटें सोने चांदी की होंगी। काफ़िर और शयातीन हमेशा दोज़ख़ में रहेंगे और ऐसे मोटे साँपों से जैसे ऊंट की गर्दन और ऐसे बिच्छूओं से जैसे ख़च्चर और आग से और गर्म खोलते पानी से दोज़ख़ी सख़्त ईज़ा पाएँगे। उनके बदन जल कर कोयला हो जाऐंगे। ख़ुदा तआला फिर उन्हें जिलाएगा ताकि फिर वही तक्लीफ़ उठाएं। हमेशा यही हाल रहेगा। इसी क़िस्म का मज़ीद बयान शरह अक़ाइद जामी से अख़ज़ कर के ब-तर्तीब वाक़ियात ज़ेल में दर्ज किया जाता है।

(1) नफ़्ख़तीन सूर

सूर का दो बार फूँका जाना। मगर ये वाक़िया उस वक़्त तक ना होगा जब तक कि तमाम दुनिया में कुफ़्र व बेईमाअनी ना फैल जाये। नबी ने फ़रमाया कि "क़ियामत नहीं आएगी जब तक कि मेरी उम्मत में से बाअज़ फ़रीक़ मुशरिक ना हो जाएं और बाअज़ क़ब्रों को ना पूजने लगें।" और फूँका गया नर्सिंगा। फिर बेहोश हो गिरा जो कोई है आसमानों में और ज़मीन में, मगर जिसको अल्लाह ने चाहा। फिर फूँका गया दूसरी बार तब ही खड़े हो गए।" (सूरह ज़ुमर 39:68) एक सहाबी अबू हुरैरा बयान करते हैं कि

पैग़म्बर अरबी ने सूर के ज़िक्र में ये फ़रमाया था कि बाद पैदा करने आस्मान व ज़मीन के ख़ुदा ने सूर बनाया और वो सूर-ए-इस्राफ़ील को दिया जो अपने मुँह से लगाए खड़े हैं और मुंतज़िर हैं कि जिस वक़्त हुक्म हो, उसी वक़्त फूंक दें। तीन दफ़ाअ सूर फूँका जाएगा।

(1) सूर फूंकेंगे तो सब डर जाऐंगे। दूसरा सूर फूंकेंगे तो सब मर जाऐंगे। तीसरे सूर से मुर्दे जी उट्ठेंगे अक्सर का ये अक़ीदा है कि सिवाए ख़ुदा की ज़ात व सिफ़ात के और किसी को मौत ना छोड़ेगी। करामियाह और बाअज़ और फ़रीक़ इस से इन्कार करते हैं। जिस्म का दो बार ज़िंदा होना, क़ुरआन से साफ़ साबित है। मसलन फिर अब कहेंगे कौन हमको उल्टेगा? कि जिसने तुमको पहली बार बनाया।" (बनी-इस्राईल 17:53) "कौन जिलाएगा हड्डियां जब ग़ल गईं? तू कह जिसने पहली बार बनाया, वही सब बनाने जानता है।" (सूरह यासीन 36:79) "और आदमी कहता है क्या जब मैं मर गया फिर जी निकलूँगा। क्या आदमी याद नहीं रखता कि हमने उसे बनाया पहले से और वो कुछ चीज़ ना था।" (सुरह मर्यम 19:29) "लोग कहते हैं क्या हम उल्टे पांव फिर आएँगे, क्या हम हो चुके गली हड्डियां। बोले ऐसा फिर आना नुक़्सान है फिर तो एक झड़की है कि इसी वक़्त मैदान में आ रहे। (सुरह अल-नाज़िआत आयात 10-14) "क्या ऐसा शख़्स ये क़ुदरत नहीं रखता कि मुर्दे जिलाए। (सुरह अल-कियामह 75:40) जब मुर्दे जी उट्ठेंगे तो उनका इन्साफ़ होगा और मुन्किर कहने लगे हम पर वो घड़ी नहीं आएगी तू कह क्यों नहीं क़सम है मेरे रब की जो आलिमुल गैब है। अलबत्ता आएगी ताकि उनको जो यक़ीन लाए और भले काम किए बदला दे और जो लोग दौड़े हमारी आयतों के हराने को उनको बला की दुख वाली मार है।" (सुरह सबा 34:3-4) उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है। जिस दिन बाअज़ मुँह सफ़ैद और बाअज़ स्याह होंगे। सो जिनके मुँह स्याह हुए उनसे कहा जाएगा आया बाद ईमान लाने के तुम काफ़िर हो गए। सो अब चखो अज़ाब कुफ़्र करने का बदला और जिनके मुँह सफ़ैद हुए वो अल्लाह की रहमत में हैं वो इसी में रह पड़े।" (सुरह आले-इमरान आयत 102) नबी को मालूम ना था कि ये सब वाक़ियात किस ज़माने में होंगे। "तुझसे पूछते हैं वो घड़ी कि कब उस का ठहराव है। मुझे उस का क्या इल्म है। तेरे रब

की तरफ़ उस की पहुंच है। तो तू डर सुनाने को है, उस को जो उस से डरता है। (सुरह अल-नाज़िआत 79:41-45) इन आयात से और इसी क़िस्म की और आयात से हश्र का होना यक़ीनन साबित होता है। जिस किसी को इस पर शक हो वो हस्बे इज्मा मोमिनीन काफ़िर है।

मोतज़िला अक़्लन ये सबूत देते हैं कि बिअसत बदन के अज़ाब व सवाब के वास्ते ज़रूरी है। सुन्नी भी इस के क़ाइल हैं, लेकिन इस की बुनियाद अक़्ली सबूत पर रखने को बुरा जानते हैं। (शरह अक़ाइद जामी, सफ़ा 183) किरामयों के नज़्दीक बदन के आज़ाए मुख़्तलिफ़ दूर ना होंगे, बल्कि रोज़ आख़िरत ख़ुदा उन्हें जोड़ देगा। "क्या आदमी जानता है कि हम उस की हड्डियां जमा नहीं करेंगे। बेशक हम क़ुदरत रखते हैं कि उस की उंगलीयों के पोरे तक ठीक कर दें।" (सुरह अल-कियामाह 3-4) मगर सुन्नीयों के नज़्दीक इस से बातिल नहीं होता कि बदन नहीं गलेगा। चुनान्चे उनके अक़ीदे की ताईद नबी के क़ौल से भी होती है और वो ये है कि तमाम आदमज़ाद नापिद हो जाएंगे।" अगरचे बदन पहली हालत पर ऊद करेगा, लेकिन इस में शक नहीं कि पैदाइश की तज्दीद होगी। आलिम इस पर मुत्तफ़िक़ नहीं हैं कि रूह का हाल दारे असना मर्ग जिस्म क्या होगा। इसी सबब से बिअसत बदन की निस्बत भी उनमें इख़्तिलाफ़ है। बाअज़ कहते हैं कि रूह के जी उठने की गुफ़्तगु बेजा है, क्योंकि वो बदन में ऐसे ही मौजूद है, जैसे कोयले में आग। इस वास्ते बिअसत बदन में वो भी शामिल है। बाअज़ कहते हैं कि रूह जुदा चीज़ है। बदन के साथ नहीं मरती। मुतकल्लिमीन अव्वल राय को तर्जीह देते हैं। दोनों सूरतों में नतीजा एक ही मालूम होता है यानी जो बदन जी उट्ठेगा उस में रूह भी होगी। अक़्लमंद और बेवक़ूफ़, शयातीन, चौपाए, कीड़े मकोड़े और परिंद सब हश्र के दिन जी उट्ठेंगे। पहले मुहम्मद अरबी उट्ठेंगे और बहिश्त में भी पहले वही जाऐंगे।

(2) ततीर सहाइफ़

बिअसत के बाद चालीस बरस तक आदमी आवारा फिरते रहेंगे। इसी अरसे में आमाल-नामे उन्हें दीए जाऐंगे। किरामन कातबीन के सब नविश्ते इन

किताबों में होंगे। (सफ़ा 141) अबू हुरैरा से रिवायत है कि आदमी नंगे और परेशान उट्ठेंगे। बाअज़ आवारा फिरते रहेंगे और बाअज़ चालीस बरस तक खड़े रहेंगे। सबकी निगाहें आस्मान की तरफ़ होंगी। आमाल नामों के इंतिज़ार में रंज के मारे बदन से पसीना छूटता होगा। बुख़ारी और मुस्लिम से रिवायत है कि ये पसीना सत्तर गज़ तक बहेगा और नबा गोश तक पहुँचेगा। फिर ख़ुदाए तआला इब्राहिम से कहेगा कि तू पोशाक पहन। इब्राहिम बहिश्ती लिबास ज़ेब-ए-बदन करेंगे। फिर ख़ुदा मुहम्मद अरबी को पुकारेगा और एक नहर जो मक्का से बहुत दूर ना होगी आपको इनायत करेगा। जो कोई एक बार उस का पानी पिएगा फिर कभी प्यासा ना होगा। मुहम्मद अरबी कहते हैं कि "मैं भी बहिश्त (जन्नत) का लिबास पहन कर तख़्त के पास खड़ा हूँगा। जहां सिवाए मेरे और कोई खड़ा ना हो सकेगा। उस वक़्त ख़ुदाए तआला मुझसे फ़रमाएगा जो चाहता है मांग तुझे दिया जाएगा और शफ़ाअत कर, तेरी शफ़ाअत मक़्बूल होगी और हर शख़्स का आमाल-नामा ख़ुदा के तख़्त के नीचे ख़ज़ाना ग़ैब से उड़ कर उस के हाथ में पहुँचेगा और जो आदमी है, उस की बुरी क़िस्मत उस की गर्दन से हमने लगा दी और क़ियामत के दिन उसे लिखा हुआ निकाल दिखाएँगे, जिसे वो खुला पाएगा। पढ़ ले अपने लिखे को। तू ही बस है आज के दिन अपना हिसाब लेने वाला।" (सुरह बनी-इस्राईल आयत 15) "जिसको उस का लिखा दाहने हाथ में मिला तो उस से आसान हिसाब लेना है और वो अपने लोगों के पास ख़ुशवक़्त फिर कर आए और जिसे उस का लिखा पीठ के पीछे से मिला वो मौत को पुकारेगा। (सुरह अल-इन्शीक़ाक़ आयत 11) "और जिसे उस का लिखा बाएं हाथ में मिला वो कहता है किसी तरह मुझको मेरा लिखा ना मिलता और मुझको ख़बर ना होती कि ये मेरा हिसाब है।" (सुरह हाक़्क़ा आयत 2) और ये भी लिखा है कि "गुनाहगार मुसलमानों को दोज़ख़ में डालने से पहले दहने हाथ से पकड़ेंगे और ये शनाख़्त इस अम्र की है कि वो हमेशा दोज़ख़ में नहीं रहेंगे।

बाज़ों के नज़्दीक "पढ़ ले अपना लिखा" से लफ़्ज़ी मअनी मुराद हैं और बाअज़ के नज़्दीक मिजाज़ी बयान है, जिसका मतलब इसी क़द्र है कि उन पर उनके अफ़आल ज़ाहिर हो जाऐंगे। जो लफ़्ज़ी मअनी के क़ाइल हैं वो

कहते हैं कि हर मोमिन अपने मोमिन अपने आमाल बद आप पड़ेगा और उस के नेक–आमाल दूसरे पढ़ेंगे। मोमिन का चेहरा पढ़ते वक़्त चमकता होगा और काफ़िर का स्याह होगा।

(3) मीज़ान यानी तराज़ू

इस का सबूत क़ुरआन व सुन्नत व इज्मा से है। इस वास्ते कोई मुसलमान इस पर शुब्हा नहीं कर सकता। "सो जिनकी तोलें भारी हुईं वही काम ले निकले और जिनकी हल्की हुईं सो वही हैं जो अपनी जान हार बैठे, दोज़ख़ में रहा करेंगे। (सुरह मोमिनुन 23:104) सो जिसकी तोलें भारी हुईं तो उस को मन मानती गुज़रान है और जिसकी तौलें हल्की हुईं तो उस का ठिकाना गढ़ा है और तू क्या समझा कि वो क्या है। दहकती आग है। (सुरह अल-क़ारिया आयत 5) बेशुमार अहादीस इस बाब में वारिद हैं। इज्मा को भी ग़लबा इसी तरफ़ है कि तराज़ूओं का वजूद हक़ीक़तन होगा और उस के पल्ले वग़ैरह भी होंगे और ये भी साबित होता है कि सहाइफ़ आमाल तोले जाऐंगे। सही बुख़ारी में आया है कि ख़ुदा फ़रमाएगा ऐ मुहम्मद तेरी उम्मत में जिन लोगों से हिसाब नहीं लिया है, वो बहिश्त में दाख़िल हों। अम्बिया और मलाइका (फरिश्तों) से भी हिसाब नहीं होगा। काफ़िरों से भी इस क़िस्म का इम्तिहान नहीं लिया जाएगा, क्योंकि उनका हाल ग़फ़ीर इम्तिहान के ख़ुद बख़ुद ज़ाहिर होगा। "गुनाहगार अपने चेहरे से पहचान पड़ेंगे और माथे के बाल और पांव से पकड़े जाऐंगे।" (सूरह रहमान 55:41) पस ज़ाहिर है कि मोमिनों और ग़ैर मोमिनों में उन्हीं के आमाल तोले जाएंगे जिन्हें ख़ुदा क़ुबूल करे। मगर बाअज़ ये दावा करते हैं कि किसी काफ़िर का मुतलक़ इम्तिहान नहीं होगा और ये आयत बताईद अपने दावे के पेश करते हैं। "सो उस के आमाल मिट गए। फिर ना खड़ी करेंगे उनके वास्ते तौल।" (सुरह कहफ़ 18:105) इस का ये जवाब दिया जाता है कि उनके वास्ते तौल खड़ी ना करने से मुराद ये है कि वो तौल उनके मुवाफ़िक़ ना होगी। जिस जगह आमाल तोले जाऐंगे वो जगह बहिश्त व दोज़ख़ के दर्मियान है। जिब्रील पुलों की हरकत पर निगाह रखेंगे और मीकाईल तराज़ू को देखते होंगे। सुन्नी इस पर मुत्तफ़िक़ नहीं हैं कि हर क़ौम की तराज़ू अलेहदा (अलग) खड़ी होगी या ये कि मोमिनों के हर अमल नेक के वास्ते एक तराज़ू अलग होगी। मसलन नमाज़ की अलग और रोज़ों की अलग होगी। अला हाज़ा-उल-क़यास, वो कहते हैं कि मुवाज़ में बसेगा जमा बमाअनी

तराज़ूओं के इसी सबब से आया है और इस में भी इख़्तिलाफ़ है कि आया ख़ुद आमाल बा सहाइफ़ तोले जाऐंगे। पिछली राय एक हदीस से जो तिर्मिज़ी ने बयान की है साबित होती है। नबी ने कहा कि 99 सहाइफ़ मुनक़सिम (बटे) होंगे और हर सहीफ़ा इतना बड़ा होगा जहां तक कि निगाह पहुंच सकती है। ख़ुदा फ़रमाएगा ऐ बंदे क्या तुझे इस से इन्कार है या फ़रिश्तों ने तेरे साथ ना इंसाफ़ी की। हर शख़्स जवाब देगा कि नहीं ऐ रब। फिर ख़ुदा कहेगा कि अच्छा अब तुम्हें उज़्र है। वो कहेंगे ऐ रब हमें कुछ उज़्र नहीं। फिर ख़ुदा एक पर्चा ऐसा ज़ाहिर करेगा जिस पर कलिमा लिखा होगा और इस कलिमे को एक पल्ले में रख के ख़ुदा कहेगा कि ऐ शख़्स तेरे लिए कुछ बुराई ना होगी। अगर तू सहीफ़े को इस पल्ला में रख दे और कलिमे को उठा कर दूसरे में रख दे। क्योंकि पहला पल्ला हल्का रहेगा। ग़रज़ कि इस हदीस से समझते हैं कि सहाइफ़ बिलयक़ीन तोले जाऐंगे। लेकिन मोतज़िला ऐसी बातों पर मोअतरिज़ हैं। वो कहते हैं कि आमाल वाक़ियात से हैं और सुबकी व गिरानी (सुबकी: शर्मिंदगी, ज़िल्लत, गिरानी: बोझ, महंगाई) ऐसे औसाफ़ नहीं हैं जो औसाफ़ से मंसूब हो सकें। कुल आयात क़ुरआनी और अहादीस जो इस बाब में वारिद हैं, उनके नज़्दीक मजाज़ी हैं जिनका नफ़्स मतलब ये है कि अदालत के दिन पूरा पूरा इन्साफ़ होगा।

(4) सिरात

इस लफ़्ज़ के मअनी राह और सड़क के हैं। क़ुरआन में भी ये लफ़्ज़ आया है। रोज़ इन्साफ़ की निस्बत इस तरह लिखा है, "और अगर हम चाहें उनकी आँखें मिटा दें फिर राह चलने दौड़ें।" (सुरह यासीन 36:66) "गुनाहगारों को और उनके जोड़ों (शयातीन) को और जो कुछ पूजते थे ख़ुदा के सिवाए उनको जमा करो। फिर उनको दोज़ख़ की राह (सिरात) पर चलाव।" (सुरह साफ्फ़ात 37:23) क़ुरआन में सिरात को कहीं पुल से ताबीर नहीं किया है। अलबत्ता एक हदीस इस अम्र पर साफ़ दलालत करती है। नबी ने कहा है एक पुल तल्वार से तेज़ और बाल से बारीक दोज़ख़ के ऊपर होगा और उस पर लोहे के तेज़ कांटे लगे होंगे, जिन्हें ख़ुदा चाहेगा उन्हें वो कांटे छेद लेंगे। बाअज़ तरफ़-उल-ऐन में और बाअज़ बर्क़ की मानिंद रफ़्तार से और बाअज़ तेज़ घोड़े की तरह उस पर से उतर जाऐंगे। फ़रिश्ते पुकारेंगे ऐ रब तू बचा और महफ़ूज़ रख। बाअज़ मुसलमान बच जाऐंगे और बाअज़ दोज़ख़ में गिर पड़ेंगे। बुख़ारी ने भी इसी क़िस्म की एक हदीस बयान की है। सब काफ़िर दोज़ख़ में गिर पड़ेंगे और हमेशा वहां ही रहेंगे। मगर चंद मुद्दत के बाद छूट जाऐंगे। मोतज़िला को ऐसे पुल के वजूद से इन्कार है। वो कहते हैं कि अगर हम फ़र्ज़ करें कि इस का वजूद है तो मोमिनों के हक़ में भी तक्लीफ़ का मूजिब होगा यानी मुसलमानों को उस पर से उतरना पड़ेगा। हालाँकि इन्साफ़ के दिन मुसलमानों को कुछ तक्लीफ़ ना होगी। सुन्नी इस का ये जवाब देते हैं कि मोमिन इस पर से इसलिए उतरेंगे कि ख़ूब ज़ाहिर हो जाये कि किस तरह दोज़ख़ से बचे और बहिश्त की राहत पहचानें और नीज़ इस वास्ते कि काफ़िर उन्हें हमेशा के वास्ते बचा हुआ देखकर मुनफ़इल (शर्मिंदा, शर्मसार) हों।

अल-आराफ़ बहिश्त व दोज़ख़ के दर्मियान वाक़ेअ है। क़ुरआन में इस की तफ़्सील इस तरह है "और दीवार (आराफ़) के सिरे पर मर्द हैं जो हर एक को उस के निशान से पहचानते हैं और पुकारा जन्नत वालों को कि तुम पर सलामती है। वो जन्नत में नहीं दाख़िल हुए, मगर उम्मीदवार हैं और जब उनकी निगाह दोज़ख़ वालों की तरफ़ फिरे, बोले ऐ रब हमको दोज़ख़ वालों

के साथ मत कर।" (सुरह आराफ़ 7:44-45) सेल साहब ने दीबाचा किताब में अल-आराफ़ की निस्बत जितनी राएं हैं उनका ख़ुलासा जो किया है, निहायत उम्दा है और वो इस तरह है :-

"मुसलमान उसे अल-अरफ़ (العرف) बल्कि बेशतर बसेगा जमा यानी अल-आराफ़ (الاعراف) कहते हैं। ये लफ़्ज़ मुसद्दिर अरफ़ता (عرفتہ) से निकला है जिसके मअनी शनाख़्त और इम्तियाज़ के और जुदा करने के हैं। लेकिन बाअज़ मुफ़स्सिर इस नाम की वजह और कुछ बयान करते हैं। यानी वो ये कहते हैं कि जो लोग उस के सिरे पर खड़े होंगे, वो बहिश्तीयों और दोज़ख़ियों को उनके मख़्सूस निशानों और वस्फ़ों से पहचान लेंगे, और बाअज़ कहते हैं कि इस लफ़्ज़ से इबारत वो चीज़ है जो बुलंद हो और ऊंची उठी हो। मसलन बहिश्त व दोज़ख़ की दरमयानी दीवार कि सतह से ऊंची है और बाज़ों के नज़्दीक वो एक मुक़ाम है जहां ख़ास बंदे अम्बिया, शोहदा और वो लोग जो निहायत पाक-बाज़ हैं, रिहा करेंगे। बाअज़ कहते हैं कि इस मुक़ाम पर वो लोग रहेंगे जिनके आमाल नेक व बद बराबर होंगे। क्योंकि ऐसे लोग नालायक़ सवाब के, ना मुस्तूजिब अज़ाब के हैं। लेकिन बक़ौल उनके ये लोग रोज़ आख़िरत को कोई सवाब का काम करेंगे जिससे नेकी का पल्ला भारी हो जाएगा। तब वो बहिश्त में दाख़िल होंगे। बाअज़ समझते हैं कि ये मुक़ाम उन लोगों का मस्कन होगा जो बग़ैर इजाज़त वालदैन के ग़िज़ा मज़हबी जंग, (जिहाद) पर गए हैं और शहादत पाई है। क्योंकि माँ बाप की ना-फ़रमानी के सबब से बहिश्त से ख़ारिज किए जाऐंगे और शहादत के सबब से दोज़ख़ से महफ़ूज़ रहेंगे। (मन्क़ूल अज़ दीबाचा सेल साहब) और नीज़ इस दुनिया की बदनी मौत और रोज़ आख़िरत के दर्मियान फ़स्ल है, जिसे बर्ज़ख़ और अल-बरज़ख़ कहते हैं और उनके पीछे अटकाओ है जिस दिन तक उठाए जाएं। (सुरह अल-मोमिनुन 23:102)

जब मौत आई है तो मलक-उल-मौत बदन से रूह को जुदा करता है। जो लोग नेक हैं उनकी जान आसाइश से और जो बुरे हैं उनकी जान सख़्ती व दुशवारी से निकलती है। इस के बाद रूह आलम-ए-बजर्ख़ में पहुँचती है। (बाअज़ अजीब राएं जो अहवाल रूह की निस्बत हैं उन्हें सेल साहब के दीबाचा दफ़ाअ 4, सफ़ा 55 में देखो) इज्मा से ये क़रार पाया है कि ख़ुदा

के यहां शिर्क की बख़्शिश नहीं होगी। ख़ुदा के साथ दूसरे को शरीक करने को शिर्क कहते हैं। मुशरिक यानी शिर्क करने वाले हमेशा दोज़ख़ में रहेंगे, क्योंकि कुफ़्र व शिर्क ऐसा सख़्त जुर्म है कि इस की तअज़ीर हमेशा का अज़ाब है। "और शिर्क वाले दोज़ख़ की आग में सदा रहेंगे। वो लोग सब ख़ल्क़ से बदतर हैं।" (अबकन उद्दीन 98:50) तुम दोनों हर नाशुक्र मुख़ालिफ़ को दोज़ख़ में डालो। नेकी से अटकाने वाला, हद से बढ़ने वाला शबे निकालता, जिसने अल्लाह के साथ और पूजना ठहराया तो उस को सख़्त मार में डालो।" (23:25) जो मुसलमान गुनाह कबीरा के मुर्तक़िब हैं अगर बग़ैर तौबा के मरें तो भी दोज़ख़ में हमेशा नहीं रहेंगे, क्योंकि ज़र्रा भर भलाई की वो उसे देख लेगा। (सुरह ज़िलज़ाल 99:7)

मुसलमान ये दावा करते हैं कि इस्लाम लाना भी अमल नेक है। इस का सिला भी ज़रूर मिलेगा। लेकिन क़ब्ल अज़ आंका दोज़ख़ में पहुंच कर अपने आमाल की सज़ा पाए, ये सिला नहीं मिलेगा। इस सबब से चंद मुद्दत के बाद अज़ाब से रिहाई पाएगा। ईमान-ए-कामिल यही है कि सच्चे दिल से यक़ीन करे और इस के मुवाफ़िक़ अमल करे, लेकिन आमाल फ़ी नफ़्सही ईमान नहीं हैं। इसी जन्नत से क्या हर इन्सान को ईमान-ए-कामिल से रोकते हैं, लेकिन इस से ईमान ज़ाए नहीं होता, ना उस का मुर्तक़िब काफ़िर है बल्कि सिर्फ़ गुनाहगार है। (तक्मील-उल-ईमान, सफ़ा 47) मोतज़िला कहते हैं जो मुसलमान दोज़ख़ में जाऐंगे, वो हमेशा उसी में रहेंगे। उनके नज़्दीक जो मुसलमान कबाइर (बड़े गुनाहों) का मुर्तक़िब हो और बग़ैर तौबा के मर जाये अगरचे काफ़िर नहीं होता, लेकिन मोमिन भी नहीं रहता। इस वास्ते उस को भी वही सज़ा होगी जो काफ़िरों को होती है। सुन्नीयों का ये अक़ीदा है कि मुहम्मद अरबी बिलफ़अल भी हमारे शफ़ी हैं, लेकिन शफ़ाअत कई तरह पर है। एक तो शफ़ाअत कुबरा है, जिसकी तरफ़ इन अल्फ़ाज़ से कि ان یبعثک ایک مقاماً محمود اً शायद खड़ा करे तुझको तेरा रब तारीफ़ के मुक़ाम (मुक़ाम महमूद) में इशारा है। मुक़ाम महमूद से इबारत वही इबारत दी शफ़ाअत का मुक़ाम है जिसमें सब लोग आपकी तारीफ़ करेंगे। (तफ़्सीर हुसैनी, सफ़ा 397) ज़ाद अल-मसीर (زادالمصیر) में लिखा है कि मुक़ाम महमूद से ये मुराद है कि ख़ुदा नबी को तख़्त पर बिठाएगा। बाअज़

कहते हैं कि वो मुक़ाम है जहां कि आपको एक इल्म मिलेगा जिसके गर्द सब अम्बिया आप की ताअज़ीम बजा लाने को जमा होंगे। मगर पहली राय पर अक्सर का इत्तिफ़ाक़ है कि लोगों को बड़ा ख़ौफ़ होगा। मुहम्मद अरबी फ़रमाएँगे "ऐ मेरी उम्मत ! मैं शफ़ाअत के वास्ते मामूर हुआ हूँ।" फिर उन्हें ख़ौफ़ जाता रहेगा।

दूसरी शफ़ाअत इस क़िस्म की होगी कि बग़ैर हिसाब दीए लोग बहिश्त में चले जाऐंगे। मगर इस बाब में इख़्तिलाफ़ रिवायत है। तीसरी क़िस्म की शफ़ाअत उन मुसलमानों के वास्ते होगी जो दोज़ख़ में जाने के लायक़ हैं। चौथी क़िस्म की शफ़ाअत उन मुसलमानों के वास्ते होगी जो दोज़ख़ में जा चुके होंगे। सिवाए मुहम्मद अरबी के और कोई नबी इस क़िस्म की शफ़ाअत नहीं कर सकेगा। पांचवें क़िस्म की शफ़ाअत उन लोगों की तरक़्क़ी मन्सब के वास्ते होगी जो बहिश्त में होंगे। मोतज़िला को गुनाहगार मुसलमान की शफ़ाअत से इन्कार मुतलक़ है और अपने अक़ीदे की ताईद में ये आयत पेश करते हैं, "और उस दिन से बचोगे कि कोई शख़्स एक ज़र्रा किसी के काम ना आए और उस की तरफ़ से सिफ़ारिश क़ुबूल ना हो और उस के बदले में कुछ और ना लें और ना उनको मदद पहुंचे।" (सुरह बक़रह आयत 48) सुन्नी इस के जवाब में हदीस सहीह पेश करते हैं। मेरी शफ़ाअत मेरी उम्मत के उन लोगों के वास्ते होगी जो कबाइर के मुर्तक़िब हैं। अगर इस हदीस पर कुछ शुब्हा वारिद किया जाये तो वो कहते हैं इस में मुसलमानों का बयान नहीं है, काफ़िरों का है। (तफ़्सीर फ़ैज़ उल-करीम, सफ़ा 25)

हज़रत अनस से रिवायत है कि मुहम्मद अरबी ने कहा महशर के रोज़ मुसलमान हरकत ना कर सकेंगे और सख़्त परेशानी में मुब्तला हो कर कहेंगे, काश हम ख़ुदा से इल्तिजा करें कि हमारे वास्ते कोई शफ़ी पैदा करे जो हम इस मुक़ाम से निकलें और इस सख़्त तक्लीफ़ व रंज से नजात पाएं। फिर वो आदम से और अगले नबियों से मदद चाहेंगे, लेकिन वो सब उज़्र करेंगे कि हम ख़ुद गुनाहगार हैं। आख़िरश मूसा के पास जाऐंगे। वो ईसा रूह अल्लाह, कलिमतुल्लाह (کلمتہ اللہ) और रसूल अल्लाह के पास जाने को बताएंगे। ईसा भी कहेंगे कि मुहम्मद अरबी के पास जाओ जो ख़ुदा का बंदा है, जिसके अगले पिछले गुनाह सब माफ़ हो गए हैं। नबी अरबी कहते हैं

कि फिर मुसलमान मेरे पास आएँगे और मैं इज़न (हुक्म, इजाज़त) पा कर ख़ुदा के सामने उनकी शफ़ाअत करूँगा। (मिशकात-उल-मसाबेह किताब 22, बाब 12) मसीह की दूसरी आमद भी आसारे-ए-क़ियामत से है। "ईसा क्या है? एक बंदा है कि हमने उस पर फ़ज़्ल किया और वो निशान उस घड़ी का है।" (सुरह ज़ख़रफ़ 43:61) क़ुरआन से ये पाया जाता है कि वो इन्साफ़ नहीं करेगा बल्कि और नबियों की तरह ख़ुद इन्साफ़ किया जाएगा। "और हमने उनसे यानी नबियों से गाढ़ा क़रार लिया ताकि अल्लाह सच्चों से उनका सच्च पूछे। (यानी ख़िदमात मख़सूसा नबुव्वत को किस तरह अंजाम दिया) (सुरह अह्ज़ाब 33:7-8) "और इसलिए आएगा कि उन यहूद को जो उस से मुन्किर थे बताए और क़ियामत के दिन उनका बताने वाला होगा।" (सुरह निसा आयात 4:158) उस पर भी ईमान लाना ज़रूरी है कि पैग़म्बर अरबी को ख़ुदा ने एक हौज़ दिया है जिसे कौसर कहते हैं। कौसर का ज़िक्र क़ुरआन की इस आयत में है।, "हमने तुझे कौसर दी है।" (सुरह कौसर 108:1) बुख़ारी कहता है कि कौसर के मअनी ख़ैर कसीर हैं जो ख़ुदा ने अपने नबी को बख़्शी है। अबू बाश ने सईद से कहा लोग जानते हैं कि कौसर बहिश्त में एक नहर का नाम है। सईद ने जवाब दिया कि कौसर नहर है जिसमें ख़ैर कसीर है। इसी रावी से ये रिवायत है कि मुहम्मद अरबी ने कहा "वो मेरा हौज़ मुरब्बा है उस का पानी दूध से सफ़ैद और मशक से ख़ुशबूदार है। जो कोई उस में से पीएगा उम्र भर प्यासा ना होगा।" बहिश्त में मोमिनों के वास्ते राहत के मुतअद्दिद मदारिज हैं। तिर्मिज़ी से रिवायत है कि नबी ने फ़रमाया "बहिश्त में एक सौ दर्जे में जिनमें बाअज़ तो उन आठ नामों में होंगे जो बहिश्त के वास्ते मुईन हैं :-

(1) जन्नत-उल-ख़ुलद (جنت الخلد) तो कि भला ये चीज़ बेहतर है या हमेशा रहने का बाग़ जन्नत-उल-ख़ुलद बेहतर है जिसका वाअदा परहेज़गारों को मिला।" (सुरह फ़ुर्क़ान 25:16)

(2) जन्नत अस्सलाम (جنت السلام) "उनको अपने रब के यहां सलामती का घर जन्नत अस्सलाम है।" (सुरह अन्आम 6:127)

(3) दार-उल-क़रार (دار القرار) "और वो घर जो पिछला है वही ठहराव का घर है।" (सुरह मोमिन 40:40)

(4) जन्नत-उल-अदन (جنت العدن) "अल्लाह ने ईमान वाले मर्दों और औरतों को वाअदा दिया है कि बाग़ों में जिनके नीचे नहरें बहती हैं और रहने के सुथरे मकानों में जो बाग़ों में हैं रहा करें।" (सुरह तौबा 9:73)

(5) जन्नत-उल-मावा (جنت الماوىٰ) "उस के पास रहने की बहिश्त है।" (सुरह नज्म 53:15)

(6) जन्नत-उल-नईम (جنت النعيم) "बेशक नेक लोग बहिश्त में हैं।" (सुरह अल-इनफीतार 82:13)

(7) जन्नत-उल-इल्लियीन (جنت العليين) "नेकों का लिखा हुआ इल्लियीन (सातवाँ आस्मान, जन्नत के ऊंचे मकान) में है।" (सुरह अल मुतफ्फिन 83:18)

(8) जन्नत-उल-फ़िरदौस (جنت الفردوس) "जो यक़ीन लाए हैं और जिन्हों ने भले काम किए हैं उनको ठंडी छाओं के बाग़-ए-जन्नत अल-फ़िरदौस में मेहमानी है।" (सुरह कहफ़ 18:107)

कहते हैं कि दोज़ख़ के सात तबक़े हैं। अगरचे क़ुरआन में तबक़ों के नाम आए हैं, लेकिन ये नहीं लिखा है कि हर तबक़े में किस दर्जे के लोग डाले जाऐंगे। लेकिन मुसलमान मुफ़स्सिरों ने इस की तफ़्सील कर दी है :

(1) जहन्नम (جہنم) जो गुनाहगार बग़ैर तौबा के मरते हैं, वो जहन्नम में जाऐंगे।

(2) लज़ूह (لزوہ) जिसमें काफ़िर यानी यही रहेंगे।

(3) हुतमा (حطمہ) एक आग है जिसमें यहूदी और बाअज़ के नज़्दीक मसीही जलेंगे।

(4) सईर (سعیر) जिसमें शयातीन और उस के ज़ुर्रीयात डाली जाएगी।

(5) सुक़र (سقر) जिसमें मजूस और नीज़ वो लोग रहेंगे जो नमाज़ में ग़फ़लत करते हैं।

(6) हजीम (حجیم) खौलता हुआ कढ़ाओ है जिसमें बुत-परस्त और याजुज माजूज डाले जाऐंगे।

(7) हाविया (ہاویہ) बे थाह गढ़ा है जिसमें रियाकार रहेंगे।

कहते हैं कि बहिश्त में दोज़ख़ से एक तबक़ा ज़्यादा है ताकि मालूम हो कि ख़ुदा की रहमत अदल से ज़्यादा है। मुहम्मदी आलिमों ने तमाम वाक़ियात मुताल्लिक़ हश्र व नश्र, बहिश्तीयों और दोज़ख़ियों के हिसाब किताब और आइंदा हालत की निस्बत ख़ूब शरह-ओ-बस्त से क़लम-बंद किए हैं। सेल साहब ने इन सब का ख़ुलासा ऐसी उम्दगी से किया है कि इस मुक़ाम पर मज़ीद तफ़्सील की ज़रूरत नहीं है। क़ुरआन-ओ-अहादीस में जो कुछ बहिश्त की राहतों का ज़िक्र है, वो सब सुन्नीयों के नज़्दीक हक़ीक़ी[41] है।

(5) क़द्र ख़ैर व शर

मैंने क़ब्ल-अज़ीं सिफ़त इरादा (मुंदरजा सफ़ा) के ज़िक्र में मसअला तक़्दीर की कुछ बह्स की है, लेकिन चूँकि मुसलमानों की किताबों में तक़्दीर का बाब अलेहदा (अलग) होता है। लिहाज़ा मैं भी इस मुक़ाम पर एक बह्स जुदागाना लिखता हूँ। मगर चूँकि मुक़ाम मज़्कूर में अलबर्ख़ीवी का कलाम सिफ़त इरादा पर नक़्ल कर चुका हूँ, इस जगह सिर्फ इसी क़द्र ज़रूरी है कि बतरीक़ इख़्तिसार उनके कलाम से तक़्दीर की निस्बत कुछ अख़ज़ करूँ और वो ये है। इस का इक़रार ज़रूर चाहीए कि नेकी व बदी सब तक़दीर-ए-इलाही से होती है। जो कुछ हो चुका है और जो कुछ होगा वो सब अज़ल में ख़ुदा ने फ़र्मा दिया था और लौह-ए-महफ़ूज़[42] पर लिखा था। मोमिन का ईमान और मुत्तक़ी का इत्तिक़ा और आमाल नेक सब ख़ुदा के इल्म व इरादा तक़्दीर में थे। जो उस के हुक्म से लौह-ए-महफ़ूज़ पर लिखे थे। उसी ने उन्हें पैदा किया और वो सब उस की मर्ज़ी के मुवाफ़िक़ हैं। काफ़िर का कुफ़्र और फ़ासिक़ का फ़िस्क़ और आमाल बद जो उस से सरज़द

41 अगरचे बाअज़ मुसलमान जिनकी अक़्लें निहायत बलीग़ हैं मुहम्मद ﷺ के ऐसे बयानात को मजाज़ी समझते हैं। लेकिन आम अक़ीदा यही है कि ये सब बातें लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ माननी चाहिऐं। (सेल साहब का दीबाचा फ़स्ल 4, सफ़ा 73)

42 सूरह 85 आयत 22 में इस लौह-ए-महफ़ूज़ का ज़िक्र है कि उस पर क़ुरआन लिखा है। सूरह यासीन 36 में आया है कि आदमीयों के आमाल एक खुली किताब में जिसे इमाम हुसैन कहते हैं, हैं।

होते हैं, सब उस के इल्म व इरादे और तक़्दीर में थे और उसी की तरफ़ से हैं, लेकिन उसे पसंद नहीं हैं। अगर कोई पूछे कि ख़ुदा ने बुराई को क्यों पैदा किया तो हम सिर्फ ये जवाब दे सकते हैं कि हम उस के हुक्मों को पहचान नहीं सकते।

दूसरा इस बात पर भी ईमान लाना और इक़रार करना चाहीए कि जो कोई ये कहे कि ख़ुदा नेकी व ईमान से ख़ुश और बदी व कुफ़्र से नाख़ुश नहीं होता या ये कि ख़ुदा के नज़्दीक नेकी व बदी दोनों बराबर हैं, वो काफ़िर है। इस बारे में तीन मख़्सूस और मईनी मज़ाहिब हैं :-

अव्वल जबरी हैं। वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) जबर से है जो बमाअनी महयुर के है। जबरी कहते हैं कि इन्सान महज़ बे-इख़्तियार है, जो कुछ इस से होता है सब ख़ुदा करता है और वही होता है जो अव्वल से उसने हुक्म दिया है।[43] चूँकि वो हाकिम मुतलक़ है, उसे इख़्तियार है चाहे तमाम आदमीयों को बहिश्त में पहुंचाए या दोज़ख़ में डाले। ये फ़रीक़ अशअरीयों की एक शाख़ है जो अक्सर बातों में उनसे मुत्तफ़िक़ है।

दूसरे क़दरी हैं। जिन्हें तक़दीर-ए-इलाही से इन्कार है। जिनके नज़्दीक बदी व नाइंसाफी को ख़ुदा से मंसूब करना नहीं चाहीए बल्कि इन्सान से चाहिए जो फ़ेअल मुख़्तार है। ख़ुदा ने उसे फ़ेअल के करने या ना करने की क़ुदरत दी है। इस गिरोह को उमूमन गिरोह मोतज़िला से समझते हैं। हालाँकि उस का वजूद इस से क़ब्ल है। वासिल ने अपने उस्ताद हसन का मसलक तर्क किया। (सफ़ा 125) मगर चूँकि वासिल ने क़दरियों के ख़ालिस आलिम

---

43 रसूल अल्लाह ने फ़रमाया कि आलम-ए-अर्वाह में आदम और मूसा के दर्मियान ख़ुदा के सामने मुबाहिसा हुआ। हज़रत आदम का मर्तबा ज़्यादा था। मूसा ने कहा कि तू वो आदम है जिसे ख़ुदा ने पैदा किया और अपनी रूह तुझमें डाली और फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि तुझे सज्दा करें और बहिश्त में तुझे रखा। इस के बाद उस क़सूर के सबब से जो तू ने किया आदमज़ाद इस दुनिया में फेंका गया। आदम ने जवाब दिया कि कि तू वो मूसा है जिसे ख़ुदा ने नबुव्वत और कलाम के वास्ते मख़्सूस किया। उसने तुझे बारह लौहें दीं जिन पर हर बात की तफ़्सील लिखी है। उसने तुझे अपना मोतमिद और अपने इसरार का हामिल गिरदाना। पस बताओ तो कि मेरे पैदा होने से कितनी मुद्दत पहले बाइबल लिखी गई थी। मूसा ने कहा कि चालीस बरस पहले। फिर आदम ने पूछा कि तू ने बाइबल में देखा कि आदम ने ख़ुदा की ना-फ़रमानी की। कहा अलबत्ता (हाँ), फिर तू ऐसी बात पर मुझे क्या मलामत करता है जिसे ख़ुदा ने मेरी पैदाइश से 40 बरस पहले लिख दिया था।

मअबद अलहबनी के अक़ाइद की पैरवी की है, इस वास्ते मोतज़िला और क़दरी दर-हक़ीक़त एक ही हैं।

<u>तीसरे अशअरी हैं।</u> जिनका कुछ अहवाल क़ब्ल-अज़ीं बयान कर चुका हूँ। ये दावा करते हैं कि अज़ल से ख़ुदा की एक मशीयत है और जो कुछ ख़ुदा करता है या इन्सान से सरज़द होता है, सब उसी की मशीयत के मुवाफ़िक़ होता है और जो कुछ उस के इल्म व इरादे में है और लौह-ए-महफ़ूज़ पर लिखा है, वही होता है। भलाई और बुराई सब उसी के हुक्म से होती है। यहां तक तो उन्हें जबरियों से इत्तिफ़ाक़ है। अब आगे इतनी और क़ैद लगाते हैं कि थोड़ा सा इख़्तियार आदमी को भी है। मैं इस मसअले की तशरीह बयान मुंदरजा सफ़ा 130 में कर चुका हूँ।

ग़रज़ कि सुन्नी अज़रूए अक़ीदत अशअरी हैं और अज़रूए अमल पुख़्ता जबरी हैं। मोतज़िला के अक़ाइद महज़ अल-हाद (बेदीन, मुल्हिद) में दाख़िल हैं। जिस मुस्तइद्दी और सरगर्मी से तक़्दीर के मज़्मून पर मुसलमानों में बहस हुई है, इस से ज़्यादा और किसी पर नहीं हुई है। चंद तवील मुबाहिसों के ख़ुलासा मुंदरजा ज़ैल से उमूर मुख़्तलिफ़ फिया वो जिसमें इख़्तिलाफ़ हो का हाल मालूम हो जाएगा। अशअरी जो इस बाब में सुन्नीयों से बड़ी मुनासबत रखते हैं, अक़ाइद मोतज़िला पर ये एतराज़ क़ायम करते हैं :-

(1) अगर इन्सान अपने इरादे और इख़्तियार से किसी फ़ेअल का मूजिब है तो चाहिए कि नतीजा फ़ेअल के रोकने पर भी क़ादिर हो।

(2) अगर फ़र्ज़ किया जाये अपने इख़्तियार से कोई फ़ेअल पैदा कर सकता है तो ज़रूरी है कि अफ़आल को जानता भी हो। पैदा करने वाले को चाहीए कि किसी फ़ेअल और इख़्तियार में दूसरे का मुहताज ना हो। इरादे के साथ इल्म की शर्त लाज़िमी है। मोतज़िला इस का ख़ूब जवाब देते हैं कि आदमी को चलने से पहले राह का बुअद (फ़ासिला, मुसाफ़त) और गुफ़्तगु से पहले गले की तरकीब दर्याफ़्त करनी ज़रूरी नहीं है।

(3) फ़र्ज़ करो कि कोई आदमी अपने बदन को हरकत देना चाहता हो और ख़ुदा ये चाहे कि हरकत ना हो क़ायम रहे और दोनों के इरादे

माअरज़ वक़ूअ में आएं तो इज्तिमा-ए-नक़ीज़ैन का लाज़िम आएगा और अगर दोनों के इरादे वाक़ेअ ना हों तो इर्तिफ़ा नक़ीज़ैन लाज़िम आएगा और अगर इन्सान का इरादा ज़हूर में आए तो अव्वल को दूसरे पर तर्जीह होगी। हालाँकि ये सब ख़िलाफ़ अक़्ल है।

(4) अगर इन्सान अपने इख़्तियार से किसी फ़ेअल को पैदा कर सकता है तो उस के बाअज़ अफ़आल को ख़ुदा के बाअज़ अफ़आल पर फ़ौक़ियत होगी। मसलन अगर आदमी अपने इरादा से ईमान लाता है तो उस का ये फ़ेअल साँप बिच्छूओं से कि वो ख़ुदा के अफ़आल हैं, बेहतर होगा।

(5) अगर आदमी फ़ेअल मुख़्तार है तो फ़ील-फ़ौर इन्सान का बदन क्यों नहीं बना सकता। क्या ज़रूरत है कि फ़ज़्ल व ईमान पर ख़ुदा का शुक्र करता है।

(6) सुन्नी कहते हैं कि सब दलीलों से बेहतर क़ुरआन की शहादत है। "हमने हर चीज़ बनाई पहले ठहरा कर।" (सुरह क़मर 54:49) "और अल्लाह ने तुमको और जो बताते हो उसे बनाया।" (सुरह साफ़्फ़ात 37:94) "सो किसी को राह दी अल्लाह ने और किसी पर साबित हुई गुमराही।" (सुरह नहल 16:37) चूँकि ईमान व इताअत तक़दीर-ए-इलाही से है, इस सबब से ज़रूर है कि वही उस का मूजिब हो। "उनके दिलों में ईमान लिखा दिया है।" (सुरह मुजादिला 58:22) "वही हँसाता और रुलाता है और वही मारता और जिलाता है।" (सुरह नज्म 53:44) और अगर अल्लाह चाहता सबको राह पर जमा कर लाता।" (सुरह अनआम 6:36) "और अगर तेरा रब चाहता तो लोगों को एक राह पर कर डालता।" (सुरह हूद 11:120) "जिसको चाहे अल्लाह गुमराह करे और जिसको चाहे डाल दे सीधी राह पर।" (सुरह अनआम 6:39) एक हदीस में आया है कि नबी ने फ़रमाया "सब फाइलों और उनके फ़ेअलों का फ़ाइल ख़ुदा[44] है। मोतज़िला इस बड़ी बह्स की जानिब मुख़ालिफ़त इख़्तियार कर के कहते हैं कि :-

---

44 जिस वक़्त निकाली तेरे रब ने आदम की पीठ में से उनकी औलाद और इक़रार कर आया उनसे उनकी जान पर, क्या मैं नहीं हूँ रब तुम्हारा। बोले अलबत्ता हम क़ाइल हैं। इब्ने क़ह का इस आयत की शरह में लिखते हैं कि ख़ुदा ने सब अम्बिया व औलिया का एक दर्जा बनाया। दूसरे में शोहदा को रखा। फिर नेकोकारों का अलग एक दर्जा किया और बदकारों का अलग। फ़रमांबर्दार

(1) अगर आदमी अपने इख़्तियार से कोई इरादा या काम नहीं करता है तो फिर ख़ुदा की तारीफ़ करनी या उस का गुनाह करना दोनों बराबर हैं और ईमान व कुफ़्र और ख़ैर व शर में क्या फ़र्क़ है और अवामिर (अहकामे इलाही, शरई हुक्म) नवाही (नाजायज़, गैर-शरई) और सवाब व अज़ाब और वाअदे व वईद से क्या हासिल है और नबियों का आना और किताबों का नाज़िल होना भी अबस (फुज़ूल) है।

(2) इन्सान के बाअज़ अफ़आल बद हैं, मसलन ज़ुल्म व शिर्क। अगर ख़ुदा ही ने उन्हें पैदा किया है तो ये मअनी होंगे कि ज़ुल्म व शिर्क को ख़ुदा से मंसूब करना, ऐन इताअत है। अशअरी इस का ये जवाब देते हैं कि अहकाम दो तरह के हैं। एक तकवीन कि बिला वसातत ग़ैर हुक्म करते ही हो गए। कुन फयाकुन (हो जा और हो गया) इस में तमाम मौजूदात दाख़िल हैं और इस के बमूजब जो कुछ हुक्म दिया गया है, वो सब ज़हूर में आएगा। दूसरा अम्र तशरीई हुक्म शराअ है जो अम्बिया की वसातत से लोगों को पहुंचा है और वाजिब-उल-तामील है और सही तामील और कामिल इताअत यही है कि जो कुछ ख़ुदा ने बता दिया है, उस पर अमल करे। ख़ुदा के मख़्फ़ी (छिपी) इरादों और पोशीदा हिक़मतों की तामील हम पर लाज़िम नहीं क्योंकि हम उस की मस्लहतों से आगाह नहीं हैं।

(3) अगर आदमीयों के अफ़आल तक़दीर-ए-इलाही से हैं कि उन फ़ेअलों के मुताबिक़ ख़ुदा के नाम भी हों, मसलन कुफ़्र करने वाला काफ़िर और ज़ुल्म करने वाला ज़ालिम होता है अला-हाज़ा-उल-क़यास पस अगर इन कुल अफ़आल का पैदा करने वाला ख़ुदा है तो लाज़िम आएगा कि वो भी ऐसा ही हो। हालाँकि उस की निस्बत ऐसा कहना सरीह कुफ़्र है।

(4) अगर कुफ़्र तक़दीर-ए-इलाही से है तो ज़रूर उस के इरादे और ख़्वाहिश से है, लेकिन नबी ईमान व बंदगी चाहता है। इस वास्ते इरादा इलाही के मुख़ालिफ़ है। सुन्नी इस का ये जवाब देते हैं कि क़दीम से ख़ुदा के

बंदों का दर्जा बनाया और नाफ़रमानों का। मसलन यहूदी, ईसाई, मजूसी और हिंदू वग़ैरह के भी कई फ़रीक़ बनाए। फिर जो जिस शक्ल पर दुनिया में पैदा होने को था, पहले से मुक़र्रर हो गई थी। इस इबारत से तक़्वीयतुल-ईमान के वहाबी मुसन्निफ़ ने सनद पकड़ी है।

इल्म में था कि फ़ुलां शख़्स काफ़िर मरेगा। पस अगर नबी ख़ुदा के इल्म से वाक़िफ़ हो कर ऐसे शख़्स को नजात का पैग़ाम पहुँचाता तो अलबत्ता बेजा होता। लेकिन वो ख़ुदा की पोशीदा बातों को नहीं जानता है। इस वास्ते उस का काम तब्लीग़ अहकाम यानी हुक्मों का पहुंचाना है। بررسولان بلاع با شد و بس चुनान्चे एक हदीस का मज़्मून है कि नबी के ज़िम्मा सिर्फ़ तब्लीग़ साफ़ अहकाम की है।

(5) मोतज़िला इन आयतों से इस्तिदलाल करते हैं, जिनमें किसी काम का करना या बनाना या तज्दीद करना या पैदा करना वग़ैरह ज़ालिक आदमीयों की निस्बत लिखा है और अपने दावे के मोइद और मुवाफ़िक़ बताते हैं और वो आयतें ये हैं "और अल्लाह ही का है जो कुछ आसमानों में और ज़मीनों में है ताकि बुराई वालों को उनके किए का बदला दे और भलाई वालों को भलाई से बदला दे।" (सुरह नज्म 53:32) "और जिसने बुराई की है तो वही उस के बराबर बदला पाएगा और जिसने भलाई की है, ख़्वाह मर्द हो या औरत और वो यक़ीन रखता हो सो वो लोग बहिश्त में जाऐंगे।" (सुरह मोमिन 40:43) "सच्ची बात है तुम्हारे रब की तरफ़ से, जो कोई चाहे माने और जो कोई चाहे ना माने।"[45] (सुरह कहफ़ 18:28) "इसी तरह झुठलाया किए उनसे अगले तो कह तुम निरे अटकल पर चलते हो।" (सुरह अनआम 6:149) हदीस भी इस पर साफ़ दलालत करती है, "कुल नेकी तेरे हाथों में है और बुराई तुझ पर नहीं है यानी बुराई को अपने ऊपर लाज़िम मत कर।"

अशअरी इस कुल बह्स व सबूत के ख़िलाफ़ एक आयत निहायत वाज़ेह पेश करते हैं। वो ये है कि "ये तो समझौता है फिर जो कोई चाहे कर रखे अपने रब तक राह और तमंचा होगे, मगर जो चाहे अल्लाह बेशक अल्लाह सब जानता हिक्मत वाला है।" (सूरह वकफ़र 30:29) और हदीस का जवाब दो तरह से देते हैं :-

---

45 बड़े मोअतबर मुफ़स्सिर अब्बास लिखते हैं कि ये आयत तक़्दीर के बाब में है यानी जिसे ख़ुदा चाहता है कि मोमिन हो वही मोमिन होगा और जिसे काफ़िर किया है वही काफ़िर होगा। इन्सान को कुछ इख़्तियार नहीं। (तफ़्सीर हुसैनी जिल्द, सफ़ा 9)

(1) राज़ी होना बुराई पर और बात है और उस का ठहराना और बात है। मसलन इस इबारत से कि ख़ुदा अपने बंदों से बुराई नहीं चाहता ये मअनी नहीं हैं कि क़द्र ख़ैर व शर ख़ुदा की तरफ़ से नहीं है, बल्कि ये मतलब है कि ज़ुल्म ख़ुदा की कोई सिफ़त नहीं है। इसी तरह बुराई तुझ पर नहीं है कि ये मअनी नहीं हैं कि बदी ख़ुदा की कोई सिफ़त है।

(2) ये कि हदीस के मअनी क़ुरआन के मुताबिक़ लेने चाहिऐं। हकमा-ए-इस्लाम ने इस दिक़्क़त के दफ़ाअ करने की कोशिश की है। अबूल वलीद मुहम्मद इब्ने अहमद (औरज़र) कहते हैं कि हमें अपने फ़ेअल का इख़्तियार है जिस तरह चाहें करें। लेकिन हमारे इरादे वक़ूअ किसी ख़ारिजी सबब से हुआ करता है। मसलन कोई चीज़ देखते हैं जो हमें ख़ुश आती है और बमुक़ाबला अपने, हमें उस की तरफ़ कशिश होती है। पस हमारा इरादा अस्बाब ख़ारिजी से वाबस्ता है और उन अस्बाब का वजूद एक नहज मुईनी पर है और वो नहज मौज़ू है। क़वानीन फ़ित्री पर अस्बाब का लाज़िमी ताल्लुक़ जो हमारे नज़्दीक जुम्ला इसरार से है अकेला ख़ुदा उसे अज़ल से जानता है और हमारे इरादे का ताल्लुक़ अस्बाब ख़ारिजी से क़वानीन फ़ित्रत के मुताबिक़ है और इसी को इलाहियात में क़द्र और तक़्दीर से ताबीर करते हैं। क़ब्लअज़ीं बयान कर चुका हूँ कि जब मुरूर ज़माना (मुरूर: गुज़रना) से इस्लाम के उसूल व अहकाम इस हद तक पहुंचे जो इस ज़माने के फ़िक़्ह से मुंज़ब्त हैं तो मुसलमान क़ुरआन के हुरूफ़ व अल्फ़ाज़ की वहम आमेज़ ताज़ीम और तुहमात मज़हबी में गिरफ़्तार हो गए और इस के साथ ही एक और इस से भी ज़्यादा पेचीदा बहस ख़ुदा की सिफ़त की शुरू हो गई। पिछले चंद सफ़्हों में हमने जो कुछ क़ुरआन से इक़्तिबास किया है उस से मालूम हुआ होगा कि जिस तरह चंद आयात से इन्सान की ख़ुद-मुख़्तारी और इस ख़ुद-मुख़्तारी के सबब से आमाल की कफ़ालत साबित होती है, वैसी ही बाअज़ आयात से तक़्दीर का मसअला भी साफ़ मालूम होता है। इस्लाम की बड़ी क़ुव्वत इस जोश व सरगर्मी में है जिससे मुहम्मद अरबी ने ये ताअलीम दी कि ख़ुदाए तआला आदिल व हाकिम है जिसने आदम को वो बातें बताईं जो उसे मालूम ना थीं। जब ये मज़्हब तरह तरह की पेचीदगीयों और दक़ीक़ अक़ाइद से मुनअक़िद हो गया और उलमाए शराअ ने शरीअत के अहकाम को सख़्त कर

दिया जो इस मज़्हब के पहले उसूल का लाज़िमी नतीजा था तो लोग ख़ुदा से दूर पड़ गए और उस की मुक़ारबत (आपस में मिलना) का ख़्याल जाता रहा। उस की ज़ात तक रसाई दुशवार हो गई। नामालूम तक़्दीर ने ख़ुदाए क़ादिर-ए-मुतलक़ व हाकिम की जगह ले ली। इसी तक़्दीर की ज़ुल्मत ने आम इस से कि क़ुरआन में इस के मुवाफ़िक़ हो या मुख़ालिफ़ तमाम मुसलमानों के फ़रीक़ पर साया किया है और इस से मुहम्मदी कौमें माअरज़ ज़वाल में हैं। मुसलमानों की कौमें अगरचे आज़ाद व ख़ुद-मुख़्तार हैं, लेकिन अपनी ज़ात की मुनफ़अत[46] से मुस्तग़ना (आज़ाद, बेपर्वा) और तरक़्क़ी की एहतियाज से बे-ख़बर और उन तमाम आला मक़ासिद से जो ज़ाहिर व बातिन की आरास्तगी का मूजिब हैं मग़रिबी क़ौमों से बहुत पीछे हैं।

इल्म अक़ाइद का बयान यहां पर ख़त्म हुआ, लेकिन मुसलमानों के अक्सर रिसालों में ऐसे मज़्मून के मुताल्लिक़ चंद और मसाइल भी हैं। इस वास्ते मुख़्तसरन उनको इस जगह लिखता हूँ। अगर मोमिन क़त्ल या ज़िना का मुर्तक़िब हो तो इस्लाम से ख़ारिज नहीं होता बशर्ते के उनको जायज़ ना जानता हो। अगर बग़ैर तौबा के मर जाये तो ख़ुदा को इख़्तियार है कि चंद मुद्दत दोज़ख़ में डाले या बग़ैर अज़ाब के बख़्श दे। हद शराअ जो क़ुरआन के अहकाम से ज़ाहिर है, मुक़तज़ी इस की है कि जो मुसलमान दीन से फिर जाये तो उस का क़त्ल वाजिब[47] है। अगर वो मुजरिम औरत हो तो अबू हनीफा के नज़्दीक उसे मुक़य्यद करना और हर रोज़ दुर्रे लगाना चाहीए। बाक़ी तीनों इमाम यानी मालिक व शाफ़ई व हम्बल कहते हैं कि मुताबिक़

---

46 मसलन फ़ैज़ी शायर लिखता है "क़ब्ल इस से कि मैं और तू ज़हूर में आए हमारा इख़्तियार व इरादा हमारे क़ब्ज़े से निकाल लिया था। कुछ तरदू मत कर। क्योंकि ख़ालिक़ ने हमारे मुआमलात को पैदा होने से मुद्दत क़ब्ल मुक़र्रर कर दिया था।"

47 सज़ा-ए-मौत कभी अदना क़ुसूरों के वास्ते मुक़र्रर होती है। 1879 ई॰ में एक तुर्की आलिम मुसम्मा अहमद को मारने का हुक्म इस वास्ते हुआ था कि उसने एक अंग्रेज़ी पादरी डाक्टर कोल वार्द क़ुस्तुनतुनिया को नमाज़ की एक किताब और एक रिसाला मुसम्मा ब मसीह कलिमतुल्लाह के तर्जुमा करने में मदद दी थी। अंग्रेज़ी सफ़ीर के इसरार से ख़्वाजा की जान बख़्शी तो अलबत्ता हुई, लेकिन जज़ीरा साईव को जिला वतन कर दिया गया। बाब आली ने वाअदा कर लिया कि इस की अदमे मौजूदगी में इस के अहले व अयाल की निगरानी की जाएगी और इस बात के कहने की कुछ ज़रूरत नहीं कि ये वाअदा पूरा नहीं हुआ।

मज़्मून हदीस के उस का क़त्ल वाजिब है और वो हदीस ये है "जो कोई तब्दील मज़्हब करे, उसे क़त्ल करो।" अरबी लफ़्ज़ "मन" (من) बमाअनी जो कोई के औरत व मर्द दोनों को शामिल करता है। इस वास्ते इन इमामों के नज़्दीक अगर औरत दीन से फिर जाये तो वो भी वाजिब-उल-क़त्ल है। (एशियाटिक सोसाइटी की किताब, जिल्द 17, सफ़ा 582) शिर्क और कुफ़्र को ख़ुदा माफ़ नहीं करता, लेकिन और सब गुनाहों को चाहे बख़्श दे। अगर किसी मुसलमान से पूछा जाये कि तुम मोमिन हो तो उसे कहना चाहीए कि मैं पुख़्ता मुसलमान हूँ, लेकिन इंशाअल्लाह ना लिखना चाहीए (ये शाफ़ियों के नज़्दीक है, हनफ़ी इसे नादुरुस्त समझते हैं।) अगर कोई उस से कहे कि तू ईमानदार मरेगा तो कहना चाहीए कि इस का इल्म ख़ुदा को है मैं नहीं जानता। बजुज़ अम्बिया के या उन अस्हाब के जिनकी ख़बर मुहम्मद अरबी ने दी है, जैसे अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली हैं और किसी की निस्बत नहीं कहना चाहीए कि वो क़तई जन्नती है। क्योंकि ये हाल ख़ुदा ही को मालूम है। मुसलमान होते ख़्वाह अच्छा हो या बुरा मग़फ़िरत चाहना और फ़ातिहा पढ़ना चाहीए, ख़ैरात देना, क़ुरआन पढ़ना और और कार-ए-ख़ैर करना और किसी कारख़ीर का सवाब मुर्दे की रूह को पहुंचाना कार-ए-ख़ैर में दाख़िल है।

ज़मीमा मुताल्लिक़ बाब चहारुम

फ़ल्सफ़ा इस्लाम

(फ़ल्सफ़ा से मुराद उलूम-ए-अक़्ली हैं।)

बाब मासबक़ में बयान कर चुका हूँ कि सुन्नीयों के फ़रीक़ ने आख़िरश क़दीम गिरोह मुतकल्लिमीन का जिन्हें मोतज़िला कहते हैं किस तरह इस्तीसाल किया। इस ज़मीमा में पिछले मुतकल्लिमों यानी हुकमा मुताख़रीन का ज़िक्र करूँगा। ख़लीफ़ा मामून (813-833 हिज्री) मारूफ़ आज़ाद राय पहला शख़्स था, जिसने मसाइल हिक्मत की तहक़ीक़ पर हिम्मत बाँधी। उसी के अह्द में यूनानी फ़ल्सफ़े की किताबें अरबी में तर्जुमा हुईं। यूनानी हुकमा में अरस्तातालेस (अरस्तू) को ज़्यादा मानते थे। कुछ इस सबब से अफ़लातून के निरे तसव्वुरात जो बमंज़िल-ए-इल्म इल्मुल-यक़ीन के थे अरस्तू के मुशाहदात से ऐनुलयक़ीन के मर्तबे पर थे। अरब की सुबूती तबीयत को ज़्यादा पसंद थे और कुछ और सबब से कि उस का इल्म-ए-मंतिक़ रोज़मर्रा के मुबाहिसों में जो मुसलमानों के मुख़्तलिफ़ मज़ाहिब के दर्मियान रहते थे कार-आमद तसव्वुर किया गया था। इस वास्ते निहायत मुनासिब था कि अरस्तू की तक़्लीद की जाती। मुसलमानों में इस नहज पर ताअलीम दी जाती थी कि उनकी तबीयतें अक़ाइद मुअय्यना के मुतीअ रहें और उनके अहकाम पर चलने के आदी हों। मुसलमानों ने किसी हक़ीक़त के दर्याफ़्त करने पर इतनी तवज्जा नहीं सर्फ की जितना कि अपने ज़हनों की आरास्तगी में मसरूफ़ रहे। इसी सबब से अरस्तू जैसे होशयार और नाज़ुक ख़्याल मुक़न्निन की उन्हें हाजत थी।

कंसली साहब की (सिकंदरीया और उस के मज़ाहिब, सफ़ा 160) जिन मज़ामीन पर उन वक़्तों में बह्स हुई थी उस का कुछ अहवाल अरबी मुअर्रिख़ मस्उदी के बयान से मालूम हो सकता है। जो निस्बत उस जमाअत के है जो ब-सर परस्ती मारूफ़ याह्या हर मक्की के मुनअक़िद हुई थी। याह्या ने इस जमाअत से ख़िताब किया कि तुमने मसअला अल-मक्मुन और अल-ज़हूर (वजूद क़ब्ल और तख़्लीक़ पर, इस्तिहकाम व क़ियाम पर, हरकत व सुकून पर, इत्तिफ़ाक़ व इन्फ़िराक़ पर, (औसाफ़ इलाहियाह के) वजूद व

अदम पर, अर्ज़ वुजू हर पर) अस्नाद अहादीस के इस्तिक़रार और इस्तीसाल पर सिफ़ात इलाहिया के वजूदी व अदमी होने पर क़ुव्वत फ़ाली व इमकानी पर, माद्दा व मिक़्दार व शक्ल-ओ-ताल्लुक़ पर और हयात व तनासुख़ पर कामिल बह्स की। तुमने उस को भी तहक़ीक़ किया कि हक़ इमामत मिंजानिब अल्लाह है। इन्सान यानी अक्सरिन जमाअत के इत्तिफ़ाक़ पर मौक़ूफ़ है। तुमने उलूम-ए-अक़्ली व ज़हनी के उसूल व फ़रोग़ पर बेहद मुबाहिसा कर लिया। अब आज अपनी हिम्मत को मुहब्बत के मज़्मून पर मसरूफ़ करो।

अरस्तू की किताबों का तर्जुमा जैसा कि दर-हक़ीक़त और सब यूनानी तसानीफ़ का हुआ था, शामी से ख़ालदी मसीहीयों ने ख़ुसूसुन निस्तूरीयों ने किया था। फ़य्याज़ ख़ुलफ़ा-ए-अब्बासिया तबाबत की वजह से उन लोगों की बड़ी तौक़ीर करते थे। चंद किताबें तो शामी से अरबी में तर्जुमा हुई थीं। क्योंकि शहनशाह जस्टनेन् के अह्द में मुतअद्दिद यूनानी तसानीफ़ शामी में तर्जुमा हो चुकी थीं। निहायत नामवर मुतर्जिम और मशहूर तबीब हनीन इब्ने इस्हाक़ थे जिन्हों ने 876 ई॰ में वफ़ात पाई जो शामी और यूनानी के जय्यद आलिम थे। ये शख़्स बग़दाद की जमाअत मित्र जमीन का अफ़्सर था, जिसमें उस का बेटा इस्हाक़ बिन जनीन और इस का बेटा इस्हाक़ बिन हनीन और इस का बिरादरज़ादा बस-अल-असीम भी दाख़िल था। दसवीं सदी में याह्या बिन आदी और ईसा बिन ज़राअ ने चंद किताबें तर्जुमा कीं और उनके पुराने तर्जुमों को सही किया। उन्हीं लोगों के सबब से अरबों को अफ़लातुन के मसाइल से वाक़फ़ीयत हुई।

अरस्तू की ताअलीम तमाम मुसलमानों में ख़ुसूसुन बेदीन फ़िर्क़ों में बहुत फैल गई। सुन्नीयों को ये अम्र निहायत गिराँ था, लेकिन एक मुद्दत उस की मुज़ाहमत उनके इख़्तियार से बाहर थी। मुअर्रिख़ मकरेज़ी लिखता है कि यूनानी हकीमों के मसाइल ने मुसलमानों में बड़ी ख़राबियां डाल दी हैं। इन मसाइल से सिर्फ यही फ़ायदा है कि बे दीनों की ग़लतीयों और फ़िस्क़ को और तरक़्क़ी होती है। हिक्मत के मसाइल मुसलमानों की दीनयात से बाअज़ मज़ामीन में जैसे अहवाल पैदाइश आलम और ख़ुदा के मख़्सूस इंतिज़ाम और सिफ़ात इलाहिया की हक़ीक़त है, मुख़ालिफ़ थे। जो हकीमाना राएं मोतज़िला ने इख़्तियार की थीं, वो अलबत्ता किसी क़द्र उनकी मोइद थीं। लेकिन इस

से सुन्नीयों की नाराज़ी फ़ल्सफ़ा की ताअलीम की निस्बत कुछ कम ना हुई। इस पर भी हिक्मत को तरक़्क़ी हुई और लोगों ने अपने बचाओ के हकीमाना तरीक़े इख़्तियार किए। पस इस तरह इल्म-ए-कलाम की इब्तिदा हुई।

पहला तरीक़ बहुत कुछ अहकाम दीन पर महदूद था, लेकिन पिछले फ़िर्क़े ने बहमा जिहत तर्ज़ हकीमाना इख़्तियार किया और रफ़्ता-रफ़्ता दीनदारी से बहुत दूर पड़ गया। इब्तिदा में फ़ल्सफे की किताबें मुसलमानों ने ख़ुद तस्नीफ़ नहीं कीं। जो लोग वसीअ-उल-ख़याल थे उन्होंने इस की तदरीस की रग़बत दिलाई। लेकिन आख़िरकार अहल ने मुतकल्लिमों और माक़ूलियों पर ग़लबा पाया। अशअरीयों के मसलक ने निहायत रौनक पकड़ी (अशअरीयों के अक़ाइद में, पिछले सफ़हात देखो) ज़माना-ए-औसत के फ़लसूफ़ों में कि तअबीरों से मुतकल्लिमीन मुताख़रीन हैं। अलबत्ता उलूम-ए-अक़्ली की तहरीक मुद्दत-ए-मदीद तक रही, लेकिन बारहवीं सदी के अख़ीर में तमाम दुनिया के मुसलमान फिर सुन्नी हो गए। मिस्र का बादशाह सलाह उद्दीन और उस के ख़ुलफ़ा अशअरीयों के बड़े हामी और मददगार हुए। जिस अह्द का हम ज़िक्र कर रहे हैं उसी अह्द में सर्फ-ओ-नहव, इल्म-ए-बयान, मंतिक़, तफ़्सीर व हदीस और तरह तरह के उलूम हिक्मत पर बड़े बड़े साहब तस्नीफ़ गुज़रे हैं। लेकिन मशहूर हकीम[48] उन वक़्तों में और अब भी बेदीन तसव्वुर किए जाते हैं।

अल-किंदी शहर बस्रा में जो ख़लीज-ए-फारिस पर वाक़ेअ है, पैदा हुआ था और 870 में वफ़ात पाई। ये शख़्स ज़बरदस्त आलिम और दीनयात में पूरा माक़ूली था। अरस्तातालेस के मंतिक़ पर उसने शरहें की हैं। मसअला वहदत पर बड़ी किताब लिखी है जिससे मालूम होता है कि मुसलमानों के उसूल से बहुत दूर जा पड़ा है। उल्फ़ा रॉबी दूसरा हकीम जिसके सरपरस्त अब्बासी थे, ना सिर्फ मुन्किर इल्हाम था बल्कि मुतलक़ कशफ़ से उसे इन्कार था। उस के नज़्दीक सही इल्हाम-ओ-वही इलक़ा मह्ज़ था और जो लोग इलक़ा से मार्फ़त हासिल करते थे, वही अम्बिया बरहक़ थे। फ़क़त उसी कश्फ़

48 अगर सही तौर से लिखा जाये तो फ़ल्सफ़ा अरब नहीं कहना चाहीए बल्कि फ़ल्सफ़ा इस्लाम कहना चाहीए क्योंकि अरबों में फ़क़त एक शख़्स मशहूर हकीम यानी अलकिंदी गुज़रा है।

का ये शख़्स मोतरिफ़ है। उसने फ़ल्सफ़ा की ताअलीम बग़दाद में पाई थी और वहां ख़ुद भी एक मुद्दत तक ताअलीम देता रहा। इस के बाद दमिशक़ को चला गया जहां उसने 950 ई॰ में इंतिक़ाल किया। इब्ने-ए-सीना मारूफ़ ब अबी सीना नस्ल फ़ारसी से बड़ा हकीम था, लेकिन उस की निस्बत ये कहा जाता है कि बावजूद ये कि वो उस ज़माने के मज़हबी ख़यालात को किसी क़द्र मानता था। फिर भी लोग उसे बुरा कहते थे।

ये शख़्स बुख़ारा के क़रीब 980 ई॰ में पैदा हुआ था। चंद मुद्दत इस्फ़िहान में तिब्ब व फ़ल्सफ़ा की ताअलीम देता रहा। इब्ने बदजा स्पेन के मुसलमान हकीमों में निहायत नामवर था। मुक़ाम सारगोसा में क़रीब इख़ततताम ग्यारवें सदी के पैदा हुआ था। ये शख़्स अल-ग़ज़ाली की सूफियाना ताअलीम का मुख़ालिफ़ था और ये दावा करता था कि सिर्फ इल्म नज़री से इन्सान अपनी असलीयत के सही तसव्वुर तक पहुंच सकता है। सुन्नी आलिम जिनका ये दावा था कि तमाम मसाइल फ़ल्सफ़ा दीन के हक़ में वबाल और जो लोग दुरुस्त तरीक़ पर हैं उनके लिए एक मुसीबत है, इस शख़्स पर सख़्त मोअतरिज़ थे। अल-ग़ज़ाली 1059 ई॰ में खुरासान में पैदा हुए थे। मुसलमानों में ईलाहीयत के बड़े आलिम और शहर-ए-आफ़ाक़ थे। उन्होंने मुतकलमाना तरीक़ इख़्तियार किया था। चंद अरसा तक बग़दाद के दार-उल-ताअलीम निज़ामीया के अमीर मजलिस भी रहे। सैरो सयाहत बहुत की और तमाम दीगर अदयान और फ़ल्सफ़ा पर इस्लाम की फ़ज़ीलत साबित करने को बहुत सी किताबें लिखीं। हकीमों और बे दीनों की वसीअ ताअलीम से अव्वल ये नतीजा हुआ कि दीन व फ़ल्सफ़े की निस्बत हालत रेय्ब व शक में गिरफ़्तार हो गए। फिर तसव्वुफ़ इख़्तियार किया और इसी से उनकी मुज़्तरिब तबीयत ने तस्कीन पाई। तसव्वुफ़ पर उनका असर चंदाँ क़वी ना था। अलबत्ता जो शकूक फ़ल्सफ़ा की निस्बत पैदा हो गए थे उस का ये नतीजा हुआ कि जो लोग हिक्मत के मसाइल को इस्लाम से तत्बीक़ (मुवाफ़िक़त, मुताबिक़त) देना चाहते थे, उनके हक़ में ज़बरदस्त मुख़ालिफ़त हो गए और उनकी राओं का क़रार वाक़ई इस्तीसाल कर दिया। उनकी किताबें बड़ी मोअस्सर थीं। पिछली किताब के दीबाचे में उन्होंने ऐसे लोगों की निस्बत लिखा है कि जो लोग आपको बड़ा ज़ीरक और फ़हीम जान कर और किबर-

ओ-नख़वत (घमंड, ग़रूर) के नशे में अहकाम दीन से दूर पड़ कर इल्हामी दीन के एवज़ चंद बड़े आदमीयों की बातों पर अमल करते हैं, अलीख। मगर बाअज़ वजूह से ऐसा पाया जाता है कि जिन उमूर पर उन्होंने नुक़्स निकाले और क़बाहतें साबित की हैं उन कुल उमूर पर उन्हें दरहक़ीक़त एतराज़ ना था। बल्कि जो कुछ उन्होंने लिखा था अहले सुन्नत के ग़लबा और तर्जीह देने को था।

इस के बाद उन्होंने एक किताब लिख कर चंद ख़ास दोस्तों में फिराई जिससे मालूम होता है कि बहुत से एतराज़ात जो क़ब्ल इस से हुकमा पर वारिद किए थे बाद को उन्होंने उठा लिए। अल-ग़र्ज़ जो कुछ हो सो हो उस को सब तस्लीम करते हैं कि उनके ज़बरदस्त दलाईल से मसाइल फ़ल्सफ़ा को ऐसा सदमा अज़ीम पहुंचा कि मशरिक़ी मुल्कों में जहां-जहां कि मुसलमान रहते हैं फिर कभी हिक्मत ने रिवाज नहीं पाया। उन्होंने उसूल इस्लाम के मुवाफ़िक़ मसाइल फ़ल्सफ़े की तर्दीद का तरीक़ इख़्तियार किया है। बाइएं सुन्नीयों के मुवाफ़िक़ नहीं है।

इस्पानियह में एक दिल-सोज़ हकीम इब्ने रशीद मारूफ़ बह और होस अब तक फ़ल्सफ़ा का जानिबदार था। ये नामी फ़लसूफ़ क़ुर्तुबा में 1126 ई॰ मुताबिक़ 520 (? साफ़ नहीं) में पैदा हुआ। ख़ानदानी शरीफ़ और आलिम और ख़ुद भी जोहर क़ाबिलीयत से ऐसा मुत्तसिफ़ कि मुसलमान हुकमा में उस का मर्तबा हमेशा मुम्ताज़ रहेगा। बिलाशुब्हा आलम-ए-इस्लाम में निहायत जय्यद उलमा से था और अरस्तातालेस की तसानीफ़ का मुहक़्क़िक़ शारह गुज़रा है और उन तमाम उलूम से जो उस वक़्त मुसलमानों में शाएअ थे, निहायत वाक़िफ़ और निहायत उम्दा मुसन्निफ़ था। उनकी मशहूर तसानीफ़ से एक वो किताब है जो इमाम ग़ज़ाली की रद्द-ए-फ़िलासफ़ा की तर्दीद में लिखी थी। बावस्फ़ ये कि इब्ने बशीर के अक़ाइद हकीमाना थे। लोग उन्हें अच्छा मुसलमान जानते थे कि ये शख़्स हिक्मत के दक़ाइक़ (अच्छी बुरी बात के वह पहलु जो गौर करने से समझ कर आएं) को तहक़ीक़ के आला मक़ासिद से समझा था, लेकिन ये भी कहता था कि ऐसे बहुत थोड़े हैं जिनकी तहक़ीक़ इन हक़ायक़ की हद तक पहुंची है। इस वास्ते अम्बिया की वसातत से लोगों के दर्मियान उन मआरिफ़ अज़ली और हक़ायक़ क़दीमी की

इशाअत के वास्ते इल्हाम की ज़रूरत हुई जो हिक्मत (फ़ल्सफ़ा) और दीन दोनों से यकसाँ मुश्तहिर हो सकते हैं। वो समझता था कि सच्च है कि सुन्नी अहकाम ज़ाहिर पर बहुत और बातिन पर निहायत कम तवज्जा करते हैं और ग़लत और नादुरुस्त तफ़्सीरों ने ऐसी बातें पैदा कर दी हैं, जो दर-हक़ीक़त दीन में कुछ वजूद नहीं रखती हैं। मगर बावजूद इस इक़रार के और नीज़ ज़ाहिरी अहकाम इबादत की सख़्त पाबंदी की मलामत से महफ़ूज़ नहीं रहा। लोगों ने ये तोहमत लगाई कि इन उलूम हिक्मत की ताअलीम व तल्क़ीन से जो देता है, दीन बिगड़ा जाता है। इस सबब से ख़लीफ़ा अल-मंसूर ने बेइज़्ज़त कर के क़ुर्तुबा से बू सीना को जिला-वतन कर दिया। इस ज़िल्लत के साथ सुन्नीयों से और तकलीफ़ें उठानी पड़ी थीं। एक रोज़ अपने बेटे के हमराह मस्जिद में पहुंचा, लोगों ने जबरन उसे निकाल दिया। 1198 ई॰ में शहर मूराको में वफ़ात पाई। पस मुसलमानों के अख़ीर हकीम ने जो नामवरी के क़ाबिल था, इस ज़िल्लत से ज़िंदगी बसर की। हसपानीया में यूनानी हिक्मत के पढ़ने की सख़्त मुमानिअत हो गई और बहुतेरी उम्दा किताबें जला दी गईं।

चंद मुद्दत बाद उस के आईन में मुसलमानों की हिक्मत को ज़वाल शुरू हो गया। हिक्मत की ताअलीम का ख़ातिमा हो गया और इस्लाम की मुस्तहकम क़ुयूद ने तरक़्क़ी के वसीअ वसाइल को मादूम (ख़त्म) कर दिया। स्पेन और बग़दाद में सुन्नीयों का ज़ोर हो गया। मुसलमान हुकमा के तहक़ीक़ात मशकूक से मज़्मून और मसाइल हक्मियाह एतराज़ से ख़ाली ना थे और क्यों ना होते आख़िर को मुसलमान ही थे। जैसी उन्होंने अक़्ली मज़्हब बनाने में बलीग़ कोशिशें और सई बालाए ताक़ कीं, वैसे ही उन क़ुयूद को जो उनके नज़्दीक मुहद्दिसों और फ़क़ीहों ने बढ़ा दी थीं तोड़ना चाहा लेकिन नाकाम रहे। क्योंकि गिरोह मुतकल्लिमीन की मानिंद उनके पास भी ना कोई ताअलीम थी जिसकी तरफ़ लोगों की दावत करते ना कोई ख़ुशख़बरी जिससे इन्सान ज़ईफ़-उल-बुनयान (जिसकी बुनियाद कमज़ोर हो। उमूमन इन्सान के साथ बोला जाता है) नया दिल पा कर पेश आने वाली मुसीबतों को सब्र से बर्दाश्त करता। दूसरी बड़ी वजह नाकामी की ये थी कि जिस बात को वो तोड़ना चाहते, वही इस्लाम है। इस वास्ते कोई क़ुदरत बजुज़ उस के जो

रुहानी और बातिनी हो उस की बेख़कुनी नहीं कर सकती और सुन्नी भी ज़ी वक़अत और साहब तसानीफ़ अरस्तू की हिक्मत के कमाल शावक और उलूम से अला-उल-ख़ुसूस इल्म तिब्ब से बाहर गुज़रे थे। अलबत्ता फ़ल्सफ़ा में कुछ उन्होंने तरक़्क़ी नहीं की और इल्म को जिस हैसियत पर पाया था बेशतर इस हैसियत पर छोड़ा। यूनानियों के ख़यालात ने जो कुछ कहा था इस में से कुछ उन्होंने महफ़ूज़ रखा। सो इतनी मेहनत और कोशिश वसूल भी हुई। पस इस्लाम बहैसीयत मज़हबी ऐसा हक़ रखता था कि इस बुजुर्गी का दावा करे जो हुकमा ए इस्लाम ने गुमान किया जाता है कि उसे बख़्शी है। बानियान इस्लाम में कि ताबीर उनसे अरब है, फ़क़त एक ही हकीम पैदा हुआ था।

अव्वलन ताअलीम का चर्चा बेदीन ख़ुलफ़ा के सबब से हुआ था जिन्हों ने यूनानी किताबों का तर्जुमा करने को बग़दाद में ईसाई मुक़र्रर किए थे और स्पेन में जहां कि हिक्मत ने बड़ा रिवाज पाया था, अक़्लमंद मुसलमानों ने यहूदी आलिमों की हुज्जत से उलूम हिक्मत को हासिल किया। मगर वहां भी जैसा कि क़ायदा है हुकमा पर सख़्त ईज़ाएं और ज़िल्लतें पहुंचीं। इस के बाद फिर भी कभी कभी इल्म-दोस्त ख़ुलफ़ा हुए। लेकिन इस्लाम जैसे मज़्हब की क़ुयूद ने बढ़ने ना दिया। बारहवीं सदी ईस्वी के बाद से मुसलमानों ख़ुसूसुन अरबों में कोई ऐसा हकीम नहीं हुआ जिसकी तस्नीफ़ इन्सान की कुछ वक़अत रखती हो और चार-सौ बरस तक इस्लाम में ऐसा तनाज़ा रहा जो कभी नहीं हुआ था यानी कमाल कोशिश की जाती है कि इन बातों से जिन्हें अज़रूए अक़्ल तमाम दुनिया के आदमी तस्लीम करते हैं इस्लाम को तत्बीक़ दी जाये और तरक़्क़ी के कुछ उसूल इस में पैदा किए जाएं। मगर इन सब कोशिशों में कमाल नाकामी है। इस का नतीजा ये हुआ कि इस्लाम की इस्लाह की कोई ऐसी तदबीर जिसमें उस के उसूल को कुछ भी दख़ल होगा, ज़रूर ही रायगां जाएगी। पस इस्लाम की ख़ुद-मुख़्तार हुकूमत को अगर मुहज़्ज़ब क़ौमों के दायरे में दाख़िल होना चाहीए तो इस के इस्तिक़लाल और इस्तिहकाम की उम्मीद सिर्फ इस सूरत में हो सकती है कि तर्ज़ हुकूमत में तग़य्युर-ए-कुल्ली इख़्तियार किया जाये और तरीक़ा हुक्मरानी बिल्कुल बदल दिया जाये, निरी इस्लाह से कुछ काम नहीं चलता है।

बाब पंजुम

अहकाम दीन के बयान में

(1) अक़ाइद का बयान

जो बाब मासबक़ में गुज़रा ईमान से मुताल्लिक़ था। अब बाक़ी बयान दीन से मुताल्लिक़ है। दीन के ख़ास अहकाम पाँच हैं जिन्हें अरकान दीन (यानी दीन के सतून) कहते हैं। वो ये हैं :-

(1) कलिमा पढ़ना, या मुख़्तसरन ईमान का इक़रार करना
(2) सलात यानी पांचों वक़्त की नमाज़
(3) तीसों रोज़े रमज़ान के
(4) ज़कात, ख़ैरात मुईन
(5) हज यानी मक्का का सफ़र

ये पांचों अहकाम फ़र्ज़ हैं जो नस ज़ाहिर (क़तई दलील से) है यानी क़ुरआन के सरीह हुक्म से साबित हैं। जो सबूत नस ज़ाहिर से है उसे दलील क़तई कहते हैं। तमाम अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्में) नबुव्वत में भी पुख़्ता है। मगर मोअतबर रिवायत से मालूम होता है कि और भी अहकाम हैं जिनका अदा करना नेक मुसलमान पर लाज़िम है। ऐसे अहकाम सात हैं जो क़ुरआन की इन आयात से हैं जिन्हें ख़फ़ी कहते हैं। जो दलील नसुस ख़फ़ी से अख़ज़ की जाये उसे दलील बातिनी कहते हैं और वो अहकाम हैं :-

(1) उमरा करना। सिवाए हज के
(2) इताअत वालदैन की
(3) जोरू (बीवी) पर शौहर की इताअत
(4) रोज़ा के बाद ख़ैरात देनी
(5) क़ुर्बानी करना
(6) नमाज़ वित्र। वित्र की तशरीह आगे की जाएगी

(7) इआनत اعانت ذوی القربیٰ (जद्दी रिश्तेदार के) अहकाम

मुंदरजा दफ़आत (4) और (5) अमीरों पर वाजिब हैं और ग़रीबों के वास्ते मुस्तहब हैं। अगर करें तो सवाब पाएँगे और अगर ना करें तो गुनाह ना होगा। वाजिब के बाद सुन्नत का मर्तबा है और वो तीन हैं जिनका करना या तो मुवाफ़िक़ नबी के तरीक़ के है या मुवाफ़िक़ फ़ित्रत के है। यानी अगले नबियों के तरीक़ पर हैं और मुहम्मद अरबी ने उनके करने को मना नहीं किया। वो ये हैं :-

(1) खतना

(2) हजामत सर और बदन के पांव की

(3) नाख़ुन कटवाना

इन सुन्नतों के सिवाए और भी काम हैं जिन्हें मुस्तहब[49] कहते हैं। जिस काम को मुहम्मद अरबी ने कभी किया और कभी तर्क क्या, वो मुस्तहब हैं। मुस्तहब से भी कमतर मुबाहात का मर्तबा है। मुबाह वो काम हैं जिनका करना ज़रूरत से ज़्यादा है। जिनके करने में सवाब है और तर्क से अज़ाब का कुछ भी अंदेशा नहीं। इस के साथ ये भी ज़िक्र करना चाहीए कि जो काम और बातें बुरी हैं, उनमें :-

(1) हराम यानी वो खाने हैं जो क़ुरआन और अहादीस से ममनू हैं।

(2) मकरूह उसे कहते हैं जिसकी क़बाहत पर कामिल यक़ीन नहीं, लेकिन उमूमन उसे नापसंद जानते हैं।

(3) मुफ़सिद वो है जिससे इबादत फ़ासिद हो जाये।

चूँकि ये अल्फ़ाज़ (इस्तिलाह) अब जाबजा वाक़ेअ होंगे, इस वास्ते इनका ज़हन नशीन कर लेना ज़रूरी है। "तशह्हुद" यानी कलिमा शहादत पढ़ना। कलिमे मुतअद्दिद हैं, लेकिन मशहूर तर ये है :-

اشہد ان لا الہ الا اللّٰہ وحدہٗ لا شریک لہ
وا شہد ان محمد عبدہٗ و رسولہ

---

49 मुस्तहब के मअनी हैं "पसंदीदा" फ़िक़्ह की इस्तिलाह में इबादात में से वो फ़ेअल जिसे आँहज़रत ﷺ ने पसंद फ़र्मा कर ख़ुद किया हो या उस का सवाब बयान फ़रमाया हो।

अशहदो अन ला-इलाहा
इल्लाहु वहदहु ला शरीक लहु व अशहदू अन्ना मुहम्मदन अबदहु व रसुलूह"

मैं गवाही देता हूँ कि सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद नहीं। वो अकेला है। कोई उस का शरीक नहीं और गवाही देता हूँ मैं कि मुहम्मद अरबी उस के बंदे और रसूल हैं।

इसी कलिमे की मुख़्तसर सूरत ये है :-

لا الہ الا اللّٰہ محمد رسول اللّٰہ

"ला-इलाहा इल्लाहु मुहम्मदूर् रसूल लुल्लाह"
"सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद नहीं और मुहम्मद अरबी उस के पैग़म्बर हैं।"

ये पिछला कलिमा निहायत पुर मअनी है। इस में अजीब क़ुव्वत व तासीर है। इस्लाम की रूह और जान इसी कलिमे में है। इस्लाम की फ़ौजों को कुच के वक़्त इसी ने हर जगह राह बताई है। बारह सौ बरस से सुबह की हवा में इस्लाम के मिनारों से इसी की सदाएँ बुलंद होती हैं।

ये कलिमा करोड़ों करोड़ बनी-आदम की ज़बान पर ऐसा जारी है कि कोई और कलिमा कभी नहीं हुआ था। इस्लाम की क़ुव्वत और तौहीद का ऐलान इस जगह उस चीज़ से निहायत वाबस्ता मालूम होता है जिसे मुसलमान आलिम ऐसे नफ़्स हक़ीक़त से जानते हैं जो तौहीद के बराबर है। यानी मुहम्मद अरबी की रिसालत का इक़रार जो एक मसअला है कि जैसे दुनिया नूर इल्म व हक़ीक़त से और ईमान और अक़्ल से मुनव्वर होती जाती है, वैसे ही इस से दुरुस्त ईजाद की कमी और तंगी को कुशाइश (कुशादगी) और इस्लाम को तनज़्ज़ुल होता जाता है।

(2) सलात (नमाज़)

फ़ारसी में "सलात" को नमाज़ कहते हैं। हिन्दुस्तान में सलात की बनिस्बत नमाज़ ज़्यादा मुरव्वज है। (मगर में इस बयान में दोनों लफ़्ज़ इस्तिमाल करूँगा) फ़िक़्ह की तमाम किताबें जिनमें अरकान दीन का बयान है, उनमें सलात के साथ तहारत के क़ाएदे लिखे होते हैं। मैं भी इस तर्तीब

की पैरवी करूँगा। तहारत तीन तरह की होती है: (1) वुज़ू (2) ग़ुस्ल और (3) तयम्मुम।

(1) वुज़ू

वुज़ू भी एक क़िस्म की तहारत है, जो नमाज़ पढ़ने से पहले किया जाता है। वुज़ू में चार फ़र्ज़ हैं :-

(1) धोना मुँह का पेशानी के सिरे ठोढ़ी तक और दोनों कानों तक
(2) धोना हाथों का कोहनियों तक
(3) हाथों को पानी से तर करना, चौथाई सर का मस्ह करना
(4) धोना दोनों पांव का टख़नों तक

तहारत के बाब में नस (क़तई दलील क़ुरआनी) वारिद हुई है :-

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا قُمْتُمْ اِلَى الصَّلٰوةِ فَاغْسِلُوْا وُجُوْهَكُمْ وَ اَيْدِيَكُمْ اِلَى الْمَرَافِقِ وَ امْسَحُوْا بِرُءُوْسِكُمْ وَ اَرْجُلَكُمْ اِلَى الْكَعْبَيْنِ

"ऐ ईमान वालो जब तुम नमाज़ को उट्ठो तो अपने मुँह को और हाथ को और कोहनियों को धो लो और अपने सर और पांव टख़नों तक मल लो।" (सुरह अल-मायदा 5:6)

सुन्नी पांव को धोते हैं, लेकिन शीया बज़ाहिर ज़्यादा दुरुस्ती पर हैं। क्योंकि वो सिर्फ़ मस्ह ही करते हैं। वुज़ू करते वक़्त अगर ज़रा जगह भी ख़ुशक रह जाये तो कुल तहारत बेसूद और नमाज़ बातिल है। वुज़ू में सिर्फ इसी पर इक्तिफ़ा नहीं किया जाता है। इस के साथ 14 सुन्नतें भी हैं और वो ये हैं :-

(1) वुज़ू की नीयत करना, मसलन नापाकी दूर करने को वुज़ू की नीयत करता हूँ।

(2) गटे (गट्टा: टख़ने या कलाई के जोड़) तक दोनों हाथ धोए। मगर ये एहतियात ज़रूरी है कि यकायक दोनों हाथों को पानी में बिल्कुल ना डुबोए बल्कि तीन मर्तबा पानी डाल कर ख़ूब मले।

(3) वुज़ू के शुरू में ख़ुदा के नामों में से कोई नाम लेना, मसलन शुरू करता हूँ मैं साथ नाम ख़ुदा के ऐसा ख़ुदा कि बरतर या ख़ुदा का शुक्र करता हूँ वास्ते मज़्हब इस्लाम के।

(4) दाँत माँजना

(5) तीन दफ़ाअ कुल्ली करना

(6) तीन बार नथनों में पानी डालना

(7) तर्तीब वुज़ू की निगाह रखना

(8) इन कामों के दर्मियान वक़्फ़ा ना करना

(9) बदन को तीन बार धोना

(10) एक हाथ की उंगलीयों के बीच में जो जगह है उसे दूसरे की तर उंगलीयों से ख़िलाल (दो चीज़ों का दरमयानी फ़ासिला या फ़र्क़ करना)

(11) डाढ़ी को उंगलीयों से ख़िलाल करना

(12) सारे सर पर एक दफ़ाअ मस्ह करना

(14) बाद मस्ह के जो तरी उंगलीयों में रह जाये इस से कानों का मस्ह करना

(14) ख़िलाल करना पैर की उंगलीयों का बाएं हाथ की छंगुलिया से, इस तरह पर कि निकाले हाथ की छंगुलिया को दाएं पांव की छंगुलिया से और फिर हर नौबत बह नौबत ऐसा करना।

इमाम शाफ़ई के नज़्दीक अहकाम मुंदरिज-ए-दफ़आत (1) और (7) फ़र्ज़ हैं और मस्ह सर का तीन बार चाहीए। इमाम मालिक हुक्म मुंदरजा - ए-दफ़ाअ (8) को फ़र्ज़ जानते हैं। वुज़ू करते वक़्त ख़ामोश रहना या कोई दुआ पढ़ना चाहीए। लेकिन दुआ पढ़ना सुन्नत या फ़र्ज़ नहीं है, मुस्तहब है। इन दुआओं में से एक दुआ बतौर नमूना हाशिया[50] में मुंदरज है।

---

50 वुज़ू से पहले ये पढ़ते हैं। अब मैं नमाज़ के वास्ते तमाम नजासत बदनी के पाक करने की नीयत करता हूँ। नमाज़ वो काम है कि इस से तेरी रूह ख़ुदा तआला के तख़्त से क़ुर्ब हासिल करेगी। ख़ुदाए बुज़ुर्ग व बरतर के नाम से शुरू करता हूँ। सब तारीफ़ उसी ख़ुदा को है जिसने अपने फ़ज़्ल से मुझे मुसलमान बनाया। इस्लाम बरहक़ है और कुफ़्र बातिल है। दाँत माँजते वक़्त ये

(2) ग़ुस्ल

ग़ुस्ल शरअन नजासत मुईनी के बाद तमाम बदन का धोना लाज़िम पड़ता है और वो इस तरीक़ पर होना चाहीए। ग़ुस्ल करने वाले को चाहीए कि कपड़े उतार कर वुज़ू करे। फिर ये कहे कि "नजासत दूर करने को ग़ुस्ल करता हूँ।" फिर इसी तरीक़ से बदन धोए कि अव्वल दाएं कांधे पर तीन बार पानी डाले। फिर बाएं पर तीन बार। फिर इतनी ही मर्तबा सर पर पानी बहाए। ग़ुस्ल में तीन फ़र्ज़ हैं (1) कुल्ली करना, (2) नाक में पानी डालना और तमाम बदन पर पानी बहाना। अगर एक बाल भी ख़ुश्क रह जाये तो सारा ग़ुस्ल बेकार और फ़ासिद है। बाक़ी जुज़्ईयात सुन्नत या मुस्तहब हैं और ये ज़ाहिर है कि जिन सबबों से तहारत बातिल हो जाती है या जिन सूरतों में ग़ुस्ल फ़र्ज़ होता है, उनकी तफ़्सील मैं इस जगह नहीं कर सकता हूँ। मुसलमानों की कुतुब फ़िक़्ह में इस मज़्मून को ख़ूब शरह-ओ-बस्त से क़लम-बंद किया गया है और फ़िक़्ह से बढ़कर कोई चीज़ नहीं है जो मुसलमान तालिबे इल्म को इस अम्र पर मुत्ला`अ (बाख़बर) करे कि मुसलमान के चलन और रवैय्ये किस क़द्र सुन्नत के मह्कूम हैं। अहादीस ने ज़रा ज़रासी बातों को वाजिब-उल-अज़्आन (जिसकी तामील ज़रूरी हो) और वाजिब-उल-इम्तसाल कर दिया है। इस से इन्कार नहीं कि मुसलमानों में साफ़ बातिन और बुज़ुर्ग लोग भी हुए हैं। लेकिन ऐसा एक मज़्हब जिसमें नमाज़ की सेहत वुज़ू पर मौक़ूफ़ हो और वो भी जब तक तर्तीब मुईनी पर ना हो, बेकार तसव्वुर किया जाये। इस लायक़ है कि इस से बजुज़ उस के लोग मुक़य्यद बक़युद मुक़र्ररा हों और कुछ हासिल नहीं। अगर कोई शख़्स वुज़ू

कहते हैं। ऐ ख़ुदा जैसे में अपने दाँतों को साफ़ करता हूँ, इसी तरह तू मुझे मेरे ऐबों से पाक कर और मेरी बंदगी को क़ुबूल फ़र्मा। ऐ रब बरोज़ हिसाब दाँतों की सफ़ेदी चेहरे के नूर का बाइस हो। नथनों में पानी डालते वक़्त कहते हैं। ऐ ख़ुदा अगर मेरा ये फ़ेअल तेरी नज़र में पसंदीदा हो तो बहिश्त की ख़ुशबुओं से मेरे दिमाग़ को मुअत्तर कर। दाएं हाथ को धोते वक़्त कहते हैं। ऐ ख़ुदा क़ियामत के दिन मेरे आमाल की किताब दाएं हाथ में दीजीए और रहम के साथ मेरा हिसाब लीजीए। बाएं हाथ धोते वक़्त कहते हैं। क़ियामत के दिन में मेरे आमाल की किताब को बाएं हाथ में ना दीजीए। इसी तरह की दुआएं और आज़ा (बदन के हिस्से) के धोते वक़्त भी मांगी जाती हैं।

करते वक़्त दाएं हाथ से पहले बाएं हाथ को धो डाले या कुल्ली करने से पहले नाक में पानी डाल दे तो उस की नमाज़ दुरुस्त नहीं होती। जिन लोगों ने इस मज़्मून पर मुसलमानों की किताबें देखी हैं, वो इन तिफ़्लाना बह्सों को बख़ूबी समझ सकते हैं। जो ऐसी बातों पर हुए जो बज़ाहिर लग़ू और मुहमल (बेमाअ्नी, फ़िज़ूल, बेमतलब) हैं। लेकिन इस सबब से कि उन्हें सुन्नत से ख़ास ताल्लुक़ है, आलिम मुसलमानों ने उन्हें बड़ा ज़रूरी समझा है।

(3) तयम्मुम

तयम्मुम यानी तहारत करना जिन सूरतों में जायज़ है, वो ये हैं :-

(1) इस सूरत में कि जिस जगह पानी ना मिल सकता हो, वो एक कोस (क़रीब दो मील) के फ़र्क़ पर हो।

(2) किसी आरिज़ा के सबब से पानी नुक़्सान करता हो।

(3) पानी ऐसी जगह पर हो जहां किसी दुश्मन का जानवर या कीड़े मकोड़े का अंदेशा हो।

(4) नमाज़ ईदैन या नमाज़ जनाज़ा में नमाज़ी को देर हो गई हो और वुज़ू का वक़्त ना रहा हो।

अय्याम मामूली में वुज़ू के एवज़ तयम्मुम जायज़ ही नहीं और तरीक़ ये है कि अव्वल तयम्मुम करने वाला कहता है कि नीयत करता हूँ मैं तयम्मुम के वास्ते दूर करने नापाकी के।

اعوذ باللّٰہ من الشیطان الرجیم بسم اللّٰہ العلی العظیم و الحمد اللّٰہ وعلی دین الاسلام

और पनाह मांगता हूँ मैं अल्लाह से शैतान रांदा (निकाला हुआ) हुए से और शुरू करता हूँ साथ नाम ख़ुदाए बरतर के और सब तारीफ़ें दीन इस्लाम में ख़ुदा ही को हैं।

फिर हाथ खोल कर बालों पर मारे और उन हाथों को मुँह पर मले और फिर दोनों हाथों का कोहनियों तक मस्ह करे। अगर एक बाल भी बग़ैर मस्ह के रह जाएगा तो तयम्मुम ना होगा। तयम्मुम में नीयत और मस्ह हाथों

मुँह का फ़र्ज़ है। "और अगर तुम बीमार हो या सफ़र में या तुम में से कोई जा-ए-ज़ुरूर से आया है या औरतों से लगे हो। फिर पानी ना पाओ तो ज़मीन पाक का क़सद करो और अपने हाथ और मुँह इस से मलो।" (सुरह अल-मायदा 5:8)

जो पानी तहारत के वास्ते मुस्तअमल हो सकता है उस की निस्बत भी मुफ़स्सिल क़ाएदे मुक़र्रर किए गए हैं। इतने क़िस्म के पानी से तहारत रवा है। बारिश के, समुंद्र के, चशमा के, कुवें के, बर्फ़ के पानी से, पाला जब तक पिघल ना जाये तहारत इस से जायज़ नहीं। मीनह के पानी का सबूत क़ुरआन में मौजूद है। وَيُنَزِّلُ عَلَيْكُمْ مِّنَ السَّمَآءِ مَآءً لِّيُطَهِّرَكُمْ بِهٖ وَ يُذْهِبَ عَنْكُمْ رِجْزَ الشَّيْطٰنِ "और तुम पर आस्मान से पानी उतारा कि इस से तुम्हें पाक करे और शैतान की नजासत तुमसे दूर करे।" (सुरह अन्फ़ाल 8:11) बाक़ी और अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्में) के पानी की इजाज़त अहादीस से है। इस की एक मिसाल यहां पर दी जाती है। एक दिन कोई शख़्स हज़रत अरबी के पास आया और अर्ज़ की कि या रसूल अल्लाह मैं सफ़र को जाता हूँ और पानी थोड़ा है। अगर इस से वुज़ू करूँ तो पीने को नहीं रहेगा। अगर इजाज़त हो तो समुंद्र का पानी इस्तिमाल कर लूं। आपने कहा कि समुंद्र का पानी पाक है। तिर्मिज़ी का बयान है कि ये हदीस सही है। पानी की नापाकी की निस्बत बड़ा इख़्तिलाफ़ है और ऐसा पानी तहारत के काम का नहीं है। इस की कुल तफ़्सील पढ़ना पढ़ने वाले को गिरां होगा। इस वास्ते मुख़्तसर ये कहता हूँ कि सुन्नीयों में उमूमन ये दस्तूर है कि अगर बहते पानी में या किसी ऐसे हौज़ में जो 5 फुट मुरब्बा से ज़्यादा हो किसी मुर्दा की नाश या कोई नापाक चीज़ गिर पड़े तो तहारत इस से जायज़ है, बशर्ते के रंग, बू और मज़ा ना बदला हो। इसी सबब से कोई हौज़ मस्जिद के क़रीब दस हाथ मुरब्बा से कम नहीं होता है। इसी को वो "दर दह" (10+1) कहते हैं।

इस से बड़ा भी हो तो कुछ मज़ाइक़ा नहीं है। बल्कि बिल-उमूम इस से बड़ा ही होता है। उमुक़ (गहराई) एक फुट के क़रीब होना चाहीए। तहारत करने वाला ज़रूरी तहारत से फ़ारिग़ हो कर नमाज़ पढ़ सकता है।

(4) सलात यानी नमाज़ अकेले भी और जमाअत के साथ भी यानी दोनों तरह नमाज़ हो सकती है। फ़क़त इसी क़द्र ज़रूर है कि नमाज़ी के कपड़े और बदन पाक हो। इबादत की जगह पर किसी क़िस्म की नजासत ना हो और क़िब्ला की तरफ़ उस का मुँह हो और नमाज़ ख़्वाह अकेले में हो या जमाअत के साथ हो वुज़ू इस से पहले ज़रूरी है। बजुज़ इस सूरत के कि तयम्मुम जायज़ है। अगर मस्जिद में पढ़ी जाये कि इस में बनिस्बत अकेले के ज़्यादा सवाब है तो इस से पहले (अज़ान नमाज़ तलबी) और इक़ामत चाहीए। जिस तरह मुसल्ली यानी नमाज़ी को खड़ा होना और जो कुछ कहना चाहीए। उस की निस्बत बतफ़्सील हिदायतें मुसलमानों की किताबों में मौजूद हैं। बयान मुंदरिज-ए-ज़ेल से (नमाज़) यानी इबादत का हाल मालूम होगा। मोअज़्ज़िन ब-आवाज़-ए-बुलंद अरबी में कहता है :-

اللہ اکبر اللہ اکبر اللہ اکبر
اللہ اکبر اللہ اکبر

"अल्लाहु-अकबर अल्लाहु-अकबर अल्लाहु-अकबर अल्लाहु-अकबर"

(चार बार) सब सुनने वाले जवाब देते हैं :-

"अल्लाहु-अकबर अल्लाहु-अकबर अल्लाहु-अकबर अल्लाहु-अकबर अल्लाहु-अकबर"

اللہ اکبر اللہ اکبر اللہ اکبر
اللہ اکبر اللہ اکبر

फिर मोअज़्ज़िन कहता है :-

اشہد ان لا الہ الا اللّٰہ ۔ وا شہد ان لا الہ الا اللّٰہ ۔

अशहदो अन ला-इलाह इल्लाह व अशहद अन ला-इलाहा इल्लल्लाहो

(दो बार) "मैं गवाही देता हूँ कि सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद नहीं।

सामेअ (सुनने वाला) इस के जवाब में कहता है कि :-

اشہد ان لا الہ الا اللّٰہ ۔ وا شہد ان لا الہ الا اللّٰہ

अशहदु अन लाईलाहा इल्ललाह व अशहदु अन लाईलाहा इल्ललाह

मैं गवाही देता हूँ कि सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद नहीं।

फिर मोअज़्ज़िन कहता है :-

ا شہد ان محمد الرسول اللّٰہ ۔ وا شہد ان محمد الرسول اللّٰہ

अशहदु अन्ना मुहम्मदुर्रसुलुल्लाह व अशहदु अन्ना मुहम्मदुर्रसुलुल्लाह

(दुबारा) "मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अरबी ख़ुदा के रसूल हैं। मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अरबी ख़ुदा के रसूल हैं।"

सामेअ (सुनने वाला) : اشہد ان محمد الرسول اللّٰہ

अशहदु अन्ना मुहम्मदुर्रसुलुल्लाह

"मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अरबी ख़ुदा के रसूल हैं।"

मोअज़्ज़िन : حی علی الصلوٰۃ ۔ حی علی الصلوٰۃ

(दो बार) हय्या अलस्सलाह हय्या अलस्सलाह

"नमाज़ को आओ नमाज़ को आओ"

सामेअ (सुनने वाला) : لاحول ولا قوۃ الا باللّٰہ العلی العظیم

लाहौल वला क़ुव्वता इल्ला बिल्लाह हिल अलय्यिल अज़ीम

"ना बाज़गश्त गुनाह से, ना ताक़त सवाब की मगर साथ मदद अल्लाह बरतर और बड़े के।"

मोअज़्ज़िन : حی علی الفلاح ۔ حی علی الفلاح

हय्या अलल फलाह, हय्या अलल फलाह

(दो बार) "नेक काम को आओ, नेक काम को आओ।"

सामेअ (सुनने वाला) : ویقع مایشاء ولا یقع الذی لا یشاء

जो ख़ुदा चाहता है वही होता है और जो नहीं चाहता है वो नहीं होता है।

फ़ज्र की नमाज़ के वक़्त मोअज़्ज़िन कहता है :-

الصلوٰۃ خیر من النوم

अस्-सलातु ख़ैर म्मिनन-नौम "नमाज़ नींद से बेहतर है।"

जिसके जवाब में सामेअ (सुनने वाला) कहता है : "तू ने ख़ूब कहा है।" اللّٰہ اکبر اللّٰہ اکبر (दो बार) और आख़िर में

لا الٰہ الا اللّٰہ (सिवाए अल्लाह के कोई दूसरा माबूद नहीं एक दफ़ाअ कह कर अज़ान ख़त्म की जाती है।

इक़ामत (जिसके लफ़्ज़ी मअनी क़ायम करने के हैं) यही अज़ान का इआदा है। लेकिन حی علی الفلاح के बाद قد قامت الصلوٰۃ और कहते हैं जिसके मअनी थे "नमाज़ क़ायम करो।" बाद इख़्ततताम इन मुबादियात के फिर नमाज़ शुरू होती है और वो इस तरह से है :-

अव्वल : नमाज़ी हाथ जोड़ कर खड़ा होता है और आहिस्ता से इस तरह नीयत बाँधता है। नीयत करता हूँ मैं ख़ालिस ख़ुदा के लिए सिदक़ दिल से फ़ज्र की (या जिस वक़्त की नमाज़ हो उस वक़्त का नाम ले) वास्ते दो रकअत (या जितनी रकातें हों उतनी कहे। नमाज़ फ़र्ज़, सुन्नत या नफ़्ल की या जैसी सूरत हो) मुँह मेरा तरफ़ काअबा शरीफ़ के। फिर हाथों के अंगूठे बुना गोश (कान की लो) पर रखकर तक्बीर तहरीमा कहता है और हाथों की हथेलियाँ क़िब्ला की तरफ़ को रहती हैं और एक दूसरे से किसी क़द्र जुदा रहती हैं। इस हैसियत से मुसल्ली (नमाज़ी) अल्लाहु-अकबर कहता है और सूरत क़ियाम यानी खड़े होने की ये है कि दाहने हाथ की हथेली को बाएं हाथ की पुश्त पर रख के अंगूठे और छंगुलिया से बाएं हाथ की कलाई को पकड़ लेता है और दोनों हाथ ज़ेर नाफ़ रहते हैं और निगाह सज्दा की तरफ़ रहती है। फिर सना पढ़ता है और वो ये है :-

سبحانک اللہم و بحمد ک و تبارک اسمک
وتعالی جدک ولا الہ غیرک

"ऐ अल्लाह मैं तुझे पाकी के साथ और तेरी तारीफ़ के साथ याद करता हूँ और तेरा नाम बहुत ख़ूबीयों का है और तेरा मर्तबा बहुत बुलंद है और तेरे सिवाए और कोई बुज़ुर्गी के लायक़ नहीं।"

इस के बाद तअव्वुज़ पढ़ते हैं। اعوذ باللّٰہ من الشیطان الرجیم "मैं अल्लाह के साथ शैतान रान्दे गए से पनाह मांगता हूँ।" फिर कहते हैं بسم اللّٰہ الرحمٰن الرحیم "अल्लाह

के नाम से जो रहमान व रहीम है शुरू करता हूँ। इस के बाद क़ुरआन की पहली सूरत यानी फ़ातिहा पढ़ते हैं :-

اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَۙ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ
ۙمٰلِکِ یَوْمِ الدِّیْنِ اِیَّاکَ نَعْبُدُ وَ اِیَّاکَ
نَسْتَعِیْنُ اِہْدِ نَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِیْمَ ۙ
صِرَاطَ الَّذِیْنَ اَنْعَمْتَ عَلَیْہِمْ غَیْرِ الْمَغْضُوْبِ
عَلَیْہِمْ وَ لَا الضَّآلِّیْنَ

तर्जुमा : "सब तारीफ़ अल्लाह को है जो सारे जहान का साहब है। बहुत मेहरबान और निहायत रहम वाला है। इन्साफ़ के दिन मालिक है। तुझी को हम बंदगी करते हैं और तुझी से मदद चाहते हैं। हमें सीधी राह चला। उनकी राह जिन पर तू ने फ़ज़्ल किया ना जिन पर ग़ुस्सा हुआ और बहकने वाले।"

इस के बाद नमाज़ी को इख़्तियार है कि जितनी सूरतें चाहे पढ़े। मगर चंद आयतें तो ज़रूर ही पढ़नी होती हैं बिलउमूम सुरह इख़्लास पढ़ते हैं :-

قُلْ ہُوَ اللّٰہُ اَحَدُ اَللّٰہُ الصَّمَدُۚ لَمْ یَلِدْ وَ
لَمْ یُوْلَدْۙ لَمْ یَکُنْ لَّہٗ کُفُوًا اَحَدٌ

तर्जुमा : "तू कह अल्लाह एक है, अल्लाह पाक है (खाता पीता नहीं) ना उसने किसी को जना ना किसी ने उस को जना और उस के बराबर कोई नहीं।"

इस के बाद तक्बीर रुकूअ यानी अल्लाहु-अकबर कह के रुकूअ में जाता है यानी सर और बदन झुका देता है और उंगलीयों को ज़िले खोल कर हाथों को घुटनों पर रख देता है और इसी वक़्त तस्बीह रुकूअ कहता है। سبحان ربی العظیم सुब्हान रब्बीयुल-अज़ीम (कम से कम तीन बार) "पाक है मेरा साहब बड़ी अज़मत वाला।" फिर बदन सीधा कर के और कानों पर हाथ दोनों तरफ़ छोड़ के तस्मिअ कहते हैं। سمع اللّٰہ

لمن حمدہٗ ربنالک الحمد सुना अल्लाह ने उस को जिसने उस की तारीफ़ की। ऐ हमारे रब सब तारीफ़ तेरे ही वास्ते है।"

(1) इस के बाद सज्दे को जाते हुए अल्लाहु-अकबर اللہ اکبر तक्बीर सज्दा कहता है। उंगलीयों को जोड़ कर हाथों को ज़मीन पर पटक देता है और पांव सीधे रहते हैं। सिर्फ उंगलियां ज़मीन पर लगी होती हैं। कुहनीयाँ, पेट और रान अलग रहते हैं और रान अलग रहती है और रान से टांग भी नहीं लगने पाती है। ये भी ज़रूरी है कि निगाह नीची रहे। इस हैसियत से अव्वल नाक को, फिर माथे को ज़मीन पर टेकता है और ये लिहाज़ रखा है कि हाथों के अंगूठे ऐन बुना गोश से मिले रहें।

(2) जब ये सब कर चुकता है तो उस वक़्त तस्बीह सज्दा इसी तरह पर कहता है। सुबहान रब्बी युल आअ्ला, सुबहान रब्बी युल आअ्ला, सुबहान रब्बी युल आअ्ला। سبحان ربی الا علی۔ سبحان ربی الا علی "पाक है साहब मेरा बहुत ऊंचा" (कम-अज़-कम तीन बार) फिर सज्दे से सर उठाते वक़्त अल्लाहु-अकबर اللہ اکبر तक्बीर जलसा कहता है और दो ज़ानू बैठ कर हाथ घुटनों से ऊपर ज़रा रख लेता है और थोड़ा तवक़्क़ुफ़ कर के दूसरे सज्दा को जाता है और तक्बीर तस्बीह हसब-ए-साबिक़ पढ़ता है और उठते वक़्त तक्बीर (क़ियाम अल्लाहु-अकबर اللہ اکبر) पढ़ता है। इस वक़्त एक रकअत तमाम होती है। दूसरी रकअत सुरह फ़ातिहा से शुरू हुई यानी बाद तक्बीर क़ियाम के फिर उसी जगह से मुसल्ली (नमाज़ी) शुरू और जो कुछ पहली रकअत में पढ़ता था, पढ़ता है। सिर्फ फ़र्क़ इतना होता है कि फ़ातिहा के बाद क़ुरआन की वो आयात नहीं पढ़ता है कि जो पहली रकअत में पढ़ी थीं। दो रकअत बाद और अख़ीर रकअत के बाद आम इस से कि वो ताक़ हो या जुफ़्त, मुसल्ली अगर शीया है बायां पांव टेक कर इस पर बैठ जाता है और जिस तरह तक्बीर जलसा में किया था हाथ ज़ानू पर रखकर और अपनी गोद की जानिब निगाह कर के अत्तहियात पढ़ता है :-

التحيات للّٰہ و اصلوۃ والطیبات والسلام
علیک یا یہا النبی ورحمتہ اللّٰہ وبرکاتہ
والسلام علینا وعلی عباد اللّٰہ الصالحین.

"ज़बान की सब बंदगीयां और बदन की और पाक माल की सब बंदगीयां अल्लाह को हैं। ऐ नबी तुम पर सलाम और ख़ुदा की महर और बरकतें हम पर और जितने नेक बंदे हैं सब पर सलाम।"

फिर दाहने हाथ की पहली उंगली उठा कर तशह्हुद पढ़ता है :-

اشہد ان لا الہ الا اللّٰہ ا شہد ان
محمدعبدہ ورسولہ

मैं इस बात का गवाह हूँ कि मुहम्मद अरबी उस का बंदा और उस का रसूल है।"

फिर सब रकअतों के अख़ीर में नमाज़ी दुरूद पढ़ता है :-

اللہم صلی علی محمد وعلی آل محمد
کما صلیت علی ابراہیم وعلی آل ابراہیم
الک حمید مجید

"इलाही मुहम्मद पर और आले मुहम्मद पर रहमत ख़ास भेज जैसी कि तू ने इब्राहिम पर भेजी थी। तू ही सराहा गया और बुज़ुर्गी वाला है।"

اللہم بارک علی محمد وعلی آل محمد
کما بارکت علی ابراہیم وعلی آل ابراہیم
ایک حمید و مجید

"इलाही मुहम्मद पर और आले मुहम्मद पर बरकत भेज जैसे कि तू ने इब्राहिम पर और आले इब्राहिम पर बरकत भेजी थी।"

इस के बाद वो पढ़ी जाती है। नमाज़ी को इख़्तियार है कि अपनी तरफ़ से कोई दुआ पढ़े। अगरचे मामूल इस दुआ के पढ़ने का है :-

ربنا انتا فی الدنیا حسنہ و فی الآخرۃ
خستہ و قنا عذاب النار

"ऐ हमारे रब तू हमें दुनिया व आख़िरत की बरकतें दे और अज़ाब दोज़ख़ से बचा।"

फिर दाहिनी तरफ़ को मुँह फेर कर मुसल्ली (नमाज़ी) कहता है "अस्सलाम अलैकुम व रहमतुल्लाह" السلام علیکم ورحمتہ اللہ। "तुम पर ख़ुदा की रहमत और सलाम" फिर बाएं तरफ़ मुँह फेर कर कहता है अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह السلام علیکم ورحمتہ اللہ। "तुम पर ख़ुदा की रहमत और सलाम।" जब सब नमाज़ हो चुकती है तो नमाज़ी कंधों के बराबर हाथ ऊंचे हथेलियाँ आस्मान की तरफ़ को या अपने मुँह की तरफ़ को कर के अरबी में या अपनी ज़बान में दुआ मांगता है। फिर हाथ मुँह पर फेरता है। गोया कि इन बरकतों को जो आस्मान से पाई हैं हर जुज़्व बदन पर है।

नमाज़ के औक़ात मुअय्यना पाँच हैं जिनका सबूत क़ुरआन की इस आयत में है। "सो पाक अल्लाह की याद है, जब शाम करो और सुबह करो और उस की ख़ूबी आस्मान व ज़मीन है और पिछले वक़्त (ईशा) और जब दोपहर हो।" (सुरह अल-रूम आयत 17) मुफ़स्सिर कहते हैं कि मसा (शाम) में वक़्त ग़ुरूब और बाद ग़ुरूब यानी सलात-उल-मग़रिब और सलात-उल-इशा दोनों दाख़िल हैं। ज़ेल की आयात में नमाज़ के मुईनी वक़्त की तरफ़ इशारा है।

"और खड़े हो कर नमाज़ दोनों सिरे दिन के और कुछ टुकड़ों में रात के।" (सुरह हुद आयत 116) रोज़मर्रा की नमाज़ों में फ़र्ज़, सुन्नत, वित्र और नफ़्ल की कई किस्में हैं। नमाज़ फ़र्ज़ वो है जिसे ख़ुदा ने मुक़र्रर किया हो। मसलन नमाज़ के पांचों मुईनी वक़्त ख़ुदा ने मुक़र्रर किए हैं। सुन्नत उन मख़्सूस रकअतों को कहते हैं कि पैग़म्बर अरबी पढ़ा करते थे। वित्र उन ताक़ रकअतों को कहते हैं ख़्वाह वो तीन हों या पाँच या सात जो इशा के अख़ीर में नमाज़ में और फ़ज्र से क़ब्ल पढ़ सकते हैं। लेकिन मामूल ये है कि नमाज़ इशा में तीन वित्र पढ़ते हैं। इमाम अबू हनीफ़ा के नज़्दीक वित्र वाजिब हैं यानी ख़ुदा ने उनके पढ़ने का हुक्म दिया है। क़ुरआन की किसी आयत से इस की सनद नहीं मिलती, लेकिन अहादीस से (कि हर वाहिद इनमें की हदीस सही तसव्वुर की जाती है) साबित है। इसी सबब से रकअत वित्र को हुक्म

ईलाही जानते हैं। मगर इमाम शाफ़ई के नज़्दीक वित्र सुन्नत है। लफ़्ज़ सुन्नत की तसरीह क़ब्ल–अज़ीं हो चुकी है और मज़्मून अहादीस वित्र का ये है कि ख़ुदा ने तुम्हारी नमाज़ के साथ एक और नमाज़ बढ़ा दी है और वो वित्र है। सलात उल इशा और फ़ज्र के दर्मियान उसे पढ़ो। मुहद्दिस बज़ोर से रिवायत है कि नबी ने कहा कि वित्र मुसलमान पर वाजिब है और ताकीदन ये कहा कि वित्र हक़ है जो कोई उसे ना माने मेरा पैरौ नहीं।

नबी, अस्हाब, ताबईन और तबेअ ताबईन सब वित्र पढ़ते थे। वित्र के लफ़्ज़ी मअनी अदद ताक़ के हैं। एक हदीस का मज़्मून है कि ख़ुदा ताक़ है, वो ताक़ को पसंद करता है। "الـہ وتـر.يـحب الـوتـر" मुसलमान वित्र की बड़ी ताज़ीम करते हैं। किसी काम का या सफ़र का आग़ाज़ ऐसे दिन मनहूस है जिसकी तारीख़ जुफ़्त हो ताक़ ना हो। सफ़ा किताब में सुतरों की तादाद अक्सर ताक़ होती है। नमाज़ नफ़्ल इख़्तियारी है। इस का पढ़ना मुस्तहब यानी सवाब है, लेकिन ख़ुदा की तरफ़ से इस का ताअय्युन नहीं है। ये ज़रूर समझ लेना चाहीए कि सब नमाज़ें फ़र्ज़ हों या सुन्नत या नफ़्ल एक ही तरह की होती हैं। सिर्फ तादाद रकअत का ताय्युन होता है जिसकी एक पूरी मिसाल क़ब्ल–अज़ीं दे चुका हूँ।

जो मुसलमान हर रोज़ पांचों वक़्त की नमाज़ में पूरी रकअतें अदा करता है, मैं बयान कर चुका हूँ कि उसे एक दिन में पच्चास दफ़ाअ वही नमाज़ पढ़नी पड़ती है जिससे कुल मीज़ान 75 रकअतें होती हैं। मगर ये मामूल है कि चंद रकअत सुन्नत तर्क भी करते हैं। इस पर भी तकरार निहायत कसीर है और चूँकि कुल नमाज़ अरबी में पढ़ी जाती है इस सबब से एक तमाशा सा मालूम होता है। एक मुसलमान ने बड़ी जुर्रत से ये कहा कि नमाज़ (1) हिन्दुस्तानी में पढ़नी चाहीए। इस पर तमाम नमाज़ियों ने 13 फरवरी 1880 ई॰ को जुमे के दिन मद्रास की मस्जिद से उसे निकाल दिया। जिन सुन्नतों के पढ़ने और ना पढ़ने का इख़्तियार है, उन्हें "सुन्नत ग़ैर मुअक्कदा" कहते हैं। जो सुन्नतें फ़र्ज़ से पहले पढ़ी जाती हैं वो "मुअक्कदा" हैं और उनके पढ़ने की ताकीद आई है। मज़ीदबराँ चंद अक़्साम (मुख़्तलिफ़ क़िस्में) नमाज़ की और भी हैं जो मुख़्तलिफ़ औक़ात और ख़ास सूरतों में पढ़ते हैं।

(1) सलात-उल-जुमा

"सलात-उल-जुमा" यानी जुमा की नमाज़ फ़र्ज़ है। क़ुरआन, सुन्नत और इज्मा तीनों से इस का हुक्म है। मसलन "ऐ ईमान वालो जब जुमे के दिन नमाज़ की अज़ान हो तो अल्लाह की याद को दौड़ो और बेचना छोड़ो।" (सुरह जुमा 62:9) मुहम्मद अरबी ने भी कहा है कि जुमा फ़र्ज़ है। जो कोई जुमा की नमाज़ क़ज़ा करेगा ख़ुदा उस के दिल पर मुहर कर देगा। (नूर-उल-हज़ायह, सफ़ा 155) मगर आठ क़िस्म के लोग हैं जो नमाज़ की तक्लीफ़ से बरी हैं यानी मुसाफ़िर, मरीज़, ग़ुलाम, औरत, नाबालिग़, मजनूं, नाबीना, अपाहिज। शराइत फ़र्ज़ीयत नुमाज़ जुमा के ये हैं :-

(1) जिस जगह नमाज़-ए-जुमा अदा की जाये वो कोई ऐसा क़स्बा हो जहां क़ाज़ी रहता हो।

(2) उस क़स्बे में कोई हाकिम या नायब उस का ज़रूर रहता हो।

(3) नमाज़-ए-जुमा नमाज़ ज़ुहर के एवज़ में हो कि इस से मिलती है। बजुज़ उस के कि इस में चार फ़र्ज़ की जगह दो पढ़े जाते हैं। नफ़िलें नहीं पढ़ते हैं। चार सुन्नतें फ़र्ज़ से पहले और दो उस के बाद पढ़ते हैं।

(4) एक ख़ुत्बा या बमूजब मोअतक़िदीन इमाम शाफ़ई के दो ख़ुत्बे पढ़े जाते हैं। चार सुन्नतों के बाद और दो फ़र्ज़ से अव्वल इमाम ख़ुत्बा पढ़ता है जिसमें ख़ुदा की तारीफ़ और अहकाम नेक का ज़िक्र होता है।

(5) जमाअत में सिवाए इमाम के कम-अज़-कम तीन आदमी होने ज़रूरी हैं। शाफ़ियों के नज़्दीक चालीस से कम ना हों।

(6) अज़ान यानी नमाज़ की तलबी बग़ैर इम्तियाज़ मर्तबा के सब मुसलमानों के वास्ते है। जो शख़्स और नमाज़ों में इमामत कर सकता है, वो ये भी नमाज़ पढ़ सकता है।

इमाम और ख़तीब बिल-उमूम एक ही होता है। अगरचे लाज़िम नहीं है कि ऐसा ही हो। ख़ुत्बे तवील नहीं होने चाहीऐं। क्योंकि मुहम्मद अरबी ने कहा कि ये अख़ीर ज़माने के ज़ोफ़ की अलामत है कि ख़ुत्बे तवील हों और दुआएं मुख़्तसर हूँ। जब दो ख़ुत्बे पढ़ते होते हैं तो इमाम दूसरा ख़ुत्बा शुरू करने से पहले ज़रा वक़्फ़ा करता है। उस वक़्त नमाज़ियों को इख़्तियार है कि

कुछ दुआ मांगें। मगर बाज़ों के नज़्दीक बिद्दत है और बहुत बुरा समझते हैं। मुहद्दिसीन बुख़ारी, अबू दाऊद और तिर्मिज़ी के नज़्दीक जुमे के दिन कपड़े बदलना मुस्तहब है। ख़तीब मैंबर की दूसरी सीढ़ी पर खड़े हो कर और एक बड़ा डंडा या असा हाथ में लेकर ये ख़ुत्बा पढ़ता है। (जिन मुल्कों में मुसलमानों की अमल-दारी है वहां लकड़ी की तल्वार ख़तीब के हाथ में होती है) ख़ुत्बों का नमूना मुंदरिज-ए-ज़ेल है :-

फ़ज़ाइल जुमा के

बिसमिल्लाह-हिर्रहमा-निर्रहीम بسم اللہ الر حمٰن الرحیم। ख़ुदाए रहमान व रहीम के नाम से शुरू करता हूँ।" सब तारीफ़ ख़ुदा को है जो बादशाह, पाक और बड़ा आलिम है। उसने इस्लाम की बरकत से हमारे दिल खोल दिए हैं। उसने जुमा को सब दिनों पर फ़ज़ीलत दी है। हम गवाही देते हैं कि सिवाए ख़ुदा के और कोई बंदगी के लायक़ नहीं। वो अकेला है। कोई उस का शरीक नहीं। जो लोग ऐसा इक़रार करते हैं वो ख़ौफ़ व ज़ुल्मत से महफ़ूज़ रहते हैं। हम गवाही देते हैं कि सय्यद हमारे मुहम्मद अरबी उस के बंदे और रसूल हैं, जो तमाम बनी-आदम के वास्ते मबऊस हुए हैं। ख़ुदा की रहमत और सलाम उन पर, उनकी औलाद पर और उन के अस्हाब पर हो। ऐ लोगो ऐ ख़ुदा के ईमान लाने वालों मैं तुम्हें और अपने नफ़्स को इस तरह नसीहत देता हूँ कि ख़ुदा की इताअत करो और ऐ ख़ुदा के बंदो ये जानो कि जब जुमा शुरू होता है तो फ़रिश्ते चौथे आस्मान पर जमा होते हैं। जिनमें जिब्रईल अलैहिस्सलाम मोअज़्ज़िन और मीकाईल ख़तीब और इस्राफ़ील इमाम और इज़राईल मुकब्बिर यानी तक्बीर कहने वाले (अल्लाहु-अकबर ख़ुदा बड़ा है) और बाक़ी और फ़रिश्ते शरीक जमाअत होते हैं। जब नमाज़ हो चुकती है तो जिब्रईल कहते हैं "मोअज़्ज़िन होने की हैसियत से मज़्हब इस्लाम के सब मोअज़्ज़िनों को अपना सवाब देता हूँ।" और मीकाईल कहते हैं कि "मैं अपना सवाब ख़तीबों को देता हूँ।" इस्राफ़ील कहते हैं कि "मैं अपना इमामों को देता हूँ।" इज़राईल कहते हैं कि मैं "मुकब्बिरों को देता हूँ।" और फ़रिश्ते कहते हैं कि "हम अपना सवाब मुसलमानों की जमाअत को देते हैं।"

मैंने कहा कि जुमा की रात और दिन 24 घंटे रहता है और हर घंटे में ख़ुदाए तआला एक हज़ार जानें दोज़ख़ से छोड़ता है। जो कोई जुमा के दिन ग़ुस्ल करता है ख़ुदा उसे एवज़ में हर मोए (मूओ: बाल बदन) की दस नेकियों का सवाब देगा। जो शख़्स जुमा के दिन इंतिक़ाल करे ख़ुदा उसे एक शहीद का सवाब देता है। बिलाशुब्हा उम्दा और फ़सीह तरीन कलामों का क़ुरआन शरीफ़ कलाम ख़ुदाए मलिक-उल-अज़ीज़-उल-अलाम है और कलाम बरहक़ और दुरुस्त है। जब तू क़ुरआन पढ़े तो ये कह कि ऐ ख़ुदा मुझे शैतान मलऊन से महफ़ूज़ रख।

बिसमिल्लाह-हिर्रहमा-निर्रहीम بسم اللہ الر حمٰن الرحیم। ख़ुदाए रहमान व रहीम के नाम से शुरू करता हूँ।" ऐ ईमान वालो जब जुमा के दिन नमाज़ की अज़ान हो तो बेचना छोड़कर अल्लाह की याद को दौड़ो। ये तुम्हारे हक़ में बेहतर है और तुमको समझ है। फिर जब नमाज़ तमाम हो चुके तो ज़मीन में फैल पड़ो और अल्लाह का फ़ज़्ल ढूंढो और अल्लाह की बहुत याद किया करो ताकि तुम्हारा भला हो और जब सौदा बिकता या कुछ तमाशा देखते हैं तो तुझे खड़ा छोड़कर उस की तरफ़ चले जाते हैं, जो अल्लाह के पास है। सो तमाशा और सौदागरी से बेहतर है और अल्लाह बेहतर रोज़ी देने वाला है।

"ख़ुदा तआला क़ुरआन शरीफ़ के वसीले से हमें और तुम्हें बरकत और उस की निशानीयों से और हिदायत से हमें और तुम्हें बदला देगा। ख़ुदा क़ादिर-ए-मुतलक़ और सख़ी और मेहरबान और क़दीम और पाक रहमत वाला है।" (सुरह 62 जुमा 9-11) यहां पर पहला ख़ुत्बा ख़त्म हुआ। थोड़ा तवक़्क़ुफ़ कर के ख़तीब दूसरा ख़ुत्बा शुरू करता है।

बिसमिल्लाह-हिर्रहमा-निर्रहीम بسم اللہ الر حمٰن الرحیم। ख़ुदाए रहमान व रहीम के नाम से शुरू करता हूँ।" सब तारीफ़ ख़ुदा को है जो ज़मीन और आस्मान का ख़ालिक़ और नूर और तारीकी का बनाने वाला है। मैं गवाही देता हूँ कि सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद नहीं। वो अकेला और उस का कोई शरीक नहीं। ऐ मोमिनो यक़ीन जानो कि ये इक़रार तुम्हें तक्लीफ़ और मुसीबत से बचाएगा। मैं शहादत देता हूँ कि मुहम्मद अरबी जो कुफ़्र और ज़लालत (गुमराही, गुनाह) के मिटाने वाले हैं, अल्लाह

के रसूल और बंदे। हमारे पैग़म्बर मुहम्मद अरबी पर ख़ुदाए रब-उल-खालिक़ की रहमत हो और उनकी औलाद पर और उन के अस्हाब पर उस का फ़ज़्ल व करम हो। ऐ ख़ुदा के बंदो तुम्हें और अपने नफ़्स को नसीहत देता हूँ कि ख़ुदा की बंदगी करो और उस से डरो जिसने ज़िंदगी और मौत को पैदा किया है और हमारे नेक कामों को ख़ूब पहचानता है। ऐ ख़ुदा अबू बक्र सिद्दीक़ याज़ गाज़ से और अमीर-ऊल-मोमनीन बेटे उमर खत्ताब से और उस्मान ज़ुल नुरैन से जिन्हों ने क़ुरआन मजीद पढ़ते वक़्त शहादत पाई और काफ़िर गुनाहगारों के ग़ारत करने वाले अली मुर्तज़ा से तू राज़ी रह। ऐ ख़ुदा बड़े इमामों हसन और हुसैन से राज़ी रहो और उनकी माँ फ़ातिमा ज़ुहरा से जो औरतों में ख़ास हैं और पैग़म्बर के चचों हम्ज़ा और अब्बास से और सब अस्हाब से राज़ी रह। ऐ ख़ुदा जो मुहम्मद अरबी के दीन की मदद करते हैं तू उनकी मदद कीजियो और मुझको उन्हीं के गिरोह में शामिल कीजिए और उसे बिगाड़ते हैं तो उन्हें तू बिगाड़ीये और हमें उनसे तू अलेहदा (अलग) रखिए। ऐ ईमान वालो दरहक़ीक़त ख़ुदा हुक्म करता है कि अपने रिश्तेदारों के दर्मियान अदल करो और मुहब्बत से पेश आओ और मना करता है कुफ़्र और मुन्किर से और नसीहत देता है तुम्हें। ख़ुदा सबसे आला, औला, बुज़ुर्ग और बड़ा है।

जिस मजमूआ-ए-खुतुब से ख़ुत्बात मज़्कूर-उल-सदर का तर्जुमा किया है। इस में और भी मुतअद्दिद ख़ुत्बे हैं जिनमें नमाज़ का, क़ियामत का, तर्क-ए-दुनिया का, ईद और अय्याम सय्याम का ज़िक्र है वग़ैरह। मगर सब ख़ुत्बों का तर्ज़ यकसाँ है। शुरू की और अख़ीर की इबारत सब में यकसाँ है। अलबत्ता हर ख़ुत्बे के बीच में चंद मख़्सूस जुमले होते हैं। सब ख़ुत्बों में दूसरा ख़ुत्बा एक ही होता है। ये दस्तूर है कि दूसरे ख़ुत्बे में उस मग़फ़िरत और बरकत का ज़िक्र होता है जो अश्ख़ास मुईन के वास्ते तलब की जाती है। दोनों ख़ुत्बे अरबी में पढ़ते हैं, जैसा कि हमारे यहां दस्तूर है कि ख़ुत्बा पढ़ने से मुराद किसी मसअले की तशरीह होती है। सो ये बात ख़ुत्बे से मक़्सूद नहीं है। मुसलमानों के यहां ये नहीं है कि मस्जिद में नमाज़ के साथ आयात क़ुरआन के मआनी व मतलब भी बयान किए जाएं। लेकिन ऐसा होता है कि

अगर मस्जिद में या किसी मुनासिब जगह पर लोग जमा हों या मुल्ला या कोई आलिम जिसका जी चाहे बतरीक़ वाअज़ लोगों को सुनाता है।

(2) सलात-उल-मुसाफ़ीर

जो सफ़र में पढ़ते हैं जो कोई तीन दिन या रात का सफ़र करे, उसे इस्तिलाह शरई में मुसाफ़िर कहते हैं। (नूर-उल-हिदाया, सफ़ा 158) मंज़िल का हिसाब इस तरह लगाते हैं कि अय्याम सफ़र में जितनी दूर ऊंट एक दिन में चल सकता है, वो एक मंज़िल है। अगर कोई मुसाफ़िर किसी जगह पंद्रह रोज़ ठहरने की नीयत करता हो तो उसे पूरी नमाज़ पढ़ना चाहीए और अगर इस से कम ठहरे या सफ़र में है तो इख़्तियार है कि इख़्तिसार करे। ऐसी सूरत में सिर्फ दो रकअत फ़र्ज़ पढ़ना चाहीए। सुन्नत और नफ़्ल चाहे तर्क करे, लेकिन तीन वित्र सलात उल इशा में पढ़ना वाजिब हैं। अगर कोई मुसाफ़िर किसी जगह बमुक़ाबिल मौजू दीन के इमामत के लायक़ मुतसव्वर हो तो वो बावजह सफ़र के सिर्फ दो रकअत पड़ेगा और मुक़्तदी (पैरु) बाक़ी रकअतों को पूरी कर लेंगे। लेकिन जिस जगह इमाम मुक़र्रर है अगर मुसाफ़िर उस का इक़्तिदा (पैरवी करना) करे तो इमाम सब रकअतें पड़ेगा और इस मुसाफ़िर को भी उस के पीछे पढ़नी पड़ेंगी। क़ायदा ये है कि मुक़तिदा (पेशवा, राहनुमा) को इमाम से नमाज़ कम नहीं पढ़नी चाहीए।

(3) सलात-उल-ख़ौफ़

नमाज़ ख़ौफ़, ये नमाज़ जंग के वक़्त पढ़ी जाती है। जब ग़नीम के नज़्दीक आ पहुंचने से ख़तर अज़ीम हो तो इमाम को चाहीए कि कुल फ़ौज को दो गिरोहों में मुनक़सिम करे। एक गिरोह का रुख दुश्मन की जानिब को हो और दूसरा नमाज़ में मसरूफ़ हो। अगर कुच पर हो तो एक रकअत और अगर मुक़ामी हो तो दो रकअत पढ़े। फिर ये गिरोह दुश्मन की जानिब रुख़ करे और दूसरा गिरोह बाक़ी रकअतों को तमाम करे। सलाम फ़क़त इमाम ही कहता है। (सफ़ा 197 देखो) फ़ौज का अव्वल हिस्सा क़िरअत नहीं करता यानी सुरह फ़ातिहा के बाद जो आयात पढ़ी जाती हैं, नहीं पढ़ता है। (सफ़ा

195 देखो) दूसरा गिरोह आकर जो कुछ पहले ने छोड़ दिया है उसे पूरा कर लेता है। अगर दुश्मन ऐसा क़रीब हो कि सवार को घोड़े से उतरने की जुर्रत ना हो तो हर शख़्स अपनी अपनी नमाज़ अलेहदा (अलग) पढ़े और रुकूअ व सज्दा इशारों से करे।

अगर वो ऐसी हालत में हो कि क़िब्ले की तरफ़ रुख नहीं कर सकता तो जायज़ है कि जो सिम्त मुनासिब मालूम हो उस तरफ़ मुँह करे। असनाए नमाज़ में हरगिज़ जंग ना करे, ना घोड़े को हरकत दे ताकि नमाज़ रायगान ना जाये। "और जब तुम मुल्क में सफ़र करो तो तुम पर गुनाह नहीं कि कुछ कम करो नमाज़ में से, अगर तुमको डर हो कि काफ़िर तुम्हें सताएँगे। अलबत्ता काफ़िर तुम्हारे सरीह दुश्मन हैं और जब ऐ रसूल तू उनमें हो फिर उनको नमाज़ में खड़ा करे तो चाहीए कि एक जमाअत उनकी तेरे साथ खड़ी हो और साथ लें अपने हथियार। फिर जब ये सज्दा कर चुकीं तो परे हो जाएं और दूसरी जमाअत आए जिसने नमाज़ नहीं की है। वो नमाज़ पढ़ें तेरे साथ।" (सुरह निसा 4:102-103)

(4) सलात-उल-तरावीह

हर शब को माह रमज़ान में दो दो रकअत कर के बीस रकअतें पढ़ी जाती हैं। इशा की नमाज़ के वक़्त सुन्नत और फ़र्ज़ के बाद और वित्र से पहले नमाज़ तरावीह पढ़ाते हैं। नमाज़ तरावीह भी दाख़िल सुन्नत है। इस का रिवाज ख़लीफ़ा उमर के वक़्त से है। मुहद्दिस अब्दुल रहमान बयान करते हैं कि रमज़ान की एक शब में मस्जिद को उमर के साथ गया। हमने देखा कि बाअज़ शख़्स अकेले नमाज़ पढ़ रहे हैं और बाअज़ जमाअत के साथ बक़िरअत पढ़ रहे हैं। उमर ने कहा कि अगर मैं सब को जमा करूँ ता आंकी वो सब एक इमाम के पीछे पढ़ें तो अच्छा होगा। उन्होंने ऐसा ही किया और दूसरी रात को जो लोग अलेहदा (अलग) पढ़ते थे बकस्रत आए और जमाअत की, तो उमर ने कहा कि ये बिद्दत हसना है। पस बिद्दत के जारी करने को ये

अच्छी सनद है। क्योंकि नबी अरबी ने फ़रमाया कि तुम मेरी सुन्नत की और ख़ुलफ़ाए राशिदीन की पैरवी करो। एक हदीस सहीह भी इस मज़्मून की है कि ख़ुदा ने रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ किए हैं और क़ियाम सुन्नत है।(1)

नबी को तरद्दुद हुआ कि मबाद नमाज़ तरावीह फ़र्ज़ हो जाये, इस वास्ते आपने दो रात पैहम (लगातार) जा के तीसरी रात वक़्फ़ा किया और ये फ़रमाया कि मुझे अंदेशा हुआ कि अगर हर रात जाया करूँ तो लोग शायद फ़र्ज़ समझें। (नूर-उल-हिदाया, सफ़ा 141) तादाद रकअत की बीस है। क्योंकि मुहम्मद अरबी और ख़लीफ़ा उमर इसी क़द्र रकअतें पढ़ते थे। शीया नमाज़ तरावीह मुतलक़ नहीं पढ़ते हैं, ना ऐसे मौक़ों पर कभी मस्जिद में जाते हैं। क्योंकि हर चार रकअत के बाद तस्बीह में चारों ख़लीफों की तारीफ़ पढ़ी जाती है। जिनमें से तीन के साथ शीयों को क़तई अदावत है।

(5) सलात-उल-कसूफ़ सलात-उल-ख़सूफ़

जो नमाज़ सूरज या चांद गरहन होते वक़्त पढ़ी जाती है वो "सलात-उल-कसूफ़" कहलाती है। इमाम जमाअत के साथ मस्जिद में दो रकअत पढ़ता है। अज़ान और इक़ामत नहीं होती है, ना कोई ख़ुत्बा पढ़ा जाता है। हर रकअत में एक रुकूअ पढ़ते हैं, मगर शीया दो रुकूअ पढ़ते हैं। बाद इतमाम (तमाम करना) रकअत के ताइख़्ततताम कुसूफ़ मौजूदीन मसरूफ़ बदुआ रहते हैं। नमाज़ ख़ुसूफ़ भी बजुज़ इतने फ़र्क़ के कि जमाअत की क़ैद नहीं है, हर मुसलमान तन्हाई में अपने घर पर पढ़ सकता है। ये दस्तूर नबी की हदीस के मुवाफ़िक़ है कि जब तुम गहन (गरहन) देखो तो ख़ुदा की याद करो और दुआ माँगो और नमाज़ पढ़ो ताकि फिर रोशनी हो जाएगी।

(6) सलात-उल-इस्तसक़ा

ये ख़ुश्की के वक़्त पढ़ी जाने वाली नमाज़ है। जब पानी ना बरसे तो हर शख़्स को चाहीए कि क़िब्ला रू हो कर ख़ुदा से दुआ मांगे। नमाज़ इस्तिस्क़ा घर पर अकेले में भी हो सकती है। ये एहतियात ज़रूर चाहीए कि

कोई ज़िम्मी[51] उस वक़्त मौजुद ना हो। सबब उस का ये है कि नमाज़ वास्ते बरकत के है और ख़ुदा तआला की बरकत ऐसे वक़्त में कि कोई ज़मी भी शरीक जमाअत हो नहीं नाज़िल होती है। सलात इल्ला सत्सका कोई नमाज़ नहीं है, दुआ है।कोई मोअतबर हदीस इस बाब में नहीं आई है कि नबी अरबी ने ऐसे मौक़ा पर कभी नमाज़ पढ़ी।अलबत्ता इस बाब में बहुत सी हदीसें हैं कि आपदा किया करते थे। ये एक अच्छी नज़ीर इस अम्र की है कि लफ़्ज़ सलात मुश्तर्क अलमाअनी है यानी मुतअद्दिद मअनी रखता है।इस के मामूली मअनी नमाज़ के हैं और यहां बमाअनी दुआ है।

(7) सलात-उल-जनाज़ह

ये जनाज़े की नमाज़ है। जब कोई शख़्स क़रीब-उल-मर्ग होता है तो जो लोग उस वक़्त मौजूद होते हैं वो उस के दाएं जानिब और मुँह क़िब्ला की तरफ़ फेर देते हैं। उस वक़्त मरने वाले को कलमा-ए-शहादत पढ़ना चाहीए। "में शहादत देता हूँ कि ख़ुदा एक है और कोई उस का शरीक नहीं और ब-तहक़ीक़ मुहम्मद अरबी उस के बंदे हैं और रसूल हैं।" बाद इंतिक़ाल के लाश को रखकर ख़ुशबू जलाते हैं और कफ़न को ताक़ मर्तबा मुअत्तर करते हैं। हदीस में आया है कि अदद ताक़ इसलिए मुक़र्रर हुआ है कि जो अदद वहदत की तरफ़ इशारा करता है वो ताक़ है, जुफ़्त नहीं। अव्वल मुर्दे का वुज़ू कराते हैं। पानी में फूल डाल कर जोश देते हैं। इस पानी से मुर्दे का सर और दाढ़ी धोते हैं। फिर ग़ुस्ल किया जाता है। जो आज़ा बदन के सज्दे में काम देते हैं यानी पेशानी, नाक, हाथ, घुटने और पैर को काफ़ूर (कपूर, एक निहायत ख़ुशबूदार तल्ख़ ज़ाइक़े का सफ़ैद माद्दा जो बतौर दवा इस्तिमाल होता है और खुला रहने से उड़ जाता है) से मलते हैं।

जनाज़े की नमाज़ फ़र्ज़ किफ़ाया है यानी अगर जमाअत के चंद आदमी भी उसे पढ़ लें सब के ज़िम्में से उतर जाती है। इस नमाज़ के फ़र्ज़ होने के सबूत में क़ुरआन की ये आयत नक़्ल की जाती है। "उनके माल में से ज़कात ले के उनको इस से पाक करे और तर्बीयत और दुआ उनको दे। अलबत्ता

51 ग़ैर मुस्लिम जो इस्लामी सल्तनत में रहे और जज़्या अदा करे। उस के एवज़ में उसे फ़ौजी ख़िदमात से मुस्तसना कर दिया जाता था। (फ़िरोज़-उल-लग़ात (जामेअ), सफ़ा 731)

उनके वास्ते आसूदगी है और अल्लाह सब सुनना जानता है" (सुरह तौबा आयत 104) इस अम्र का सबूत एक हदीस से है कि जनाज़े की नमाज़ फ़र्ज़-ए-ऐन नहीं है। (जिसका अदा करना सब पर फ़र्ज़ हो) बल्कि फ़र्ज़ किफ़ाया है।

मुहम्मद अरबी ने एक दफ़ाअ किसी मुसलमान की मौत के जनाज़े पर नमाज़ पढ़ी। पस अगर ये नमाज़ फ़र्ज़ होती तो नबी कभी तर्क ना करते। आपके तरीक़ से हक़ीक़त इस फ़र्ज़ की जिसका ज़िक्र क़ुरआन की आयत मज़्कूर-उल-सदर में है, क़रार पाई है। जनाज़े की नमाज़ मुर्दा के सामने खुले मैदान में, मस्जिद के आगे या किसी और क़रीब जगह में पढ़ते हैं। जब सब जमा हो जाते हैं तो इमाम या पेशवा ये कहता है :-

"शुरू करता हूँ मैं नमाज़ इस जनाज़ा की" सब जमाअत सफ़ बांध कर और क़िब्ला-रू हो कर खड़े होते हैं। इमाम ज़रा आगे को अगर मय्यत मर्द है तो सर के बराबर और अगर औरत है तो सीने के बराबर खड़ा होता है और सब खड़े हो कर इस तरह नीयत करते हैं। पढ़ता हूँ मैं नमाज़ वास्ते अल्लाह के और दुआ वास्ते इस मय्यत के, पीछे इस इमाम के। फिर पहली तक्बीर, फिर हाथों को बिना गोश पर रखकर कहते हैं "अल्लाहु-अकबर" اللہ اکبر (अल्लाह सबसे बड़ा है) फिर सना पढ़ते हैं (देखो सफ़ा 195 سبحانک اللہم و بحمدک و تبارک السمک و تعالی جدک وجل ثناک ولا الہ غیرک फिर दूसरी तक्बीर कहते हैं "अल्लाहु-अकबर" اللہ اکبر (अल्लाह सबसे बड़ा है) फिर दुरूद इब्राहिम पढ़ते हैं :-

اللہم صلی علی محمد وعلی آل محمد کما صلیت علیٰ ابراہیم وعلیٰ آل ابراہیم انک حمید مجید۔ اللہم بارک علیٰ محمد وعلی آل محمد کما بارکت علیٰ ابراہیم وعلیٰ آل ابراہیم انک حمید و مجید

"ऐ अल्लाह रहमत भेज मुहम्मद पर और उनकी औलाद पर जैसा कि तू ने इब्राहीम पर और उनकी औलाद पर रहमत और अमन और बरकत भेजी और रहम व तरहम किया, तू ही सराहा गया और बुज़ुर्ग है।

फिर तीसरी बार तक्बीर कही "अल्लाहु-अकबर" اللہ اکبر (अल्लाह सबसे बड़ा है) फिर ये दुआ पढ़ी "ऐ अल्लाह हमारे ज़िंदों को और मुर्दों को और उनको जो ग़ायब हैं और छोटों और बड़ों को और मर्द को और औरत को बख़्श दे और ख़ुदा हम में से जिसे तू ज़िंदा रखे इस्लाम पर क़ायम रखियो और जिसे तू मारे उसे ईमान के साथ उठाईओ।" जो मय्यत लड़का या मजनूं है तो ये दुआ पढ़ते हैं। "ऐ ख़ुदा तू उसे हमारी हिदायत और आइंदा के अज्र का ज़रीया गिर दान और हमारे वास्ते शफ़ाअत करने वाला और शफ़ाअत पाने वाला कर दे और जो मय्यत लड़की है तो ये दुआ पड़ते हैं :-

اللھم جعلھا لنا فرطاً و اجعلھالنا اجراً
و ذخراً و اجعلھالنا شافعتہ و شفقتۃً

"मअनी इस का भी वही हैं, सिर्फ ज़मीर का फ़र्क़ है। इस के बाद चौथी तक्बीर होती है "अल्लाहु-अकबर" (अल्लाह सबसे बड़ा है) फिर सब ये पढ़ते हैं :-

ربنا آتنا فی الدنیا حسنۃ و فی آخرۃ
وقنا عذاب القبر و عذاب النار

ऐ ख़ुदा दुनिया और उक़्बा (आख़िरत) में हमें नेकी की तौफ़ीक़ दे और अपनी रहमत से अज़ाब क़ब्र और दोज़ख़ से बचा। फिर हर शख़्स हस्ब-ए-दसतूर और नमाज़ों के बास्ता सलाम देता है। इमाम की नीयत सलाम के वक़्त ये होती है कि दोनों निगहबान फ़रिश्तों और सब मुक़्तदियों को सलाम पहुंचे और हर मुक़्तदी ये नीयत करता है कि मेरे निगहबान फ़रिश्तों को और नमाज़ के साथीयों को और इमाम को सलाम पहुंचे। पस अब नमाज़ ख़त्म हुई। इस के बाद लोग दूसरी दुआ पढ़ते हैं और वो ये है :-

"ऐ हमारे रब दिल ना फेर हमारे जब हमको हिदायत दे चुका और हम को अपने यहां से मेहरबानी दे। बेशक तू ही है सब देने वाला। ऐ ख़ुदा तू इस का मालिक है। तूने इसे पैदा किया और तू ने इसे पाला और तू ही

ने इस्लाम की तरफ़ इस की हिदायत की और तू ही इस की जान लेने वाला है और ज़ाहिर और बातिन इस का तू ही ख़ूब जानता है। ऐ ख़ुदा तू हमारे वास्ते शफ़ी मुक़र्रर कर और इसे बख़्श दे क्योंकि तू ग़फ़ूर व रहीम है।

फिर लाश के सर पर जा कर ये पढ़ते हैं :-

इस किताब में कुछ शक नहीं, राह बताती है डर वालों को जो यक़ीन करते हैं बिन देखे और दुरुस्त करते हैं नमाज़ और हमारा दिया कुछ ख़र्च करते हैं (ख़ुदा की राह में) और जो यक़ीन करते हैं जो कुछ उतरा तुझ पर (मुहम्मद अरबी पर) और जो कुछ उतरा तुझे से पहले। उन्होंने पाई राह अपने रब की और वही मुराद को पहुंचे।" (सुरह बक़रह 2:1-।4) फिर उस लाश के पांव पर आके पढ़ते हैं :-

"जो कुछ रसूल पर उस के रब की तरफ़ से उतरा उसे उसने और मुसलमानों ने माना। सबने अल्लाह को और उस के फ़रिश्तों को और किताबों और रसूलों को मान लिया। हम उस के रसूलों में किसी को जुदा नहीं करते और हमने सुना और क़ुबूल किया। ऐ हमारे रब तेरी बख़्शिश चाहीए और तुझी तक रुजू है। अल्लाह किसी शख़्स को उस की गुंजाइश से ज़्यादा तक्लीफ़ नहीं देता है। उस का कमाया, उसी को मिलता है और उस का किया उसी पर पड़ता है। ऐ हमारे रब अगर हम भूल चूक करें तो हम पर मुवाख़िज़ा मत कर। ऐ हमारे रब हम पर भारी बोझ जैसा कि अगलों पर रखा था मत रख। ऐ हमार रब जिसकी हमको ताक़त नहीं मत उठवा और हमसे दर गुज़र कर और हमको बख़्श दे और हम पर रहम कर। तू हमारा साहब है। सो हमारी मदद कर काफ़िरों की क़ौम पर।" (सुरह बक़रह 2:285-286)

फिर ग़म करने वालों में कोई ख़ास आदमी इज़न-ए-आम देता है यानी ये कहता है कि अब सबको रुख़स्त है। ये सुनकर बाअज़ घरों को लौट जाते हैं और बाअज़ क़ब्रिस्तान तक जनाज़े के साथ जाते हैं जब जनाज़ा उठता है या जब कि क़ब्र के पास इसे रखते हैं तो कहते हैं "हम तुझे ख़ुदा के नाम पर और नबी के दीन पर ज़मीन के सुपुर्द करते हैं।

अगर ज़मीन सख़्त होती तो क़ब्र की बग़ल में लहद (क़ब्र) के अंदर का वो गढ़ा जिसमें मुर्दे को रखा जाता है भी खुदवाते हैं और लहद इतनी ऊंची होनी चाहीए कि जिस वक़्त मुन्किर नकीर आएं तो मुर्दा बैठ सके और जो ज़मीन नरम होती है तो क़ब्र के अंदर और एक छोटी सी क़ब्र बनाते हैं। इस में मुर्दा को रखते हैं। दोनों सूरतों में ये ख़्याल रखते हैं कि लाश ऐसे महल पर हो कि हरकत में दिक़्क़त ना हो। मुर्दे का मुँह क़िब्ला की तरफ़ करते हैं और कफ़न के बंद खोलते वक़्त लोग ये कहते हैं "ऐ ख़ुदा मुर्दा को सवाब आख़िरत से महरूम ना रख और तक्लीफ़ से महफ़ूज़ रख।"

फिर हर शख़्स मिट्टी उठाता है और हर दफ़ाअ बिस्मिल्लाह और सुरह इख़्लास पढ़ कर मुर्दे के सिरहाने पर डाल देता है। कच्ची और बाँसों और तख़्तों से क़ब्र के अंदर कड़ा (धात का हल्क़ा या कुंडी) लगाते हैं और फिर हर शख़्स तीन बार मुट्ठी भर भर कर मिट्टी डालता है। पहली बार ये पढ़ता है मिन्हा ख़ल्क़ना कुम منہا خلقناکم "इसी ज़मीन से हमने तुमको बनाया" और दूसरी बार वफ़ीहा फ़ईद कुमम وفیہا فعیدکم "और इसी में तुमको फिर डालते हैं।" और तीसरी बार की मिट्टी पर ये पढ़ते हैं و منہا نخرجکم تارۃ الا خرٰی "और इसी से तुमको दूसरी बार निकालेंगे" (सुरह ताहा 20:57) फिर वो ये दुआ पढ़ते हैं। "ऐ ख़ुदा मुहम्मद अरबी के वसीले से तू इसे ग़ज़ब की तक्लीफ़ से बचा।"

फिर सब हाज़िरीन मिट्टी भरते वक़्त कहते हैं اللہم احفظہ من الشیطان و عذاب القبر "ऐ ख़ुदा तू इसे शैतान से और अज़ाब क़ब्र से महफ़ूज़ रख।" जब मिट्टी डाल चुकते हैं तो तीन बार या पाँच बार या सात बार और इस पर पानी छिड़कते हैं और एक हरी टहनी किसी दरख़्त की गाड़ देते हैं। मद्रास में अनार की टहनी गाड़ने का दस्तूर है। फिर अहले मातम से एक शख़्स क़रीब वस्त क़ब्र के तल्क़ीन पढ़ता है। "ऐ अल्लाह के बन्दे, ऐ बेटे फ़ुलां औरत के इस ईमान को जिसका तू ने इस दुनिया में इक़रार किया था आख़िर तक याद रख यानी ये कि सिवाए ख़ुदा के कोई माबूद नहीं और ब-तहक़ीक़ मुहम्मद अरबी अल्लाह के रसूल हैं और बहिश्त और दोज़ख़ और बाद मौत के जी उठना बरहक़ है और ये कि एक रोज़

इन्साफ़ मुक़र्रर है और मैं इक़रार करता हूँ कि ख़ुदा मेरा रब है और इस्लाम मेरा दीन है और मुहम्मद अरबी मेरे नबी हैं और क़ुरआन मेरा हादी है और काअबा मेरा क़िब्ला है और मुसलमान मेरे भाई हैं और ख़ुदा तू इसी (मुर्दा को) ईमान में पुख़्ता रख और इस की क़ब्र को वसीअ कर और इस के इम्तिहान को (जो मुन्कर नकीर लेंगे) आसान कर और इसे मर्तबा दे और इस पर रहम कर दे, निहायत रहम करने वाले साहब।" फिर और शख़्स जो मौजूद होते हैं और इस पर फ़ातिहा पढ़ते हैं।

इस के बाद इख़्तियार है कि सुरह यासीन (36) और सुरह मुल्क (67) पढ़ें। लेकिन इस का रिवाज आम नहीं है। फिर क़ब्र से 40 क़दम हट कर फिर फ़ातिहा पढ़ते हैं। क्योंकि इसी वक़्त से मौत का इम्तिहान शुरू हो जाता है। पहली रात मुर्दे पर बड़ी तक्लीफ़ होती है। इस वास्ते उस रात उस के नाम पर ख़ूब ख़ैरात देनी चाहीए और तख़्फ़ीफ़ अज़ाब के वास्ते दो रकअत नफ़्ल है और हर रकअत में सुरह फ़ातिहा के बाद आयत-उल-कुर्सी (सुरह बक़रह 2:256) तीन बार, फिर सूरह तक़ासुर (102) ग्यारह बार और सुरह इख़्लास (112) ग्यारह बार पढ़नी चाहीए। फिर सलाम और दुरूद के बाद नमाज़ी दोनों हाथ उठा कर बड़े अजुज़ व इन्किसार से ये दुआ करता है कि इस नमाज़ का सवाब मुर्दे की रूह को पहुंचे।

(8) सलात-उल-इस्तख़ारा

जब कोई शख़्स कोई काम करना चाहता है तो उस से पहले ये नमाज़ पढ़ता है। इस में दो रकअतें हैं। हर रकअत के बाद ये दुआ पढ़ी जाती है। "ऐ ख़ुदा जो कुछ मेरे हक़ में बेहतर है वो ज़ाहिर कर और बदी से महफ़ूज़ रख और तौफ़ीक़ ख़ैर की अता कर। क्योंकि में नहीं जानता कि मेरे हक़ में क्या बेहतर है।" ये दुआ पढ़ कर सो रहता है और मुतवक़्क़े होता है कि आलम-ए-ख़्वाब में इलक़ा के ज़रीये से इस अम्र ख़ास के करने या ना करने की हिदायत हो जाएगी।

(9) सलात-उल-तरावीह

तरावीह की बीस रकअत होती हैं जो माह रमज़ान की हर इशा को पढ़ते हैं। इस का बयान दूसरे बाब में रमज़ान के रोज़ों के साथ होगा।

(3) रमज़ान के तीस रोज़े

रोज़े की तारीफ़ ये है कि तुलू-ए-आफ़्ताब से ता बह ग़ुरूब (ग़ुरूब-ए-आफ़्ताब) खाने, पीने और जिमा से परहेज़ करना। रोज़े की नीयत दिल में ज़रूर करना चाहीए कि "ऐ मेरे ख़ुदा मैं नीयत करता हूँ कल के रोज़े की ख़ास तेरे वास्ते یاربی الصوم فداً نویت خالصاً لک "मेरे अगले और पिछले गुनाहों को माफ़ कर" और जब रोज़ा ख़त्म हो जाता है तो ये कहते हैं "ऐ ख़ुदा मैंने तेरे वास्ते रोज़ा रखा था। तुझ ही पर मेरा ईमान था और तेरे ही ऊपर भरोसा था और अब मैं रोज़े को इस खाने से जो तूने दिया है, इफ़्तार करता हूँ। तू ही क़ुबूल करने वाला है" माह रमज़ान के तीसों रोज़े फ़र्ज़ हैं। क़ुरआन में आया है "ऐ ईमान वालो तुम पर रोज़े का हुक्म हुआ है, जैसे तुमसे अगलों पर हुआ था। महीना रमज़ान का जिसमें नाज़िल हुआ क़ुरआन लोगों की हिदायत के वास्ते और खुली निशानीयां राह की और फ़ैसला। फिर जो कोई पाए तुम में ये महीना भर वो रखे।" (सुरह बक़रह 2:183-185) इस पर इज्मा का इत्तिफ़ाक़ भी है। नाबालिग़ लड़की या लड़के और मजनूं आज़ाद हैं। मरीज़ और मुसाफ़िर को इख़्तियार है कि क़ज़ा करे और जो कोई बीमार हो या सफ़र में हो गिनती और दिनों से चाहीए। "अल्लाह तुम पर आसानी चाहता है मुश्किल नहीं चाहता है और इस वास्ते कि गिनती पूरी करो।" (सुरह बक़रह 2:185) उसे क़ज़ा करना कहते हैं यानी जो रोज़ा जाता रहे उस के एवज़ में किसी और वक़्त रोज़ा रखने को क़ज़ा का रोज़ा हैं।

अगर कोई शख़्स कहे ख़ुदा मेरी फ़ुलानी मुराद पूरी करे तो उस के नाम पर रोज़ा रखूँगा (यानी नज़र का रोज़ा) या अगर कोई ख़ता की है और बतौर कफ़्फ़ारे के रोज़ा इस पर आइद हुआ है तो दोनों सूरतों में रोज़ा उस पर वाजिब हो जाता है। वो लोग अपने दावे को क़ुरआन की इस आयत पर महमूल करते हैं। "फिर चाहीए कि अपना मील दूर करें और अपनी नज़रें पूरी करें।" (सुरह अल-हज्ज 22:30) बाक़ी और कुल रोज़े नफ़्ल हैं। नफ़्ल

के मअनी (सफ़ा *...) में बता चुके हैं। यूं अशुरा मुहर्रम का रोज़ा और अय्याम-ए-बैज़ चांदनी के दिन यानी हर क़मरी महीने की 13,14,15 का रोज़ा और पंद्रहवीं शाबान यानी शब-ए-बरात से दूसरे दिन का रोज़ा और जो महीना तीस दिन का हो तो तीसवीं तारीख़ का रोज़ा ये सब नफ़्ल हैं। जिस किसी ने रोज़ा नफ़्ल की नीयत की हो, अगर कोई उस की दावत करे तो रोज़दार को जायज़ है कि रोज़ा तोड़ डाले। बुख़ारी में आया है कि औरत बग़ैर मर्ज़ी अपने शौहर के रोज़-ए-नफ़्ल ना रखे। लेकिन शौहर को औरत की मर्ज़ी का इत्तिबा लाज़िम नहीं।

"मर्द औरतों पर हाकिम हैं। इस वास्ते बड़ाई दी अल्लाह ने एक को एक पर और इस वास्ते कि उन्होंने अपने माल ख़र्च की।" (सुरह निसा 4:38) कहते हैं कि एक रोज़ कोई औरत पैग़म्बर अरबी के पास आकर कहने लगी कि मेरे ख़ावंद ने मुझे थप्पड़ मारा है। मुहम्मद अरबी ने चाहा कि शौहर को अपने नामुलाइम फ़ेअल की सज़ा दे। लेकिन आस्मान से आयत मज़्कूर-उल-सदर नाज़िल हुई जिससे इस अम्र का तस्फ़ीया हो गया कि औरत मर्दों से कमतर हैं। इसी आयत का जुज़्व ये भी है "**और जिन औरतों की बदखूई का तुमको डर है तो उनको समझाओ और सोते में उनको जुदा करो और उनको मारो।**" शवाल के चंद रोज़े मुस्तहब हैं। क्योंकि मुहम्मद अरबी को इत्तिला दी गई थी कि लोगों से कह दें। जो कोई रोज़े रमज़ान के और अगले महीने में यानी शवाल में सात रोज़े रखेगा तो गोया उसने तमाम उम्र रखे।

अगर अब्र के सबब से या गर्द-ओ-ग़ुबार के सबब से चांद नज़र ना आए तो किसी मोअतबर आदमी की ऐसी शहादत काफ़ी है जो कहे कि रमज़ान शुरू हो गया। इमाम शाफ़ई के नज़्दीक दो गवाह चाहीऐं, लेकिन हदीस ज़ेल उनकी राय के मुख़ालिफ़ वारिद है। एक अरब नबी अरबी के पास आया और कहा कि मैंने चांद देखा है। आपने फ़रमाया तू ईमान रखता है कि सिवाए ख़ुदा के कोई दूसरा माबूद नहीं है। उस ने जवाब दिया बेशक। इस पर नबी अलैहिस्सलाम ने हिलाल मोअज़्ज़िन को बुला कर कहा लोगों से कह दो कि रोज़ा रखें। इस से साबित होता है कि एक नेक मुसलमान की शहादत इस मुआमले में काफ़ी है और जिन सूरतों में रोज़ा टूट जाता है, वो ये हैं :-

अगर दाँत माँजते वक़्त हलक़ में पानी चला जाये या अगर ज़बरदस्ती खाना खिलाए या अमल कराया जाये। या कानों में या सर के ज़ख़्म में दवा डाली जाये। या इस गुमान से कि रात है और दर-हक़ीक़त दिन हो खाना खा लिया जाये या रमज़ान के रोज़े की नीयत दुरुस्त ना की हो। या रात का खाना दाँतों में या दाँत के किसी जोफ़ में रह गया हो और वो एक दाने से बड़ा हो। या अगर खाना रद्द हो जाये तो इन सब सूरतों में रोज़ा टूट जाता है और क़ज़ा आइद होती है।

अगर कोई क़सदन रोज़ा तोड़ डाले तो इस के कफ़्फ़ारे में या तो एक ग़ुलाम आज़ाद करे या अगर ये ना हो सके तो दो माह मुतवातिर रोज़ा रखना चाहीए। अगर ये भी ना हो तो साठ आदमीयों की दो दो ख़ुराक एक दफ़ाअ में दे दे या साठ दिन तक रोज़ाना दो ख़ुराकें एक आदमी को दिया करे। किसी चीज़ के चख लेने या सुर्मा आँखों में लगाने से या दाढ़ी में तेल डालने से या दाँत मांजने से या बोसा लेने से रोज़ा नहीं टूटता है। मगर वली यही है कि दिन में ऐसा ना करे। इमाम शाफ़ई के नज़्दीक बाद दोपहर के ऐसा करना नादुरुस्त है। इमाम मौसूफ़ एक हदीस जो तबरानी से पहुंची है, पढ़ा करते थे। नबी अरबी ने कहा जब तुम रोज़ा रखो तो सुबह फ़ज्र को दाँत मांजो क्योंकि रोज़ादार के ख़ुशक होंट इन्साफ़ के दिन उस के वास्ते नूर हो जाएंगे। अगर कोई पीराना-साली से ताक़त रोज़े की ना रखता हो तो सदक़ा देना चाहिए यानी एक मुहताज को खिलाए। इस राय का माख़ज़ क़ुरआन की एक आयत है जिस पर बड़ी बहस है और वो ये है **"और जिनको ताक़त है रोज़ा रखने की फिर भी नहीं रखते तो बदला चाहिए एक फ़क़ीर का खाना।"** (सुरह बक़रह 2:80) इस से पाया जाता है कि हर शख़्स को रोज़ा रखने या ना रखने का इख़्तियार है। बाअज़ मुफ़स्सिर तस्लीम करते हैं कि पहले यूंही था बाद को ये हुक्म दूसरी आयत से मंसूख़ हो गया। फिर जो कोई तुम में ये महीना पाए तो वो रखे।

बाअज़ कहते हैं हर्फ़-ए-नफ़ी यानी "ला" (لا) का بطیقوتہ के पहले (यानी ताक़त से पहले नहीं का हर्फ़) मुक़द्दर समझना चाहिए। इस सूरत में जो इबारत ख़त वहदानी के अंदर है, नहीं बढ़ाई जाएगी। बाअज़ इस की तफ़्सीर इस तरह करते हैं कि जिनको ताक़त है हम-मअनी उस के

है जिनको इस से सख़्त तक्लीफ़ है, मसलन उम्र रसीदा और ज़ईफ़ आदमी। यही तफ़्सीर बेहतर मालूम होती है और इसी पर अमल दरआमद है। जो औरतें हामिला हैं या जो माएं अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं या बीमार हैं और एहतिमाल है कि हालत मर्ज़ में रोज़ा ज़रर पहुंचाएगा तो उन्हें लाज़िमी है कि क़ज़ा करें। इन सूरतों में सदक़ा देना या मुहताज को खिलाना चाहीए।

अबू दाऊद कहते हैं कि मुहम्मद अरबी ने फ़रमाया कि ख़ुदा ने मुसाफ़िर को इजाज़त दी है कि नमाज़ में क़सर (वो नमाज़ जो हालत-ए-सफ़र में मुक़र्ररा रकअतों से कम पढ़ी जाये) और रोज़ा को क़ज़ा करें। औरतों को भी क़ज़ा रोज़ा की इजाज़त है। क़ुरआन में भी साफ़ लिखा है कि "जो कोई बीमार हो या सफ़र में हो तो और दिनों से गिनती चाहीए।" (सुरह बक़रह आयत 181) साल में पाँच दिन ऐसे हैं कि उन दिनों में रोज़ा रखना हराम है। ईद-उल-फित्र, ईद-उल-अज़हा और तीन रोज़ उस के बाद यानी 11,12,13 ज़ील-हज्ज। अगर रमज़ान के महीने में कोई शख़्स बालिग़ हो या कोई काफ़िर मुसलमान हो तो उस पर इन अय्याम का रोज़ा फ़र्ज़ है। जो बाक़ी रहे हौं सहरी खाना यानी माह रमज़ान में तुलू-ए-आफ़्ताब से पहले कुछ खा लेना है।

बुख़ारी, मुस्लिम और तिर्मिज़ी तीनों बड़े मुहद्दिसों का इत्तिफ़ाक़ है कि नबी अरबी ने फ़रमाया कि सहरी खाया करो क्योंकि इस में बरकत है। क्योंकि हमारे और अहले-किताब (मसीहीयों) के रोज़े में सहरी का फ़र्क़ है। ग़ुरूब-ए-आफ़्ताब के ऐन बाद जो खाना खाते हैं उसे "इफ़्तार करना" यानी खोलना कहते हैं। हिन्दुस्तान में ये दस्तूर है कि छुवारे (खजूर) से और अगर छुवारा मयस्सर ना हो तो थोड़े पानी से रोज़ा खोलते हैं। तुर्की में ज़ैतून से रोज़ा इफ़तार करने को बेहतर जानते हैं। मुसलमानों में रोज़ा सिर्फ दिन का होता है। अमरा रात को दिन कर के रोज़े की सख़्ती से महफ़ूज़ रहते हैं। बल्कि अमीर लोग अक्सर रोज़ा रखते भी नहीं हैं, मगर ये फ़ेअल पोशीदा करते हैं। क्योंकि उमूमन तमाम जहान के मुसलमान ऐसे शख़्स से जो रमज़ान की हुर्मत नहीं करता नफ़रत करते हैं। मेहनत मज़दूरी करने वाले आदमीयों को रोज़ा सख़्त दुशवार है, कैसे ही मेहनत का काम करते हों कोई पीने की चीज़ भी नहीं पी सकते हैं। फिर भी आम क़ायदा ये है कि अदना रोज़े के

बड़े पाबंद होते हैं। गर्म मुल्कों में रोज़े की सऊबत ज़्यादा होती है। लोगों की निगाहें आस्मान पर लगी रहती हैं कि सूरज डूबते ही रोज़े को इफ़्तार करें। माह रमज़ान में सिवाए रोज़ा रखने के और रसूम भी होते हैं, जिनकी तफ़्सील बात माबाअ्द होगी।

(4) ज़कात

ख़ैरात के वास्ते दो लफ़्ज़ मुस्तअमल हैं। एक तो ज़कात है जिसके मअनी पाक करने के हैं और वो बजुज़ ख़ास सूरतों के हर मुसलमान से ली जाती है। दूसरा सदक़ा है जो ईद-उल-फित्र के रोज़ दिया जाता है। अव्वल हम ज़कात का बयान करते हैं। क़ुरआन और इज्मा से हर मुसलमान बालिग़ पर फ़र्ज़ है कि एक साल गुज़रने के बाद अपने माल की ज़कात दे, बशर्ते के उस के हवाइज (हाजत की जमा) को मुकतफ़ी हो और साहब निसाब हो यानी जिसके पास क़रीब पच्चास रुपया सालाना के आमदनी हो। क़ुरआन में लिखा है "खड़ी करो नमाज़ और दो ज़कात" (सुरह बक़रह 2:40) ख़लीफ़ा उमर इब्ने अब्दुल अज़ीज़ कहा करते थे "नमाज़ निस्फ़ राह तक पहुंचाती है और रोज़ा ख़ुदा के मकान के दरवाज़े तक पहुँचाता है और ज़कात मंज़िल-ए-मक़्सूद तक पहुंचा देती है।" जिन तीन शर्तों से ज़कात लाज़िम आती है इस्लाम, हुर्रियत (गुलामी के बाद आज़ादी) और निसाब हैं। इस का सबब ये है कि ज़कात इबादत का अस्ल जुज़्व है और चूँकि काफ़िर की इबादत मक़्बूल नहीं होती। इस वास्ते उस पर ज़कात भी नहीं है।

ज़कात के वास्ते हुर्रियत भी ज़रूरी है, क्योंकि ग़ुलामों के पास माल नहीं होता है और निसाब भी शर्त है। क्योंकि नबी अरबी का हुक्म यूं है जो निसाब रोज़ मर्राह के ख़र्च में आता है उस पर ज़कात नहीं है। इस में वो ग़ुलाम भी दाख़िल है जो अपनी ज़ात की ख़िदमत के वास्ते हो और खाने का अनाज, आलात, हथियार, किताबें, असास-उल-बैत (घर का सामान, मनक़ूला जायदाद) पहनने के कपड़े और सवारी का घोड़ा वग़ैरह। क्योंकि एक हदीस का मज़्मून है कि मुहम्मद अरबी ने इन सब चीज़ों को ज़कात से बरी किया है। दूसरी हदीस जो बुख़ारी से मर्वी है, उस का ये बयान है कि जो

ग़ुलाम घर के काम में आते हैं उन पर सिर्फ सदक़ा फ़ित्र देना चाहीए। सदक़ा फ़ित्र ये है कि एक ख़ुराक खाना या इस क़द्र क़ीमत मिस्कीन को चाहीए।

अगर कोई मक़रूज़ हो तो बाद मिनहाई (घटाओ, नफ़ी) क़र्ज़ के जो माल रहे, इस पर ज़कात आइद होगी। लेकिन अगर वो क़र्ज़ ख़ुदा के नाम पर हो, मसलन कोई नज़र मानी थी या हुक्म शरई की कोताही से कफ़्फ़ारा देना है तो उसे इस माल से जिस पर ज़कात लाज़िम है, नहीं मिलना चाहीए। मिक़दार सोने की जो निसाब में दाख़िल है 20 मंकवा और चांदी के दो सौ दिरहम है (जो 52 रुपये के बराबर) है और चांदी और सोना ख़्वाह मज़रूब हो या ग़ैर मज़रूब हो चालीसवां हिस्सा उस का ज़कात में देना चाहीए। बाज़ों का सोने चांदी का ज़ेवर इस से मुस्तसना है। लेकिन इमाम शाफ़ई इस को नहीं तस्लीम करते और सबूत दावा में हदीस अबू दाऊद से सनद पकड़ते हैं। वो हदीस ये है "एक रोज़ एक औरत हामिला सोने के मोटे मोटे कहरवे पहने हुए नबी अरबी के पास आई। आपने पूछा कि इस ज़ेवर की ज़कात दे चुकी है या नहीं और जवाब नफ़ी में पा कर ये फ़रमाया कि ख़ुदा को आसान है कि इन्साफ़ के दिन तुझे आग के कहरवे पहनावे। तब उस औरत ने इन क़हरोओं को उतार कर कहा कि ये ख़ुदा के और उस के नबी के काम के वास्ते मौजूद हैं।" जो दौलत अज़ क़िस्म रुका ना हो यानी गड़ी हुई हो और उसे किसी ने पाया हो इस में से और नीज़ इन क़ीमती फ़िक्रात से जो खानों से निकलते हैं एक ख़ुमस (पांचवां हिस्सा) देना ज़रूरी है। आम इस से कि जिस ज़मीन से वो शैय बरामद हुई ख़ारिजी हो यानी बाज़ार की मामूली शरह पर किराया ली गई हो। या वो ज़मीन अशरी हो यानी दसवाँ हिस्सा उस की पैदावार का दिया जाता हो। अगर दारुल हरब यानी ऐसे मुल्क में मिली हो जो मुसलमानों की हुकूमत में ना हो तवक्कुल पाने वाले का हक़ है, बशर्ते के वो ज़मीन उसी की मिल्कियत से हो और अगर किसी लावारसी ज़मीन से निकले तो एक ख़ुमस देना लाज़िम है। अगर रुपया बरामद शूदा पर मुसलमान की हुकूमत के दारुल ज़रब का निशान हो तो पाने वाले को लाज़िम होगा कि अगर हो सके तो मालिक को तलाश कर के वो रुपया उस के पास पहुंचा दे और अगर काफ़िरों के दार-उल-ज़र्ब में बना हो तो एक ख़ुमस बतौर ज़कात देकर बाक़ी को अपने सर्फ में लाए। मोतीयों

और क़ीमती पत्थरों पर कुछ देना ना चाहिए। क्योंकि मुहम्मद अरबी ने फ़रमाया कि पत्थरों पर ज़कात नहीं है और मवेशी की निस्बत क़वाइद मुफ़स्सिला ज़ेल मुक़र्रर हैं :-

भेड़ और बकरी पर जब तक चालीस से कम हों कुछ नहीं देना चाहीए। एक सौ बीस पर एक और फिर दूसरे 80 पर दो और फिर हर सैकड़ा पीछे एक। भैंसों पर भी यही हिसाब है जो भेड़ों पर है। ऊंटों का हिसाब ये है। 5 से 24 तक एक भेड़ या बकरी ऊंटनी चाहीए और 25 से 35 तक एक साल का बच्चा ऊंट का जो माद्दा हो (बिंत फ़ख़ाज़ بنت فخاذ) और 36-45 तक दो बरस की माद्दा ऊंटनियां (बिंत लबोन بنت لبون) 46-60 तक। एक ऊंटनी तीन बरस की (हक़्क़ा حقہ) 61-75 तक 40 बरस की ऊंटनी (जज़आ جذعہ) और 76-90 तक 2 बिंत लबोन और 91-120 तक दो हिस्से और 121 से ऊपर हर चालीस पर एक बिंत लबोन या हर पच्चास पर एक हक़्क़ा देना चाहीए। घोड़ों पर भी यही हिसाब है। या फ़ीसदी ढाई घोड़े या उस की क़ीमत देनी चाहीए। 30 गाइयों पर एक बरस की एक बछिया, तबइयह (تبیعہ) और 40 पर दो बरस की एक बछिया (مسنہ) देनी चाहीए और बाद इस के हर दस गाइयों पर एक बछड़ा है। गधे और ख़च्चर इस से मुस्तसना हैं। क्योंकि मुहम्मद अरबी ने कहा कि इनकी निस्बत मेरे पास कोई हुक्म नहीं आया है। अगर निसाब का सरमाया निसाब (52 रुपये) से ज़्यादा है तो इस पर और उस के नफ़े पर हर चालीस पर एक या फ़ीसद के हिसाब से ज़कात देना फ़र्ज़ है।

हनफ़ी चालीस की कसर शुमार नहीं करते। लेकिन शाफ़ई कसर को चालीस क़रार देकर पूरी ज़कात इस पर देते हैं। शहद, मेवे और अनाज वग़ैरह। अगरचे पाँच वसक (पाँच ऊंट के बोझ) से कम हो तो इमाम अबू हनीफा के नज़्दीक दसवाँ हिस्सा इस में से देना चाहीए। लेकिन साहबीन और इमाम शाफ़ई कहते हैं कि अगर 5 वसक से कम हो तो कुछ ज़कात नहीं है। नबी ने कहा अगर किसी ऐसी ज़मीन की पैदावार हो जो क़दरे मीरास हो तो एक अश्र इस में से देना चाहीए और जिस ज़मीन को मस्नूई (खुदसाख्ता) ज़रीये से पानी दिया जाता हो उस की पैदावार का बीसवां हिस्सा देना

चाहीए। चूँकि मिक़्दार की निस्बत कुछ ख़बर नहीं दी गई है। इस वास्ते हनफ़ी इस से सनद पकड़ते हैं।

जिस क़िस्म के लोगों को ज़कात देनी चाहीए उन का ज़िक्र इस आयत में है। "ज़कात हक़ है मुफ़लिसों का और मुहताजों का और इस काम पर जाने वालों का और जिनका दिल इस्लाम पर राग़िब है और गर्दन छुड़ाई में और जो तावान भरें और अल्लाह की राह में और राह के मुसाफ़िर को।" (सुरह तौबा 9:60) जिन अल्फ़ाज़ पर ख़त खींचा है, वो तफ़्सीर हुसैनी के मज़्मून के मुताबिक़ मंसूख़ हो गए हैं। इस जगह अरब के सरदारोँ की तरफ़ इशारा है। जिन्हें पैग़म्बर अरबी ने जंग हुनैन में मग़्लूब किया था। (8 हिज्री) इस सुरह की आयत 25 में इस क़िस्म की तरफ़ इशारा है। "तुम्हें ख़ुदा ने बहुत से मैदानों में और हुनैन के दिन फ़त्ह दी।" अबू बक्र ने ये ज़कात नौ मुरीदों को देनी छोड़ दी और ख़लीफ़ा उमर ने ऐसे लोगों की निस्बत कहा कि ये ज़कात तुम्हारे दिलों को इस्लाम की जानिब रग़बत दिलाने को दी जाती थी। अब इस्लाम ख़ूब फैल गया है, अगर तुम उसे क़ुबूल करो तो करो वर्ना हमारे और तुम्हारे दर्मियान तल्वार है। किसी सहाबा ने इस क़ौल से इन्कार नहीं किया। इस वास्ते इस फ़िक़्ह की मंसूख़ी की सनद इज्मा-ए-उम्मत से है। ये सच्च है कि नामुनासिब वसाइल को तर्क ही करना चाहीए, लेकिन जहां तक मैं जानता हूँ कि कोई मुफ़स्सिर इसे इस हुक्म की तंसीख़ की दलील नहीं गर्दानता है। इस की मंसूख़ीयत सिर्फ इस बिना पर है कि इस्लाम क़वी हो गया है। अब इसे मदद की हाजत नहीं है। इस तग़य्युर का सबब कोई आला दीनी ख़्याल ना था बल्कि उस को हक़ीर जान कर लापरवाई से छोड़ दिया। सिवाए उन लोगों के जिन का ज़िक्र आयत मज़्कूर-उल-सदर में हुआ। मकातीब को यानी उन ग़ुलामों को भी ज़कात से मदद देनी चाहीए जो अपनी आज़ादी की मशक़्क़त करता है। जो लोग ऐसे मुहताज हैं कि जिहाद पर नहीं जा सकते हैं या हज की इस्तिताअत नहीं रखते हैं, उनकी मदद ज़रूरी है।

मसाजिद की तामीर को और तजहीज़ व तकफ़ीन को और मय्यत के अदाए क़र्ज़ा को या ग़ुलामों को आज़ाद करने के वास्ते ख़रीदने को ज़कात हरगिज़ नहीं देनी चाहीए। माँ बाप, दादी दादा, बेटे बेटीयों और पोती पोतों

को ज़कात देनी जायज़ नहीं। ना मर्द औरत को दे, ना औरत मर्द को, ना आक़ा अपने ग़ुलाम को दे। साहबीन के नज़्दीक औरत अपने शौहर के हवाइज में सर्फ कर सकती है और वो इस हदीस से सनद पकड़ते हैं। एक औरत ने नबी से पूछा कि मैं अपने ख़ावंद को ज़कात दे दूं। आपने कहा अच्छा दे दो। इस में दो सवाब हैं एक तो ज़कात देने का, दूसरा पने रिश्ते वाले के अदाए हुक़ूक़ का। दौलतमंद को और उस के बेटे और उस के ग़ुलाम को ज़कात नहीं देनी चाहीए। औलाद हाशिम और आल मुहम्मद अरबी को इस की मुमानिअत है। नबी अरबी ने फ़रमाया कि ऐ अहले बैत तुमको ज़कात हराम है, क्योंकि माल-ए-ग़नीमत का एक ख़ुमस जो मुझे मिलता है उस में से एक ख़ुमस (पांचवा हिस्सा) तुम पाते हो। इस सबब से बाअज़ लोग कहते हैं कि सादात (सय्यद, साअद बमाअनी सरदार की जमा-उल-जमा) को ज़कात देनी नहीं चाहीए, लेकिन वो उज़्र करते हैं कि हमें माल-ए-ग़नीमत से कुछ नहीं मिलता है। ज़िम्मी (यानी ग़ैर मुसलमान रियाया) को भी ज़कात देनी दुरुस्त नहीं है। मुसलमानों के मुल्कों में ज़कात जमा करने पर लोग मुतय्यन होते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में ये काम हर शख़्स की मर्ज़ी पर छोड़ दिया गया है। जो समझता है कि मुझ पर फ़र्ज़ है, वो दे और जहां ज़कात का इंतिज़ाम दुरुस्त ना हो तो मसाकीन की ख़बर-गीरी के वास्ते काफ़ी इआनत लाज़िम है। सदक़ा ज़कात से जुदा है, मगर उस का बयान इसी बह्स के मुताल्लिक़ है। इस की तफ़्सील बाब माबाअ्द में ईद-उल-फित्र के साथ होगी।

(5) हज

हज करना यानी मक्का को जाना फ़र्ज़ है और जो कोई इस से इन्कार करे, वोह काफ़िर है। "और अल्लाह का हक़ लोगों पर है इस घर का हज करना, जो कोई पाए उस तक राह।" (सुरह आले-इमरान आयत 95) इब्ने अब्बास से मर्वी है कि पैग़म्बर अरबी ने कहा कि ख़ुदा ने हज को फ़र्ज़ किया है। इस पर अक्ज़ा बिन हाबिस ने खड़े हो कर अर्ज़ किया कि या रसूल अल्लाह हर साल हज करना चाहीए। आपने फ़रमाया कि मैं "हाँ" करूँ तो हर साल हज करना वाजिब हो जाएगा। लेकिन तुम उस के मुतहम्मिल (बर्दाश्त करने वाले) ना हो सकोगे। इस वास्ते फ़क़त एक दफ़ाअ फ़र्ज़ है

और इस से ज़्यादा जितनी मर्तबा हो, नफ़्ल है। जो मुसलमान हर (आज़ाद), बालिग़ और तंदुरुस्त हो इस पर हज फ़र्ज़ है। बशर्ते के उस के पास इस क़द्र ख़र्च हो कि उस को और उस के लौटने तक उस के घर के ख़र्च को मुकतफ़ी हो। अगर कोई ग़ुलाम या लड़का हज करे तो ग़ुलाम को आज़ाद होने के बाद और लड़के को बालिग़ होने के बाद हज करना चाहीए। जिस औरत का मस्कन मक्का से तीन दिन की राह पर हो और वो हज करना चाहे तो उसे अपने शौहर या क़रीब रिश्तेदार की हम-राही ज़रूरी है। इमाम शाफ़ई के नज़्दीक ये ज़रूरत शर्त मोअतबर नहीं है। वो कहते हैं कि आयत मज़्कूर-उल-सदर में कोई ऐसी क़ैद नहीं है। मगर उनके इस एतराज़ का जवाब जैसा कि क़ायदा है, हदीस से दिया है। कोई शख़्स नबी अरबी के पास आकर कहने लगा कि मेरी ज़ौजा (बीवी) हज करने को आमादा है और मैं जंग के लिए तलब किया गया हूँ। आपने कहा कि तू लड़ाई को मत जा। अपनी औरत के साथ हज को जा। इमाम अबू यूसुफ़ के नज़्दीक जिस शख़्स के पास हज के अस्बाब मुहय्या हों यानी जिस पर हज फ़र्ज़ हो जाये, वो एक साल से ज़्यादा उस के अदा करने में तवक़्क़ुफ़ करे तो गुनाहगार है। इमाम मुहम्मद और अक्सरिन के नज़्दीक अगर हज में चंद साल का तवक़्क़ुफ़ हो जाएगी तो मज़ाइक़ा नहीं है। लेकिन इस से पेशतर अगर मौत आजाए तो गुनाहगारों में महसूब होगा। पस अज़रूए अमल सब का इत्तिफ़ाक़ इस पर है कि तवक़्क़ुफ़ अच्छा नहीं है। हज में तीन फ़र्ज़ हैं, पाँच वाजिब।, बाक़ी सब सुन्नत और मुस्तहब हैं। फ़राइज़ हज के ये हैं :-

(1) एहराम बांधना। बग़ैर सियुन (सिलाई) की दो चादरें, एक बाँधते हैं और एक ओढ़ लेते हैं।

(2) अर्फ़ात पर खड़े होना।

(3) तवाफ़ यानी काअबा के गर्द सात दफ़ाअ घूमना।

और वाजिबात हज के ये हैं :-

(1) मर्ज़लक़ा में ठहरना।

(2) कोह-ए-सफ़ा और मर्वा के दर्मियान सई करना।

(3) रमी-उल-जमार यानी कंकरीयां फेंकना।

(4) अगर मुसाफ़िर ग़ैर मुल्की है तो तवाफ़ सदर करे।

(5) हजामत बनवाना, बाद इख़्तताम हज के।

हज औक़ात मुअय्यना पर चाहीए "अल-हज्ज अश्हर मालूमात हज के कई महीने मालूम हैं।" (सुरह बक़रह 2:197) और वह शवाल और ज़ीक़अद और पहले दस रोज़ ज़ील-हज्ज के हैं। हज दर-हक़ीक़त ज़ील-हज्ज में होता है, लेकिन इस की तैयारी और नीयत दो माह पेशतर से होती है। उमरा यानी मामूल सफ़र से सिवाए नौवीं ज़ील-हज्ज के और चार दिन उस के बाद के और जब चाहें हो सकता है। मुतअद्दिद राहें जो मक्का को जाती हैं उनमें से हर राह पर शहर से 5 या 6 मील के फ़ासिले पर मंज़िल (यानी पड़ाव) हैं जिन्हें मीक़ात (हरम-ए-काबा के बाहर की वो हदूद जहां से हाजी के लिए एहराम बांधना ज़रूरी होता है) कहते हैं और उनके मवाक़ीयत के नाम ये हैं। मदीना की राह पर ज़ुल-ख़लीफ़ा और इराक़ की राह पर ज़ात अर्क़ और यनाम की राह पर हुजफ़ा और नजद की राह पर क़ुरआन और यमन की राह पर मलमलीम। जहां-जहां कि मुसलमान रहते हैं उन सब अतराफ़ से हाजी सफ़र के थके मारे आख़िरुल-अम्र इन मवाक़ीयत में से किसी एक पर पहुंचते हैं। फिर मामूली कपड़े उतारते हैं और बाद ग़ुस्ल के और रकअत नमाज़ नफ़्ल के एहराम हैं।

पूरी आमादगी हज की उस वक़्त होती है जब हाजी क़िबला-रू हो कर और नीयत बांध कर कहता है "ऐ ख़ुदा मैं हज की नीयत करता हूँ। इस काम को तू मुझ पर आसान कर और मेरे हज को क़ुबूल कर। फिर "तलबीह" पढ़ता है तलबीह लब्बैक लब्बैक कहने को कहते हैं। "लब्बैक" के मअनी हैं "मैं हाज़िर हूँ।" "तलबीह" हर ज़बान में हो सकता है। अगरचे अरबी को तर्जीह है और वो इस तरह है। "मैं यहां हाज़िर हूँ। ऐ ख़ुदा मैं हाज़िर हूँ, मैं यहाँ हाज़िर हूँ, तेरा कोई साझी नहीं है। ब-तहक़ीक़ तारीफ़ और बख़्शिश और मुल्क सब तेरा है, तेरा कोई शरीक नहीं है। मैं यहां हाज़िर हूँ।

जो लोग किसी मीक़ात पर सुकूनत मुस्तक़िल रखते हैं वो मुक़ाम हाल पर जो मक्का के क़रीब है या ख़ास शहर में एहराम बाँधते हैं और ख़ास मक्का के बाशिंदे हरम-ए-काबा में एहराम बांध सकते हैं। हाजी को बाद

एहराम बाँधने के दुनिया के कारोबार से परहेज़ करना और अहकाम हज में बहमा जिहत मसरूफ़ होना चाहीए। शिकार खेलने की मुमानिअत है, मगर मछली पकड़ने की इजाज़त है। "ऐ ईमान वालो जिस वक़्त तुम एहराम में हो शिकार ना मारो।" (सुरह अल-मायदा 5:98) मुहम्मद अरबी ने भी कहा है कि जो कोई ऐसी जगह बताए जहां शिकार हो तो वो ऐसा ही बुरा है, जैसा कि शिकार मारने वाला बुरा है। हाजी को खजाना भी नहीं चाहीए ताकि कोई जूं वग़ैरह ना मर जाये या बाल ना उखड़ जाये और अगर बग़ैर खुजाए....ना पड़े तो हाथ की हथेली से मल डालना चाहीए।

(2) चेहरा और सर खुला रखना, सर व दाढ़ी के बाल ना धोना, ना तराशना चाहीए। "और सर की हजामत ना करो जब तक कि क़ुर्बानी अपने ठिकाने ना पहुंच चुके।" (सुरह बक़रा आयत 192) जब हाजी किसी बुलंद मुक़ाम पर पहुंचे या नशेब में उतरे या किसी से मिले या मक्का में या मस्जिद हराम में दाख़िल हो तो उसे बार-बार लब्बैक लब्बैक कहना चाहीए। जब काअबा नज़र आए तो तक्बीर और तहलील पढ़नी चाहीए। मुहद्दिस अता कहते हैं कि "जब इस मुक़ाम पर पहुंचते तो नबी हाथ उठा कर दुआ मांगते थे।" हरम में दाख़िल हो कर हाजी लब्बैक, तक्बीर, तहलील और फिर दुआ पढ़ता है। फिर चारों इमामों में से एक के मुसल्ले पर दो रकअत नमाज़ पढ़ते हैं और हज्र-ए-असवद (संग स्याह) के पास पहुंच कर फिर तक्बीर और तहलील पढ़ते हैं। इस के बाद उसे बोसा देते हैं। अगर कस्रत हुजूम के सबब से पास जा कर बोसा देने का मौक़ा ना मिले तो हाथ से या लकड़ी से मस कर के इस हाथ को या लकड़ी को बोसा देते हैं और उसी वक़्त ये कहते हैं "ऐ अल्लाह तुझ पर भरोसा कर के और तेरे कलाम को हक़ जान के और तेरे नबी की सुन्नत की पैरवी कर के (उसे बोसा देता हूँ) तू मेरी अर्ज़ क़ुबूल कर और मेरी मुश्किलों को आसान कर। मेरी आजिज़ी पर रहम कर और अपनी रहमत से मुझे बख़्श दे।"

इस के बाद तक्बीर, तहलील, दुरूद और तारीफ़ (मुहम्मद अरबी) की तारीफ़ और उन के वास्ते दुआ पढ़ते हैं। फिर इस तरह नीयत कर के कि

नीयत करता हूँ तवाफ़ की सात[52] मर्तबा साथ नाम अल्लाह के कि क़दीर और तवाना है। सात दफ़ाअ काअबा के गिर्द घूमते हैं और इस घूमने को "तवाफ़" कहते हैं। तीन मर्तबा उज्लत (जल्दबाजी) से (जिसे तिरुमल कहते) हैं और चार मर्तबा आहिस्तगी से हाजी दौड़ते हैं। (जिसे ताम्मुल कहते हैं) जो शख़्स मक्का में मुस्तक़िल सुकूनत रखता है, वो तवाफ़ नहीं करता है। फिर हाजी मक्का की दीवार से जिसे अल-मुल्तज़म (الملتزم) कहते हैं। पेट, सीना और दाहिना रुख़्सार लगा कर और आस्मान की तरफ़ हाथ उठा कर कहता है "ऐ अल्लाह बैत अतीक़ के रब मेरी गर्दन को दोज़ख़ की आग से आज़ाद कर और हर बुरे काम से महफ़ूज़ रख और इस रोज़मर्रा की क़ुव्वत पर जो तू ने मुझे दिया है, क़नाअत (जितना मिल जाए उस पर सब्र करना) दे और जो कुछ तू ने दिया है उस में बरकत दे।" फिर इस्तिग़फ़ार पढ़ता है। "मग़फ़िरत मांगता हूँ ख़ुदा से जो निहायत बरतर और ज़िंदा और क़दीम है और उसी से पनाह मांगता हूँ।" इस के बाद मुक़ाम इब्राहिम पर जाते हैं और दो रकअतें जिन्हें "सुन्नत तवाफ़" कहते हैं, पढ़ते हैं। फिर चाह ज़मज़म का थोड़ा सा पानी पीते हैं। इस के बाद दुबारा हज्र-ए-असवद पर आकर उसे बोसा देते हैं।

हाजी ब्रिटन साहब ने इस तरह तवाफ़ का ज़िक्र किया है कि अव्वल हमने ये दुआ पढ़ी कि ऐ अल्लाह तुझ पर भरोसा कर के और तेरी किताब को हक़ जान के और तेरे अह्द पर यक़ीन ला के और तेरे मुहम्मद अरबी (अल्लाह की रहमत और सलामती उन पर हो- जीवो) की सुन्नत की पैरवी कर के उसे बोसा देता हूँ।" फिर हम मुक़ाम अल-मुल्तज़म (الملتزم) पर पहुंचे जो गोशा हज्र-ए-असवद और दरवाज़ा काअबा के दर्मियान वाक़ेअ है। यहां पहुंच कर ये पढ़ा "ऐ अल्लाह जो कुछ हमने तेरी ना-फ़रमानियाँ की हैं उन्हें तू माफ़ कर।" फिर दरवाज़े के सामने ये पढ़ा "ऐ अल्लाह बिलयक़ीन ये घर तेरा है और ये हरम तेरा हरम है और ये दरवाज़ा है और ये जगह उस के वास्ते है जो जहन्नम से बच कर तेरी पनाह लेता है।" और जब इस जगह पहुंचे जिसे मुक़ाम इब्राहिम कहते हैं तो ये कहा कि "ऐ अल्लाह बेशक

52 227_सात दफ़ाअ घूमने को एक उस्बुअ कहते हैं।

ये इब्राहिम का मुक़ाम है, जिन्हों ने आग से बच कर तेरी पनाह ली और तेरी तरफ़ भागे। ऐ अल्लाह हमारे बदन को, ख़ून को और इस्तिख़्वान को (हमेशा के शोलों से) महफ़ूज़ रख" और जब आहिस्तगी से घूम कर काअबा के शुमाली यानी गोश-ए-इराक़ की जानिब पहुंचे तो बआवाज़ बुलंद कहा "ऐ अल्लाह ब-तहक़ीक़ मुशरिक और ना-फ़रमानी से और मक्र से और बद-ज़ुबानी और बद-गुमानी से निस्बत अहले-ओ-अयाल और माल व औलाद की महफ़ूज़ रख।" जब मीज़ाब (आब चक, परनाला) से निकले तो ये पढ़ा "ऐ अल्लाह ऐसा ईमान दे कि ज़ाइल ना हो और ऐसा यक़ीन अता कर कि कभी दूर ना हो, अपने नबी अरबी के तुफ़ैल से। (ख़ुदा की रहमत और सलामती उन पर हो जीवो) ऐ अल्लाह जिस दिन कि तेरे साय के सिवाए और किसी का साया ना होगा उस दिन तू मुझ पर अपना साया डाल और ऐ रब-उल-इज़्ज़त ज़ूलजलाल अपने नबी अरबी के पियाले से वो मज़ेदार पानी पिला जो फिर कभी हमेशा तक प्यास ना लगे।"

फिर गोश-ए-अरबी यानी अरबी यानी रुक्न शामी की तरफ़ मुतवज्जा हो कर पढ़ा कि "ऐ अल्लाह ये हज मक़्बूल और गुनाह बख़्शी का मूजिब हो और ऐ रब-उल-इज़्ज़त और ग़फ़्फ़ार तेरी नज़र में ये हज तारीफ़ के क़ाबिल, सई और पसंदीदा काम और ऐसी दौलत हो जो कभी ना तमाम हो "तीन मर्तबा इसे पढ़ाता आंका जुनूबी यानी यमीन गोशा पर पहुंचे तो हुजूम के होने से नबी के तरीक़ के मुवाफ़िक़ दहने हाथ से दीवार को छुवा और उंगलीयों को बोसा दिया। गोश-ए-जुनूबी और हज्र-ए-असवद के दर्मियान जहां के हमारा तवाफ़ ख़त्म हुआ हमने कहा कि "ऐ अल्लाह पनाह मांगता हूँ कि कुफ़्र से बचा और पनाह मांगता हूँ कि एहतियाज से और अज़ाब क़ब्र से बचा और ज़िंदगी और मौत की तक़्लीफों से बचा और दुनिया और उक़्बा की ज़िल्लत से तेरी तरफ़ भाग कर आया हूँ और बिल-फ़अल और आइंदा को तेरी बख़्शिश चाहता हूँ। ऐ रब तू मुझे इस दुनिया में और आख़िरत में सर-सब्ज़ कर और अज़ाब नार (आग) से बचा।" (ख़त्म हुआ, ब्रिटन साहब का बयान)

इस के बाद "सफ़ा व मर्वाह" के दर्मियान सई करते हैं। "सफ़ा" से चलते हैं और दोनों के दर्मियान सात दफ़ाअ दौड़ते हैं। दौड़ते वक़्त शानों को हरकत होती है और सर सीधा रहता है, जैसे सिपाही मार्का-ए-जंग में बाड़ा चराते हैं। इस का सबब ये है कि मक्का के कुफ़्फ़ार हज़रत के अस्हाब पर हंसते थे और कहते थे कि मदयन की आबो-हवा ने उन्हें कमज़ोर कर दिया। चुनान्चे इस इल्ज़ाम की लग़्वियत साबित करने को सिपाहीयाना तरीक़ इख़्तियार किया है और जब ही से ये तरीक़ सुन्नत हो गया और अस्ना में ये दुआ पढ़ते हैं। "ऐ अमीरे रब बख़्शिश और रहम कर और उस गुनाह से जो तू जानता है, दर गुज़र। ब-तहक़ीक़ तू ग़ैब का जानने वाला और साहब बुज़ुर्गी और बख़्शिश का है। ऐ हमारे रब दोनों जहान की कामयाबी अता कर और आतिश-ए-दोज़ख़ से नजात दे।" हुज्जाज को क़ुरआन की आयात भी पढ़नी चाहीऐं और ये सई ज़रूरी तवाफ़ के बाद या तो पहले या पिछले तवाफ़ के बाद होती है। सातवें दिन इमाम को मक्का में वाअज़ कहना और हाजियों को हज के दस्तूर सिखाना ज़रूरी है। नौवें और ग्यारवें दिन पर वाअज़ होता है। आठवीं जिसे "रोज़ तरवीह" कहते हैं हाजी मीना को जाते हैं जो मक्का से तीन मील पर वाक़ेअ है। वहां सब हाजी मामूली नमाज़ पढ़ते हैं और उस रात वहीं क़ियाम करते हैं। ये रस्म सुन्नत है।

नौवीं तारीख़ सुबह को बाद नमाज़-ए-फ़ज्र अर्फ़ात को जाते हैं और वहां पहुंच कर ये पढ़ते हैं "ऐ अल्लाह मैं तेरी तरफ़ रुजू करता हूँ। तुझ ही पर भरोसा रखता हूँ और तुझ ही को चाहता हूँ। मेरे गुनाहों को माफ़ कर और हज को क़ुबूल कर रहमत फ़र्मा। मेरी ज़रूरत इस अर्फ़ात में रफ़ा कर। तू सब पर क़ादिर है।" फिर तलबीह, तक्बीर और तहलील पढ़ते हैं। ज़ुहर की नमाज़ इख़्तिसार के वास्ते मिला कर पढ़ते हैं और नमाज़ पढ़ के पहाड़ पर बशर्त इम्कान उस जगह खड़े होते हैं जहां कि पैग़म्बर अरबी खड़े हुआ करते थे। उसे "वक़ूफ़" कहते हैं जो हज का ज़रूरी रुक्न है। फिर इमाम ख़ुत्बा पढ़ते हैं जिसमें बाक़ीमांदा आदाब हज की तफ़्सील होती है। यानी हाजियों को किस तरह मुज़दल्फ़ा में क़ियाम करना और मिना में कंकरीयां फेंकना और क़ुर्बानी वग़ैरह चाहीए।

इस वक़्त सब हाजियों को ब-आवाज़-ए-बुलंद बराबर तलबीह और तक्बीर पढ़ना और ज़ार ज़ार रोना चाहीए। फिर मुज़दल्फ़ा को जो मिना और अर्फ़ात के दर्मियान वाक़ेअ है, जाना और वहां कुछ रात बसर कर के फिर मस्जिद मुशार-उल-हराम की ज़ियारत कर के मिना को रवाना होना चाहीए। ईद-उल-अज़हा की दसवीं तारीख़ सुबह को फिर मिना जाते हैं। वहां तीन अरकान (सतून हैं) एक "जमर-उल-उक़बा" (جمرۃ العقبہ) जिसे बिल-उमूम "शैतान-उल-कबीर" (बड़ा शैतान) कहते हैं और एक को वसती (दरमयानी) सतून और एक को "अल-अव्वल" पहला सतून कहते हैं। "जमार" यानी संग-रेज़ा दहने हाथ की अँगूठी और पहली उंगली में पकड़ कर इतनी दूर फेंकते हैं जो 15 फुट के फ़ासिले से कम नहीं होता है और ये पढ़ते हैं। "शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से और अल्लाह क़ादिर-ए-मुतलक़ है। (और फेंकता हूँ ये कंकरीयां) अज़राह अदावत शैतान के उस की ज़िल्लत के वास्ते।" बाक़ी छः कंकरीयां भी इसी तरह फेंकते हैं। मक़्सूद इस से शयातीन का आज़ार पहुंचाना है जो (इन लोगों के इंदीया में) वहां रहते हैं।

कंकरीयां बहुत छोटी होती हैं ताकि हाजियों के चोट ना लगे। हर कंकरी फेंकने से पहले तक्बीर ज़रूर ही पढ़ते हैं। इस को "रमी-उल-जमार" (رمی الجمار) यानी कंकरीयां फेंकना और हिस्से-उल-ख़रफ़ (حصے الخرف) भी कहते हैं। कहते हैं कि ये रस्म इब्राहिम के वक़्त से चली आती है और ये मोअजिज़ा है कि सब कंकरीयां ग़ायब हो जाती हैं। इब्ने अब्बास सहाबी का क़ौल है कि "जिस हाजी का हज ख़ुदा क़ुबूल करता है तो उस की कंकरीयां ग़ायब हो जाती हैं।" मशहूर मुहद्दिस मुजाहिद कहते हैं कि "मैंने अपनी कंकरियों पर निशान कर दिया था। बाद को जब तलाश किया तो कोई नहीं मिली।" फिर हाजी मिना को लौट कर ईद-उल-अज़हा की मामूली क़ुर्बानी करते हैं। बाब माबाअ्द में इस की तफ़्सील होगी। यही क़ुर्बानी दर-हक़ीक़त हज का ख़ातिमा है। अब हाजी सर मुंडवाते, नाख़ुन कटवाते और एहराम खोलते हैं। बाक़ी तीन रोज़ यानी ग्यारवीं, बारहवीं और तेरहवीं ज़ील-हज्ज को "अय्याम तशरीक़" गोश्त सुखाने के दिन कहते हैं। क्योंकि उस वक़्त में हाजी क़ुर्बानी के गोश्त से पारचे काट कर और धूप में सुखा कर लौटने का सामान करते हैं। हाजी को ये अरसा "मिना" में सर्फ करना और हर रोज़

सात कंकरीयां तीनों सतूनों पर मारनी चाहीऐं। जब ये रस्म अच्छी तरह अदा हो जाती है तो हाजी मक्का को लौट के तवाफ़-उल-विदा (रुख़स्त का तवाफ़) करते हैं। चाह ज़मज़म का थोड़ा सा पानी भी पीना पड़ता है। एक हदीस में आया है कि जब इस्माईल प्यासे थे तो जिब्रईल ने क़दम मारा था जिससे वो चशमा निकल आया। अब वो "ज़मज़म" के नाम से मशहूर है। अख़ीर में हुज्जाज दरवाज़े को बोसा देते हैं और हाथ उठा कर काअबा का गिलाफ़ पकड़ के और ज़ार ज़ार रो कर निहायत अजुज़ से दुआ मांगता है और रंजीदा होते है कि ऐसे अज़ीज़ मुक़ाम जैसा कि ख़ाना काअबा है, बहुत जल्द जुदा होना पड़ेगा और उल्टा हट कर रुख़स्त होता है। यानी काअबा से लोटते वक़्त पुश्त नहीं करते। उस की तरफ़ को मुँह कर के उल्टे चलते हैं। इस वक़्त हज बिल्कुल तमाम हो जाता है।

उमरा यानी छोटा हज सिवाए आठवीं, नौवीं और दसवीं ज़ील-हज्ज के जब चाहें हो सकता है। उमरा के रसूम में हज से जुज़वी फ़र्क़ है। एहराम बांधना और उस के साथ ज़रूरी एहतियातें सब करनी पड़ती हैं। इस के बाद मामूल ये है कि ज़ियारत करते हैं, यानी रोज़-ए-पैग़म्बर अरबी की ज़ियारत को मदीना जाते हैं। इसी वक़्त से मुसाफ़िर को हाजी का मुअज़्ज़िज़ लक़ब मिलता है। बाद इस के जिन लोगों में वो रहता है हमेशा किसी क़द्र उस की ताज़ीम करते हैं। हज इस तरह नहीं हो सकता है कि अपने एवज़ में दूसरे को भेज दे। अगरचे कोई ज़ी मुक़द्दरत किसी ग़ैर मुस्तती (इस्तिताअत ना रखने वाले) को इस तरह भेज दे तो कार-ए-ख़ैर समझते हैं। अब अरकान दीन (यानी मज़्हब के पांचों सतूनों का) बयान ख़त्म हुआ।

इस से बख़ूबी ज़ाहिर है कि इस्लाम मुईन और मुक़य्यद बक़युद है और बहुतेरी बातों में नबी अरबु के क़ौल व फ़ेअल को सनद गर्दानना ऐसा अम्र है जिससे साबित है कि इस्लाम की कितनी बुनियाद सुन्नत पर है और दरबाब इख़्तिलाफ़ आरा (रायों) के जो बाअज़ जुज़्ईयात में बड़े इमामों के दर्मियान है। इस अम्र का तस्फ़ीया निहायत शऊर है कि सही राय किस जानिब है। ऐसी राएं हमेशा किसी हदीस पर मबनी होती हैं और हदीस की तहक़ीक़ वक़अत ग़ैर मुम्किन मुख़ालिफ़ कहता है कि फ़ुलां हदीस ज़ईफ़ है। ये ऐसी बात है कि जिससे फ़रीक़ सानी को सबूत या अदम-ए-सुबूत में दिक़्क़त

पड़ती है। बाज़ औक़ात मुसलमानों की तारीफ़ में कहा जाता है कि वो मौलवियों के ऐसे महकूम और ग़ुलाम नहीं होते, जैसे ईसाई पादरीयों के इख़्तियार में होते हैं। लेकिन दुनिया में ऐसी कोई क़ौम नहीं जो इस क़द्र हदीस की महकूम और पाबंद हो। (अगर कोई ऐसा मुहावरा इस्तिमाल करे) जब तक वहम की क़ैद टूट ना जाये हरगिज़ तरक़्क़ी और रोशनी ज़मीरी की उम्मीद नहीं हो सकती है। लेकिन अगर ये क़ैद टूट जाये तो इस्लाम इस्लाम ना रहे। क्योंकि ईमान की ये अस्ल और जो कुछ इस पर बिना किया गया है दोनों ऐसे वाबस्ता हैं कि एक का इस्तीसाल दूसरे का इन्हिदाम होगा।

ज़मीमा बाब पंजुम

ये फ़त्वा 13 फरवरी 1880 ई॰ को मद्रास की तिकोनी जामा मस्जिद में सुनाया गया।

بسم اللّٰہ الرحمٰن الرحیم

बिस्मिल्लाह हिर्रहमानिर्रहीम

"शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है"

"ऐ उलमाए दीन और मुफ़्तियान शराअ मतीन आप इस बाब में क्या फ़रमाते हैं कि एक शख़्स ने क़ुरआन के एक पारा का तर्जुमा कर के हिन्दुस्तान में छपवाया है। वो तर्जुमा नाक़िस है, दूसरे अरबी मतन उस के साथ मुत्तफ़िक़ नहीं हैं। तर्जुमे को अस्ल के बराबर मोअतबर क़रार देने के वास्ते अरबी नुस्ख़ों की मामूली अलामात, मसलन "त" (ط), क़फ़ (قف), "ज (ج), "ला" (لا), "म" (م), "5" (٥) सब रहने दिए हैं। पारा के आख़िर में इस शख़्स ने तशह्हुद, क़नूत, सना, ताव्वुज़, तस्मीया तस्बिहात, रुकूअ और सुजूद का लगा दिया है और ये कहता है कि इन सबको हिन्दुस्तानी में पढ़ना चाहीए। कहता है कि मैंने तर्जुमा में नज़्म अरबी निगाह रखा है और फ़साहत व तर्ज़ बयानी में अरबी के बराबर है। उसने नमाज़ की हिदायत भी लिख दी हैं और कहता है कि जो अरबी नहीं जानते हैं। उन्हें इस का तर्जुमा पढ़ना वाजिब व फ़र्ज़ है। वर्ना गुनाहगार हैं और उनकी नमाज़ बेकार है।

गुज़श्ता की निस्बत उस की ये राय है कि नावाक़िफ़ों की बख़्शिश होगी। लेकिन इस ज़माने के उलमा जो लोगों को अरबी तर्जुमा के पढ़ने की हिदायत नहीं करते हैं। अलबत्ता अपनी ग़फ़लत के मुवाख़िज़ादार होंगे। दूसरा अपने अक़ाइद की ताईद में एक हदीस सही नक़्ल करता हूँ जिससे पाया जाता है कि मुहम्मद अरबी ने अपने सहाबी सलमान फ़ारसी को नमाज़ में क़ुरआन का तर्जुमा पढ़ने की इजाज़त दी थी। उस का ये दावा है कि चारों इमामों की भी राय यही थी। ख़ुद अरबी जानता है, लेकिन नमाज़ हिन्दुस्तानी में पढ़ता है और औरों को वैसा ही करने की रग़बत दिलाता है। हर-चंद मना किया, लेकिन नहीं सुनता और अपने फ़िर्क़े को तमाम हिन्दुस्तान में फैलाना चाहता है।

पस ऐसे शख़्स की निस्बत शराअ शरीफ़ का क्या हुक्म है और जो लोग उस की पैरवी करते हैं या जो लोग उस के अक़ाइद को फैलाते हैं या जो शख़्स उस को दीनदार और हिदायत करने वाला जानते हैं या जो शख़्स तर जम-ए-मज़्कूर को क़ुरआन शरीफ़ समझते हैं या जो लोग वो तर्जुमा

अपनी औलाद को सिखाते हैं उनका क्या हाल होगा। ऐ आलिमों शराअ का हुक्म इस बाब में बताओ और सवाब हासिल करो।

जवाब

बाद हम्दो सलात के वाज़ेह हो कि शख़्स मज़्कूर काफ़िर और मुल्हिद है। हक़ से बर्गशता है और औरों को गुमराह करना चाहता है। इस का यह दावा कि मेरे अक़ाइद चारों इमामों की राय के मुताबिक़ हैं, सरासर लगू है। क्योंकि इमाम शाफ़ई, इमाम मालिक और इमाम हम्बल के नज़्दीक नमाज़ में क़ुरआन शरीफ़ का तर्जुमा पढ़ना दुरुस्त नहीं। आम इस से कि नमाज़ी अरबी जानता हो या ना जानता हो, मसलन इमाम शाफ़ई के शागिर्द इमाम नवाज़ी का क़ौल है कि "नमाज़ में फ़ारसी का इस्तिमाल किसी तरह जायज़ नहीं।" मालिक के शागिर्द महकी अली कहते हैं "फ़ारसी नमाज़ में हराम है।" इसी के मुताबिक़ इमाम हम्बल का क़ौल है कि "नमाज़ में क़ुरआन का तर्जुमा पढ़ना हराम है।" दूसरे ख़ुद क़ुरआन से साबित है कि अरबी में पढ़ना फ़र्ज़ है। क़ुरआन से मुराद अरबी क़ुरआन है। क्योंकि ख़ुदा ने फ़रमाया है कि वो बज़बान अरबी नाज़िल हुआ है और इस हुक्म से कि "पढ़ो जितना आसान हो क़ुरआन से" فاقروا ماتیسرمن القرآن साबित है कि इस का पढ़ना फ़र्ज़ है और ये क़ौल अल्लाह तआला का انا انزلنا ہ قرآناً عربیاً "और ब-तहक़ीक़ हमने क़ुरआन अरबी में नाज़िल किया।" दलालत करता है कि अरबी क़ुरआन के इस्तिमाल से है।

इमाम अबू हनीफा और उनके शागिर्द साहबीन (इमाम मुहम्मद और इमाम अबू यूसुफ़) की ये राय है कि अगर कोई क़ुरआन की मुख़्तसर आयत भी पढ़ सकता होतो उसे तर्जुमे का इस्तिमाल जायज़ नहीं है। अगर वो सिर्फ़ अरबी नहीं पढ़ सकता है तो उसे कोई ऐसी आयत जैसे कि الحمد اللّٰہ رب العالمین है बज़बान याद कर लेनी चाहीए और जब तक कोई आयत याद ना हो, तब तक तर्जुमा इस्तिमाल करे।....यराला बिसार (یرالا بصار) में लिखा है कि "एक आयत की क़िरअत फ़र्ज़ है और इस का हिफ़्ज़ कर लेना फ़र्ज़ में शामिल है।" (यानी हर मुतनफ़्फ़िस पर लाज़िम है) मस्ह-उल-अज़हर (مسح الاظہر) में लिखा है **"अगर कोई शख़्स सिवाए अरबी**

के किसी दूसरी ज़बान में नमाज़ पढ़े तो वो मजनूं है या मर्दूद और दरबाब क़ौल अबू हनीफा।...कि "नमाज़ी को चंद अरसे तक तर्जुमे का इख़्तियार करना जायज़ है।" ख़ूब मालूम हो कि उन्होंने बाद को ये राय बदल दी थी और क़ौल शख़्स मज़्कूर का दरबाब मुसलमान फ़ारसी के नादुरुस्त है।

नहाबा शरह हदाया में लिखा है कि "बाअज़ फ़ारसियों ने सलमान को लिखा और दरख़्वास्त की कि हमें फ़ारसी में सुरह फ़ातिहा का तर्जुमा भेज दीजीए। उन्होंने फ़ारसियों की दरख़्वास्त मंज़ूर की और वो लोग इस फ़ारसी तर्जुमे को उस वक़्त तक इस्तिमाल करते रहे जब तक अरबी बख़ूबी नहीं पढ़ सकते थे। मुहम्मद अरबी ने ये हाल सुनकर कुछ लिहाज़ ना किया। लेकिन ये रिवायत मोअतबर नहीं है और अगर तस्लीम भी कर ली जाये तो इस से इसी क़द्र साबित होता है कि जब तक अरबी के अल्फ़ाज़ याद ना हों, तब तक तर्जुमे का पढ़ना जायज़ है। किसी इमाम ने ये नहीं कहा कि तर्जुमे का पढ़ना फ़र्ज़ या वाजिब है। पस अगर शख़्स मज़्कूर ये कहता है कि इस का तर्जुमा पढ़ना फ़र्ज़ है तो उस के ये मअनी हैं कि अस्ल अरबी का पढ़ना फ़र्ज़ नहीं है बल्कि नाजायज़ है और ये कुफ़्र है। पस ये शख़्स काफ़िर है, क्योंकि तमाम उलमा मुतक़द्दिमीन (पहले ज़माने के उलेमा) को जिन्हों ने नबी के ज़माने से अब तक लोगों को अरबी नमाज़ पढ़ने की हिदायत की है, गुनाहगार ठहराना चाहता है। इलावा बरीं उसे आलिम फ़क़ीहों के क़ौल से इन्कार है और अब किसी की नसीहत नहीं सुनता है। वो अपना तर्जुमे नमाज़ में ख़ुद पढ़ता है और उनसे पढ़वाता है। उसे इस बात का ज़ोअम है कि मेरा तर्जुमा अस्ल के बराबर है। उसने दाये क़नूत, सना, रुकूअ, सुजूद और तस्बिहात का तर्जुमा किया है और कहता है कि उन्हें नमाज़ में पढ़ना चाहीए।

पस ज़ाहिर है कि वो शख़्स नमाज़ में अरबी के रिवाज को मौक़ूफ़ करना चाहता है। इस का नतीजा ये होगा कि चंद ही अरसे में मुख़्तलिफ़ तर्जुमे फैल जाऐंगे और तौरात और इंजील की तरह क़ुरआन के नुस्ख़ों में भी तहरीफ़ होने लगेगी। फतावा आलमगीरी में लिखा है कि "जो कोई हराम को हलाल या बरअक्स उस के समझे तो काफ़िर है। अगर कोई बग़ैर किसी सबब ज़ाहिर के एक आलिम से भी अदावत रखे उस की दीनदारी मशकूक है।" जो

शख़्स बाद क़सूर के बावजूद समझाने के तौबा ना करे, वो काफ़िर है। तहक़ीक़ शरह हुसैनी में लिखा है कि "क़ुरआन को फ़ारसी में तर्जुमा करना और उसे पढ़ना हराम है।" फतावा मतलूब-उल-मोमिनीन में जो शख़्स क़ुरआन को फ़ारसी में लिखने का इरादा करे, उसे बताकिद मना करना चाहीए। इतफ़ाज में लिखा है "बमूजब इज्मा के क़ुरआन को नज़्म कहना दुरुस्त नहीं।" फतावी तातार ख़ाईआ में आया है कि "अरबी को फ़ारसी में तर्जुमा करना कुफ़्र है।" पस हमारी राय इस बाब में ये है कि ऐसे शख़्स से मामूली इस्लाम (सलाम) भी तर्क करना चाहीए।

मिफ़्ताह-उल-सआदात (مفتاح السعادات) के मसअले की रु से उस का निकाह बातिल है और उस की बीबियाँ निकाह से बाहर हैं। ऐसे शख़्स के कुफ़्र में शक लाना भी कुफ़्र है। चूँकि दलाईल शरई जो यहां नक़्ल किए गए हैं उलमा ने ऐसे शख़्स को काफ़िर ठहराया है। तो इस से साबित है कि जो लोग उस के मुआविन हों या उस के दावे को हक़ जानें या उस के अक़ाइद को शौहरत दें या उसे दीनदार या उम्दा राहनुमा समझें, वो भी काफ़िर हैं। ऐसे शख़्स के पास अपनी औलाद को ताअलीम के वास्ते भेजना या उन अख़बारात को ख़रीदना जिनमें उस की राएं मुश्तहिर होती हों या उस के तर्जुमा को जारी रखना हराम है। फतावी आलमगीर के बाब-उल-मुर्तद में आया है कि "जो कोई ऐसे शख़्स के बिलफ़अल काफ़िर होने और उक़्बा (आख़िरत) में अज़ाब पाने में शक लाए, वो काफ़िर है।" अल्लाह ने क़ुरआन में फ़रमाया है "आपस में मदद करो नेक काम पर और परहेज़गारी और मदद ना करो गुनाह पर और ज़्यादती पर और डरते रहो से।" (सुरह अल-मायदा 5:3) दूसरी जगह ख़ुदा ने फ़रमाया है "जो कोई हुक्म ईलाही पर अमल नहीं करता है, वो काफ़िर है।" पस इस से ज़्यादा ना-फ़रमानी और क्या है। एक शख़्स अरबी क़ुरआन नमाज़ में पढ़ना दुरुस्त नहीं जानता और हिन्दुस्तानी तर्जुमे को जो उसने किया है, फ़र्ज़ बताता है। हमारा काम मुसलमानों को आगाह करना है। واللّٰہ اعلم بالصواب

इस फ़त्वे को एक आलिम मौलवी ने लिखा था और शहर मद्रास के 24 उलमा के दस्तख़त इस पर थे।

ये फ़त्वा जिसकी सही नक़्ल मेरे पास मौजूद है। इस अम्र के इज़्हार को निहायत कार-आमद है कि शराअ इस्लामी जिन मुल्कों में पाई जाती है, उन मुल्कों के इख़्तिलाफ़ हालात से कैसी नामुनासिब है जो शरीअत अरबी ज़बान को इबादत का वसीला गर्दानती है। वो अरबों के मुनासिब थी और इस से ज़मनन ये पाया जाता था कि जिस मुल्क में मुसलमान रहते हों, वो अपने मुल्क की ज़बान में इबादत करते। लेकिन मैं बारहा कह चुका हूँ कि इस्लाम की बुनियाद ऐसे हुक्मों पर है जो बदलते नहीं हैं, बल्कि इस में ये गुंजाइश नहीं कि ज़माना व मुल्क की जरूरतों के मुनासिब हो। सिवाए इस के इस से ये भी पाया जाता है कि ऐसे कुल मुआमलात में ज़माने की या मुल्क की जरूरतों का लिहाज़ नहीं किया जाता है, बल्कि (क़दीम मसाइल पर जो बमंज़िल-ए-तक़वीम पारिना के हैं या) पुरानी शरीअत पर जो अज़रूए हालात दुनिया उस वक़्त के मुनासिब नहीं है, लिहाज़ किया जाता है। चारों इमामों के अक़्वाल पर नज़र करने और इस बात पर लिहाज़ करने से कि ये फ़त्वा इन इमामों की राय के मुताबिक़ और उन अगले फतवों के मुताबिक़ है जो इमामों से सनद पकड़ते हैं। ये साबित होता है कि आज के दिन तक मुज्तहिदीन इस्लाम की किस क़द्र तौक़ीर है। पस ये ज़ाहिर है कि ये फ़त्वा मुवाफ़िक़ शराअ है और जो कुछ बाब अव्वल में उसूल इस्लाम पर मबनी बह्स की है, उस के मुताबिक़ है।

बाब शश्म

मुसलमानों के तहवारों और रोज़े के बयान में

(1) मुहर्रम

मुहर्रम जो सन मुहम्मदी के पहले महीने का नाम है। अब मातम के इन दिनों का नाम हो गया है जो शीया लोग अली के और उन के दोनों बेटों हसन और हुसैन की शहादत की याद में सर्फ करते हैं। वाक़ियात तारीख़ी की शहादत की निस्बत तीसरे बाब में ज़िक्र कर चुका हूँ। इस वास्ते अब सिर्फ उन रसूम के बयान की ज़रूरत है जो मुहर्रम में होते हैं। ये रस्में हर मुल्क में मुख़्तलिफ़ हैं। हिन्दुस्तान के मुहर्रम का ज़िक्र मुंदरिज-ए-ज़ेल है :-

मुहर्रम से चंद रोज़ पेशतर आशूरा ख़ाना (जिसके लफ़्ज़ी मअनी दिन वाले घर के हैं) तैयार किया जाता है और जब ही चांद दिखाई देता है सब लोग आशूरा ख़ानों में जमा हो कर शर्बत पर या मिठाई पर हुसैन के नाम की फ़ातिहा पढ़ते हैं। ख़त्म फ़ातिहा का इस तरह होता है कि "ऐ ख़ुदा इस का सवाब हुसैन की रूह को पहुंचे।" वो शर्बत और मिठाई मुहताज को दे देते हैं। फिर वो एक जगह अलाव के वास्ते मुईन करते हैं, जिसमें हर रात आग जलाई जाती है और सब लोग बुड्ढे और जवान उस अलाव के गर्द हलक़ा बांध कर और तलवारें और लकड़ियाँ हाथ में लेकर ख़ूब कूदते हैं और चिल्ला चिल्ला कर कहते हैं। अली, सरदार हुसैन, सरदार हुसैन, दुल्हा, दुल्हा, दोस्त, दोस्त। सैकड़ों दफ़ाअ यही अल्फ़ाज़ ब-आवाज़ बुलंद हैं।

इस मुल्क के बाअज़ अज़लाअ में ये लोग इमाम बाड़ा (इमाम का घर) बनवाते हैं। इमाम बाड़ा अक्सर मुस्तहकम मकान होता है, जिसमें अक्सर ऐसा होता है कि बाद को बनाने वाले की और उस के घर के लोगों की क़ब्रें होती हैं। जुनूबी हिन्दुस्तान में सिर्फ आशूरा ख़ाना बनाने का दस्तूर है। ये मकान या बड़ा दालान बिलउमूम चंद रोज़ के वास्ते अर्ज़ के मुनासिब होता है। बाअज़ जगह इस की दीवारों पर स्याह कपड़ा चढ़ाते हैं और मोटे उम्दा ख़त में क़ुरआन की आयात लिखते हैं। ग़रज़ कि ऐसी जगह को निहायत आरास्ता करते हैं। एक जानिब ताज़ीए और ताबूत रखे होते हैं, जिन्हें बाँसों से बनाते हैं और अब्रक़ और पुनी (चांदी, पीतल, राँग वग़ैरह का वर्क़) वग़ैरह ऊपर से मढ़ कर निहायत आरास्ता करते हैं। जो देखने में बड़ी चमक दमक के होते हैं। ये ताज़ीए उस रौज़ा की नक़्ल हैं जो मैदान-ए-कर्बला में हुसैन की मशहद पर बना है। पैग़म्बर अरबी की क़ब्र जो मदीना में है कभी उस की नक़्ल पर भी बनाते हैं। इन ताज़ियों में ज़र कसीर सर्फ़ होता है। जब उन पर रोशनी की जाती है तो अजब बहार मालूम होती है। ताज़ियों के पीछे मुतअद्दिद चीज़ें ऐसी भी होती हैं जिन्हें उन चीज़ों के मुशाबेह समझते हैं जो मार्का-ए-कर्बला में हुसैन ने इस्तिमाल की थीं, मसलन सुनहरी पगड़ी, उम्दा तल्वार, ढाल, तीर कमान, मैंबर (पुलपिट) इस तरह रखते हैं कि बोलने वाला मक्का की तरफ़ रख कर सके। इल्म यानी झंडे जो अक्सर ताँबे और पीतल के होते हैं और कभी सोने चांदी के,

दीवारों से लगे रखे रहते हैं। मामूली इल्म ये है कि एक पंजा बाँस के ऊपर लगा होता है। ये पंजा पंजतन की अलामत है जो मुहम्मद अरबी के घराने के लोग थे और शीयों की ख़ास पहचान भी है।

अलमों के जुदा-जुदा नाम होते हैं। मसलन "अली के हाथ का अलम", फ़ातिमा का अलम, नाल का अलम" (जो हुसैन के घोड़े की नाल की अलामत है) अला हाज़ा-उल-क़यास बहुत और नाम हैं। (जिनका ज़िक्र फ़ुज़ूल है) आईनों, क़ंदीलों और रंगीन लालटेनों से और भी बहार बढ़ जाती है। हर शब को इन आशूरा ख़ानों में कस्रत से लोग जमा होते हैं। वस्त में एक चबूतरा ज़रा ऊंचा होता है। इस पर चंद मर्सियाँ-ख़्वाँ आवाज़ मिला कर कोई एक घंटा तक पढ़ते हैं। लेकिन सुनने वाले जो ज़मीन पर बैठ कर ख़ूब ग़ौरो-फ़िक्र से सुनते हैं, उन पर अजब असर होता है। जब मर्सियाँ-ख़्वाँ ज़रा वक़्फ़ा करता है तो सामईन हुसैन हुसैन कह कर छातियां पीटते हैं। ख़ुद बख़ुद या ब तक्लीफ़ रोते और चिल्लाते हैं, लेकिन बड़ा मातम इस के बाद की एक रस्म पर है।

जब मर्सिया ख़त्म हो चुकता है तो वाक़िया ख़वाँ (वाक़ियात का पढ़ने वाला) मैंबर पर चढ़ कर उस की चोटी पर या नीचे के पाये पर बैठता है और वाक़ियात तारीख़ी सुनाता है। इस के साथ अजीब रिवायत हदीसों से शहीद मौसूफ़ की तौसीफ़ में पढ़ता जाता है। बाज़-औक़ात वो ख़ुद जोश में आ जाता है और सुनने वालों पर एक हालत तारी होती है। दमील का बयान चशमदीदह है जो एक शब किसी आशूरा ख़ाने में गुज़रा था। पहला वाक़िया ख़वाँ फ़ारस का रहने वाला था। उसने निहायत फ़साहत से अपनी ज़बान में कुछ बयान किया और सुनने वाले सुकूत में थे। जब वो कह चुका तो एक बुज़ुर्ग शख़्स ने ख़ुश-बयानी से जल्दी जल्दी हिन्दुस्तानी में बयान किया। फिर यकायक सीढ़ीयों से उतर, दस्तार फेंक, मुज़्तरिबाना जमाअत में घुस पड़ा और बे-तहाशा चीख़ें मारता था और तड़पता था। सुनने वालों पर अजब हालत तारी थी। उम्र रसीदा बुज़ुर्ग लोग बच्चों की तरह फूट फूटकर रोते थे और इसी के मुत्तसिल (मिला हुआ, नज़दीक) ज़नानख़ाने से दर्द-नाक

आवाज़ औरतों के रोने की आती थी। अगरचे नज़र के सामने ना थीं, लेकिन पढ़ना सब सुन सकती थीं।

कुछ अरसे के बाद एक जमाअत उठी और दो सफ़ें बांध कर एक दूसरे के मुक़ाबिल खड़ी हुईं। फिर एक लड़के ने चंद अल्फ़ाज़ ख़ुश-अल्हानी से पढ़े और कुल जमाअत ने अली, अली और हुसैन, हुसैन कर के अव्वल आहिस्तगी से हरकत करनी शुरू की। फिर हर शख़्स ज़ोर ज़ोर से छाती पीटने लगा और आख़िर उनको जोश-ओ-ख़ुरोश इस हद तक पहुंच गया कि जितने आदमी इन सफ़ों में थे। दीवानों की तरह मालूम होते थे। बाअज़ जगह ऐसा देखने में आया है कि मातम करने वाले ऐसी सख़्त ज़रबें (लोहे की ज़ंजीरों से) लगाते हैं कि छातीयों से ख़ून जारी हो जाता है। यहां तक कि आख़िरकार बे-ख़ुद हो जाते हैं। फिर सब लोग किसी आशूरा ख़ाने को चले जाते हैं और वहां भी यही होता है। शौक़ीन आदमी हर शब कई आशूरा ख़ानों में जाता है। दिन को बाअज़ परहेज़गार शीया क़ुरआन पढ़ते हैं। पढ़ी हुई औरतें इन अय्याम में ज़नान ख़ानों में जा कर औरतों को मर्सिया सुनाती हैं और घर की औरतें बड़े शौक़ से अशरा-ए-मुहर्रम में महफ़िलें करती हैं।

मुहर्रम के छः रोज़ कोई और नई बात नहीं होती है। सातवीं तारीख़ इल्म क़ासिम बड़े अज़दहाम से निकलता है। हसन के बेटे क़ासिम की शादी हुसैन की बेटी के साथ, मौत से ऐन क़ब्ल हुई थी। चुनान्चे इस शादी की यादगार में ये अलम उठाया जाता है। मामूल ये है कि एक आदमी घोड़े पर सवार होता है। उस के हाथ में ये अलम रहता है और जो किसी पियादे के हाथ में होता है तो वो मख़्मूर की तरह रंज के इज़्हार के वास्ते गिरता पड़ता है और वो लोग दुल्हा दुल्हा कह कर नारे मारते हैं। मशहूर जगहों में गशत करने के बाद लोग अलम को इस आशूरा ख़ाने को लौटा लाते हैं, जहां से निकाला था। चूँकि वो इल्म यादगार मातम है, बमंज़िल-ए-शहीद के तसव्वुर किया जाता है। फिर उसे लिटा कर कपड़ा ढांक देते हैं और लाश की तरह उस के साथ पेश आते हैं। मुर्दा की तरह इस पर नोहा करते हैं। फिर शर्बत आता है और इस पर फ़ातिहा पढ़ी जाती है। इस के बाद अलम को उस की जगह पर नसब कर देते हैं। नेज़ा यानी बिरछे को जिसकी नोक पर लीमु छिदा होता है, इस अम्र के याद दिलाने को कि हुसैन का सर

यज़ीद ने काट कर इस तरह फिराया था अज़दहाम के साथ जा-ब-जा गशत कराते हैं। नाल साहब (से मुराद) हुसैन के तेज़ घोड़े की याद दिलाती है। इस झंडे पर अक्सर मिन्नतें मांगते हैं। मसलन कोई औरत कहे "अगर तुम्हारे तुफ़ैल में मेरी औलाद हो तो मैं तुम्हारे साथ उसे दौड़ आऊँगी।" अगर मुराद पूरी हो जाएगी और लड़का सात आठ बरस का हो जाये तो एक छोटी सी छतरी हाथ में लेकर नाल साहब के पीछे दौड़ता है। जब दो अलम किसी जगह आकर मिलते हैं तो बग़लगीर होना कहते हैं। इस पर फ़ातिहा पढ़ते हैं और दोनों अपनी राह को चले जाते "बुराक़" भी जिसे उस घोड़े की नक़्ल समझते हैं जो जिब्रईल मुहम्मद अरबी के वास्ते शब मेअराज को लाए थे, बाहर निकाला जाता है। दसवीं तारीख़ से पहली रात जो मुसलमानों के हिसाब से दसवीं कहलाती है यानी शब शहादत को सब ताज़ीए और अलम बाहर निकाले जाते हैं। उस रात बड़ी भीड़ होती है। मर्द और लड़के अजीब शक्लों से मुश्किल हो कर और तरह तरह के भेस बदल कर इधर उधर दौड़ते फिरते हैं। दसवीं तारीख़ अशरा को अलाओं में आग जलाते हैं और हर आशूरा ख़ाना में फ़ातिहा पढ़ते हैं। इस के बाद अलम और ताज़िया किसी कुशादा मैदान में जो बमंज़िल-ए-कर्बला के होता है, दरिया के या तलाब के क़रीब लाते हैं और दुबारा फ़ातिहा पढ़ कर आराइश और आसाइश की चीज़ें उतार कर फ़क़त ताज़ियों को दरिया में डाल हैं।

(1) कभी ऐसा भी होता है कि दूसरे साल के वास्ते रख छोड़ते हैं। पहले साल नहीं बहाते हैं। पानी लोगों को उस शदीद तिश्नगी की याद दिलाता है जो हुसैन पर मौत से पहले गुज़री थी। फ़क़त अलमों को पानी में डुबो देते हैं। बुराक़ और नाल साहब को नहीं डुबोते। फिर खूशबूएं जलाते और मर्सिया पढ़ते हैं और घर को लौट कर अलमों पर और तिरयाक़ वग़ैरह पर फ़ातिहा देते हैं। बारहवीं तारीख़ तमाम रात बैठ कर क़ुरआन व मरसिए पढ़ते हैं और इमाम हुसैन की तारीफ़ करते हैं। 13 तारीख़ को खाना पकवा कर और फ़ातिहा उस पर देकर मुहताजों को तक़्सीम करते हैं। बाअज़ बड़े परहेज़गार शीया मुहर्रम के बाद चालीसवीं दिन चिहलुम करते हैं। बाअज़ रिवायत के मुताबिक़ उसी रोज़ हुसैन का सर और धड़ जुड़ गया। इस दिन को ईद सर व तन कहते हैं।

मुहर्रम की रसूम में सुन्नी सिवाए इस के कि तमाशाइयों के तौर पर हों और किसी तरह नहीं शरीक होते। ये सच्च है कि जिस जगह हुकूमत क़वी और हाकिम ज़बरदस्त नहीं है। हज़रत अली के और उनके अहले-बैत के हालात सुनकर बड़ा जोश-ओ-ख़रोश पैदा हो जाता है। जो अक्सर बड़े फ़साद का मूजिब होता है। पहले तीन ख़लीफों की अक्सर ऐसी मज़म्मत की जाती है कि कोई सुन्नी उस का मुतहम्मिल (बर्दाश्त करने वाला) नहीं हो सकता है। शीया और सुन्नीयों के दर्मियान बड़ा तफ़र्रुक़ा है और मुहर्रम का हर साल वाक़ेअ होना और भी इस के क़ियाम का बाइस है।

लेकिन दसवीं तारीख़ अशरा को सुन्नत के मुवाफ़िक़ एक तहवार होता है जिसे सब मानते हैं। उस दिन को निहायत मुस्तहसिन जानते हैं। क्योंकि उस रोज़ कहते हैं कि ख़ुदा ने आदम, हव्वा, अपने तख़्त, बहिश्त और दोज़ख़ को और मुस्नद अदालत और लौह-ओ-क़लम और तक़्दीर और ज़िंदगी और मौत को पैदा किया और खिचड़ी तैयार करते हैं। फिर हुसैन के नाम पर और जो लोग उनके साथ शहीद हुए थे उनके नाम की फ़ातिहा पढ़ कर हस्ब-ए-मामूल मुहताजों को दे देते हैं। चंद रकअत नमाज़ नफ़्ल और उस के साथ दुआ भी पढ़ते हैं। इस रोज़ क़ब्रिस्तान को भी जाते हैं और फूल अपने दोस्तों की क़ब्रों पर चढ़ाते हैं और फ़ातिहा पढ़ते हैं। हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने अपने तहवारों में बहुत रसूमयात की नक़्ल कर ली है। ताज़ियों का हुजूम के साथ निकालना और पानी बहाना हनूद की दुर्गा पूजा से बहुत मुशाबेह है। (जुनूबी हिंद में (दसवें दिन यानी) दशहरा को हनूद शिव की जोरू दुर्गा की मूर्त को गंगा में डाल देते हैं। जो चढ़ावे मुसलमान लोग ज़ियारात पर मुख़्तलिफ़ औक़ात में चढ़ाते हैं, मसलन चावल साफ़ किया हुआ घी और फूल और मंदिरों के चढ़ावों से मिलते हैं।

मुहम्मदियों का तरीक़ इबादत ऐसे मुल्क के वास्ते जहां कि बुत-परस्ती का ग़लबा था, बहुत सीधा सादा था। जो बनिस्बत फ़हम और क़ल्ब (दिल) के ख़्वाहिशों और ख़यालों से ज़्यादा ताल्लुक़ रखता था। इसी सबब से मुसलमानों ने अपने तहवारों में नुमाइश और ज़ेबाइश बहुत सी बातें हिंदूओं से इख़्तियार की हैं। ऐसा करने से अगरचे हिन्दुस्तान के मुसलमानों में बातिल रसूम बहुत बढ़ गई हैं, लेकिन इस में शक नहीं कि उनकी मुफ़सिद तबीयत

को नरम कर दिया है और अगरचे सुन्नी, शीया के इन रसूम को बेदीन समझते हैं, लेकिन हक़ीर समझ कर लापरवाई से दरगुज़र करते हैं। दूसरे उस के साथ ये बात भी शायद कुछ असर रखती है कि ब्रिटिश गर्वनमैंट इंडिया उन लोगों को जो अमन में ख़लल डालते हैं, सज़ा देती है। फिर भी हिन्दुस्तान के शीयों और सुन्नीयों में इतना इत्तिफ़ाक़ और एक को दूसरे का इस क़द्र लिहाज़ है कि तुर्क को ईरानी के साथ या ईरानी को तुर्क के साथ नहीं, और इस में भी शक नहीं कि बाअज़ मुसलमान शायर शीया और सुन्नी दोनों मज़्हब रखते हैं, मसलन वाली ने अपने नज़्म में अव्वल मुख़्तसर मुनक़बत चारों ख़ुलफ़ा की लिखी है और फिर हज़रत अली की और उनके बेटों हसन हुसैन की जिन्हें इमाम अर्मन कहता है बड़ी तारीफ़ की है। हज़रत अली की फ़ातिहा में ये दुआ पढ़ते हैं :-

मैं इल्तिजा करता हूँ कि ख़ुदा इनायत करे। उस रूह पाक के तुफ़ैल से जो किताब आफ़रीनश की ज़ेबाइश और बाद नबी अरबी के अव्वल ख़ल्क़ के और सितारा मख़्लूक़ के और निहायत क़ीमती मोती दर्ज ख़ूबी के मालिक बुलंदी और पस्ती के, जो हमेश्गी के पुल पर मुम्ताज़ मुक़ाम रखते हैं और महिराब ईमान के और मकान शरीअत के तख़्त पर बैठने वाले, कशती बहर दीन के, आफ़्ताब ज़मीन जलाल की क़ुव्वत-ए-बाज़ू नबी के हैं। सज़ावार हैकल तौहीद के तमाम दीनदारों के दीनदार, नूर मुनव्वर अजाइबात ईलाही के, बाब फ़त्ह के, इमाम दरवाज़ा बहिश्त के, साक़ी आब-ए-कौसर के, सज़ावार तारीफ़ मुहम्मद के, ख़ुलासा आदमीयों के, शहीद पाक, सरदार ईमान वालों के, इमाम मोमिनों के, अली इब्ने अबी तालिब, अली असदुल्लाह ग़ालिब। मेरी ये आरज़ू है कि ख़ुदा बतुफैल इस पाक ख़लीफ़ा के मेरी मुराद को जो इस से मांगता हूँ अज़राह इनायत के क़ुबूल करे। हसन और हुसैन के फ़ातिहा में ये दुआ पढ़ते हैं। मैं इल्तिजा करता हूँ कि ख़ुदाए करीम इस नियाज़ को क़ुबूल करे जो दो बहादुर इमामों के नाम पर करता हूँ कि शहीद महबूब-ए-ख़ुदा और बेगुनाह मक़्तूल शरीरों के हैं यानी मुबारक अबू मुहम्मद-उल-हसन और अबू अब्दुल्लाह अल-हुसैन और वो जो दो अज़दह इमाम और चहारदह मासूम और 72 शोहदा मैदान-ए-कर्बला के नाम पर करता हूँ, क़ुबूल करे।

(2) आख़िरी चहार शंबह

ये तहवार माह सफ़र के आख़िर चहार शंबा को होता है और इस अम्र की याद में किया गया है कि इस रोज़ मुहम्मद अरबी को ऐसे आरिज़ा से जो दूसरे महीने में आपकी वफ़ात का बाइस हुआ, कुछ तख़फ़ीफ़ हुई थी। मीठी शेर माल (मैदे की ख़मीरी रोटी) पक्का कर नबी जी के नाम की फ़ातिहा उन पर पढ़ते हैं। लेकिन निहायत अजीब दस्तूर सात सलामों का पीना है। केले या आम का पत्ता या काग़ज़ का पर्चा किसी मुल्ला के पास ले जाते हैं। वो इस पर सात मुख़्तसर आयात क़ुरआन की लिख देता है। लिखाने वाला इस तहरीर को ख़ुशक होने से पहले पानी में धो कर स्याही आमेज़ पानी को पी लेता है। इस तरह उक़्बा (आख़िरत) की सलामती और सलामती का यक़ीन दिलाया जाता है और सात सलाम यह हैं :-

(1) سَلَامٌ قَوْلًا مِّن رَّبٍّ رَّحِيمٍ "सलाम बोलना रब मेहरबान से।" (सुरह यासीन आयत 58)

(2) سَلَامٌ عَلَىٰ نُوحٍ فِي الْعَالَمِينَ "सारे जहान वालों में नूह पर सलाम है।" (सुरह साफ़्फ़ात 37:77)

(3) سَلَامٌ عَلَىٰ إِبْرَاهِيمَ "इब्राहिम पर सलाम है।" (सुरह साफ़्फ़ात 37:109)

(4) سَلَامٌ عَلَىٰ مُوسَىٰ وَهَارُونَ "मूसा और हारून पर सलाम है।" (सुरह साफ़्फ़ात 37:120)

(5) سَلَامٌ عَلَىٰ إِلْ يَاسِينَ "इल्यास पर सलाम है।" (सुरह साफ़्फ़ात 37:130)

(6) سَلَامٌ عَلَيْكُمْ طِبْتُمْ فَادْخُلُوهَا خَالِدِينَ "सलाम तुमको पहुंचे, तुम लोग पाकीज़ा हो सो इस में सदा रहने को बैठो।" (सुरह ज़ुमर 39:73)

(7) سَلَامٌ هِيَ حَتَّىٰ مَطْلَعِ الْفَجْرِ "अमान है, वो रात सुबह के निकलने तक।" (सुरह अलक़द्र 97:5)

शीयों के नज़्दीक ये दिन अच्छा नहीं है, मनहूस है। वो उस दिन को चार शंबा सूरी यानी क़ियामत के सूर फूंके जाने का दिन कहते हैं। बर-ख़िलाफ़ इन (शिया) के सुन्नी इस दिन ख़ुशीयां करते हैं और उसे अच्छा और मसऊद जानते हैं।

(3) बारह वफ़ात

ये तहवार रबी-उल-अव्वल की बारहवीं तारीख़ होता है। ये लफ़्ज़ मुरक्कब है, "बारह" बमाअनी "दरवाज़ा" और "वफ़ात" बमाअनी "मौत" से। क्योंकि बहुतों को गुमान है कि मुहम्मद अरबी ने ऐसे रोज़ वफ़ात पाई थी। एक मशहूर मुसलमान मुअर्रिख़ कहता है कि जब ये मुतवहिह्श (वहशत में डालने वाली ख़बर) जहान में मशहूर हुई तो सब बदहवास हो गए थे और सभों ने नज़रो नियाज़ की और दुआएं मांगी कि मुहम्मद अरबी की जान को अमान पहुंचे। मगर बाअज़ कहते हैं कि रबी-उल-अव्वल की दूसरी तारीख़ आपकी वफ़ात हुई। चूँकि तारीख़-ए-वफ़ात मशकूक (शक में) है, इस सबब से अक्सर लोग पहली से बारहवीं तक हर रोज़ फ़ातिहा दिया करते हैं और जो लोग बारह वफ़ात का रोज़ा रखते हैं, उनके यहां रोज़े से एक रोज़ पहले शाम को संदल की रस्म होती है और बारहवीं को उर्स करते हैं। (उर्स में शीरीनी पर या किसी और चीज़ पर पंचायत और फ़ातिहा पढ़ते हैं।)

संदल की रस्म ये है कि संदल की लकड़ी को घुस कर कपड़े को इस में तर करते हैं। फिर एक हुजूम के साथ ईद-गाह को या किसी ऐसी जगह को जहां फ़ातिहा दी जाती है, ले जाते हैं। बाद फ़ातिहा के उसे लोगों में बांट देते हैं। मक़्सूद इस रस्म से ये है कि तहवारों के दिन या किसी बुज़ुर्ग के दिन शाम को इत्तिला आम हो जाये कि कल मामूली फ़ातिहा और नज़र व नियाज़ फ़ुलां फ़ुलां मुक़ाम पर होगी। बारहवीं तारीख़ की सुबह को मस्जिदों या घरों में क़ुरआन पढ़ते हैं। फिर खाना पका कर फ़ातिहा देते हैं। बाअज़ आदमीयों के पास क़दम रसूल (नबी का पांव) होता है। ये एक पत्थर है जिस पर क़दम का निशान होता है। क़दम रसूल मुतबर्रिक (बरकत वाली) चीज़ है और जिस जगह आज के रोज़ उसे रखते हैं, वो जगह बड़ी ज़ेब-ओ-ज़ीनत से आरास्ता की जाती है। जब लोग जमा हो लेते हैं तो चंद

आदमी जो इस काम के वास्ते मामूर होते हैं मुहम्मद अरबी की विलादत, मोअजज़ात और वफ़ात का क़िस्सा पढ़ते हैं। थोड़ा सा क़ुरआन और दुरूद भी पढ़ते हैं। (हमारे मुल्क में उसे पंचायत कहते हैं)

मदारिस में और बाअज़ और अज़ला में ज़्यादा रिवाज ये है कि इस रोज़ को बमंज़िल-ए-यौम-ए-वफ़ात नबी के नहीं मानते हैं, बल्कि जशन-ए-मीलाद शरीफ़ (यानी आपकी बुज़ुर्ग पैदाइश का तहवार) करते हैं। मामूली रसूम इस की भी वैसी ही हैं। लेकिन क़दम रसूल के बजाए आसार शरीफ़ दिखाते हैं। थोड़े से बाल होते हैं जिन्हें दर-हक़ीक़त मुहम्मद अरबी की दाढ़ी और मूंछों के बाल समझते हैं। कहते हैं इन बालों का मोअजिज़ा ये है कि अगर टूट जाएं तो फिर बढ़ जाते हैं। इस रोज़ उन बालों को गुलाब में तर करते हैं और जो लोग इस जलसे में शरीक होते हैं इस गुलाब को पीते हैं और आँखों को लगाते हैं। इस में बड़ा सवाब है। आसार ख़ाना में यानी जिस घर में आपके बाल रखे होते हैं, वहां फ़ातिहा और दुरूद वग़ैरह पढ़ते हैं। इस रस्म का मानना वाजिब है ना सुन्नत, सिर्फ़ मुस्तहब। फिर भी बिल-उमूम सब मानते हैं। इत्तिफ़ाक़ से ऐसा कोई निकलेगा जो आसार शरीफ़ के अज़रारह एजाज़ बढ़ जाने पर यक़ीन ना रखता हो।

(4) शब-ए-बरात

ये तहवार जिसके नाम के मअनी किताबत की रात हैं, 14 वीं शाबान को क़रार दी गई है। अर्फ़ा[53] इस से एक रोज़ पहले होता है। बिलउमूम "अर्फ़ा" को शब-ए-बरात कहते हैं, लेकिन ये ग़लत है। "बरात" के मअनी "किताब और नविश्ता" के हैं कि इस रात ख़ुदाए तआला सब आमाल जो बंदों से साल आइंदा में सरज़द होने को होते हैं, किताब में दर्ज करता है। तेरहवीं तारीख़ मुहताजों के वास्ते खाना पकाया जाता है और इस पर अपने बाप दादों और रिश्तेदारों मुतवफ़्फ़ी की रूहों के सवाब पहुंचाने को फ़ातिहा दी जाती है। जब घर में सब लोग जमा होते हैं तो सुरह फ़ातिहा एक दफ़ाअ और सुरह इख़्लास तीन दफ़ाअ और आयत-ऊल-कुर्सी एक दफ़ाअ और

53 फ़क़त बक़र ईद ही एक ऐसा तहवार है जिसका अर्फ़ा होता है।

आख़िर में दुरूद पढ़ते हैं। इस के बाद ख़ुदा से दुआ मांगते हैं कि इस काम का सवाब और जो खाना मुहताजों को दिया है इस का सवाब इस घर के रिश्तेदारों और दोस्तों की रूहों को बतुफैल पैग़म्बर अरबी के पहुंचे। फिर वो लोग मस्जिद को जाते हैं और बाद नमाज़ इशा चंद रकअत नफ़्ल पढ़ते हैं।

फिर सुरह यासीन तीन बार पढ़ते हैं। इस के साथ नीयत ज़रूरी होती है। पहली नीयत ये है कि उम्र दराज़ हो। दूसरी ये कि रिज़्क़ की कुशाइश हो। तैसी बुराई से महफ़ूज़ रहे। फिर सुरह दुख़ान (44) इसी नीयत से पढ़ते हैं और जिसका जी चाहे और कोई सूरत भी पढ़े। इस के बाद उठकर मुख़्तलिफ़ क़ब्रिस्तानों को जाते हैं। असनाए राह में फूल ख़रीदते हैं जो बाद को क़ब्रों पर बिखेरते हैं। फिर फ़ातिहा पढ़ते हैं। अगर फ़ातिहा पढ़ने वाले का कोई रिश्तेदार या दोस्त इस क़ब्रिस्तान में दफ़न नहीं है तो अर्वाह क़ुबूर जो लोग वहां दफ़न हैं के नाम पर फ़ातिहा पढ़ते हैं। जो लोग बड़े दीनदार हैं वो तमाम रात क़ब्रिस्तान में फिरते हैं। ये रसूम फ़र्ज़ व सुन्नत नहीं नवाफ़िल (नफ़्ल की जमा) हैं और सवाब के काम हैं और अगरचे बिद्दत है फिर भी अच्छा समझते हैं। इसी सबब से "बिद्दत हसना" कहते हैं।

चौधवीं तारीख़ को आम ख़ुशी करना शरअन बेअस्ल है। पंद्रहवीं रात को गोया मुसलमानों का गे फॉक्स है। आतिशबाज़ी में ज़र कसीर सर्फ़ होता है और इस तहवार में औरों की निस्बत ज़्यादा छोड़ते हैं और फ़ातिहा के साथ ये दुआ मांगते हैं कि "ऐ हमारे ख़ुदा ये रोशनी जो हमने इस मुबारक रात में की है बतुफैल रिसालत मुहम्मद अरबी के मुर्दों पर हमेशा की रोशनी का निशान हो और तू उन पर नूर का साया कर। ऐ ख़ुदा तू उन्हें क़ुबूल कर और हमेशा की आसाइश का मकान नसीब कर।"

(5) रमज़ान और ईद-उल-फित्र

रमज़ान के रोज़े रखने भी दीन के अरकान ख़मसा (पांच अरकान) से एक रुक्न है। रोज़े की बह्स बाब मासबक़ में बतफ़सील हो चुकी है। इस वास्ते बिलफ़अल उन्हीं रसूम का ज़िक्र करना ज़रूरी है जो रमज़ान के अहकाम दीन से मुताल्लिक़ हैं। आग़ाज़ इस्लाम से मुसलमान इस महीने को

बड़ा अज़ीज़ और मुबारक जानते हैं, क्योंकि इस महीने में मुहम्मद अरबी इबादत तन्हाई के वास्ते साल ब साल ग़ार-ए-हीरा को जाया करते थे जो मक्का से चंद मील के फ़ासिले पर छोटी पहाड़ी पर वाक़ेअ है। दूसरे सन हिज्री में यानी हिज्रत मक्का से दूसरे बरस में ये क़रार दिया गया कि माह रमज़ान मै रोज़ा रखना चाहीए। रमज़ान का महीना जिसमें क़ुरआन लोगों की हिदायत के वास्ते और राह की खुली निशानीयां और फ़ैसला नाज़िल हुआ। "फिर जो कोई तुम में ये महीना पाए तो रोज़ा रखे।" (सुरह बक़रह आयत 181) उस वक़्त तक मुसलमान दसवीं मुहर्रम यानी आशूरा के रोज़े को ख़ास रोज़ा समझते थे। ग़ालिबन यहूदीयों के सातवें महीने की दसवीं तारीख़ के रोज़े से ये रोज़ा मिलता है। "सातवें महीने में भी और उस के दसवें रोज़ कफ़्फ़ारा देने का दिन होगा। तुम्हारी मुक़द्दस जमाअत होगी। तुम उस दिन (अपने) आपको ग़मज़दा बनाओ।" (अहबार 23:27) जब मुहम्मद अरबी पहले-पहल मदीना को गए थे तो उन्हें बड़ी तवक़्क़ो थी कि यहूदी मेरे तरफ़दार होंगे, लेकिन जब उन्होंने इस के ख़िलाफ़ पाया तो जहां तक हो सका मज़्हब इस्लाम को मिल्लत यहूद के ख़िलाफ़ बनाने में कोई दक़ीक़ा फ़िरोगुज़ाश्त नहीं किया। इसी सबब से उन्होंने क़िब्ला बदल दिया। (सफ़ा 60) देखो और हिज्रत मदीना से साल दोम में रमज़ान के रोज़े मुक़र्रर किए।

आलिम इस महीने की फ़ज़ीलत का ये सबब बयान करते हैं कि ख़ुदा ने अगले नबियों को इसी रमज़ान में सहीफ़े नाज़िल किए थे और इसी महीने में लौह-ए-महफ़ूज़ से जो सातवें आस्मान में है क़ुरआन नाज़िल हो कर पहले आस्मान पर आया और लैल-तुल-क़द्र को पहली वहयी मुहम्मद अरबी पर उतरी थी। "हमने ये उतारा शब-ए-क़द्र में और तू क्या बोझा। क्या है शब क़द्र? शब क़द्र हज़ार महीने से बेहतर है।" (सुरह क़द्र 97:1-3) रमज़ान की फ़ज़ीलत में मुहम्मद अरबी कहा करते थे कि "इस महीने में बहिश्त के दरवाज़े खुल जाते हैं और दोज़ख़ के दरवाज़े बंद हो जाते हैं और शयातीन मुक़य्यद (क़ैद में) हो जाते हैं। सिर्फ वही लोग जो रमज़ान को मानते हैं बहिश्त के जिसे "रयान" कहते हैं, दाख़िल हो सकेंगे।" जो रोज़ा रखते हैं, उनके सब पिछले गुनाह माफ़ हो जाऐंगे और ये बात के दिन का रोज़ा मुक़र्रर किया, रात का ना किया।

इस बाब में मुहम्मद अरबी ने बेशक इस आयत की तरफ़ इशारा किया कि "अल्लाह तुम पर आसानी चाहता है और नहीं चाहता है तुम पर मुश्किल।" (सुरह अल-बक़रा आयत 181) रमज़ान के मख़्सूस अहकाम नमाज़ तरावीह और एतिकाफ़ है। नमाज़ तरावीह का ज़िक्र क़ब्ल इस से हो चुका है। (सफ़ा ....*) हर शब रमज़ान को क़ुरआन का एक पारा मस्जिद में पढ़ते हैं। एतिकाफ़ सुन्नत मुअक्कदा है। (यानी इस की निस्बत हुक्म ताकीदी है) "मोतकिफ़" यानी एतिकाफ़ करने वाला वो है जो मस्जिद के किसी गोशे में जो आम इबादत से अलेहदा (अलग) हो, इबादत करे। बुख़ारी से रिवायत है कि नबी अरबी हर रमज़ान के अख़ीर दस दिन एतिकाफ़ किया करते थे और आपकी वफ़ात के बाद आपके अस्हाब इस तरीक़ पर अमल करते रहे। मामूल ये है कि बीसवीं और तीसवें रमज़ान के दर्मियान किसी तारीख़ एतिकाफ़ करना चाहीए। अगर इस में कुछ नुक़्सान वाक़ेअ होतो दूसरे दिन फिर एतिकाफ़ चाहिए, लेकिन इमाम मुहम्मद का क़ौल है कि अक़ल्ल (कम) मीयाद एतिकाफ़ की एक घंटा है। बाअज़ आलिमों के नज़्दीक एतिकाफ़ फ़र्ज़ किफ़ाया है यानी अगर किसी जमाअत का एक शख़्स भी इस काम को कर ले तो कुल (सब) पर से उतर जाता है, मगर जो कोई रमज़ान में एतिकाफ़ का अह्द करे तो वाजिब हो जाता है। सिवाए दस अख़ीर दिनों रमज़ान के और वक़्त में भी एतिकाफ़ का इख़्तियार है। लेकिन और वक़्त में सिर्फ मुस्तहब है यानी सवाब का काम है। सिवाए शाफ़ियों के और सब के नज़्दीक मोतकिफ़ को रोज़ा रखना भी चाहीए और इस की नीयत भी ज़रूरी है।

मोतकिफ़ को हालत एतिकाफ़ में बजुज़ अशद ज़रूरत के और वुज़ू व ग़ुस्ल के (कि इबारत इस से शरई तहारत है) मस्जिद से बाहर हरगिज़ नहीं जाना चाहीए। जब रात हो तो मस्जिद ही में खाना, पीना और सोना चाहीए। किसी और वक़्त काम करना क़तअन नाजायज़ है। मुआमलात दीन में औरों से गुफ़्तगु करनी दुरुस्त है और अगर मोतकिफ़ कोई कारोबार रखता हो तो अस्बाब तिजारत की ख़रीदो फ़रोख़्त की निस्बत हुक्म या अहकाम दे सकता है, लेकिन तिजारत का माल लाना उस के सामने किसी तरह दुरुस्त नहीं है। लेकिन क़ुरआन को ऐसी आवाज़ से पढ़ना कि लोग सुन सकें, बड़ा सवाब है। इस फ़ेअल से ऐसा साहब बातिन हो जाता है कि उस की बातें

तेज़ तल्वार की मानिंद पुर तासीर होती हैं यानी जो कहता है, वही होता है। दुआ या बदा उस की बहुत लगती है। जब दिन गुज़र जाते हैं तो रोज़े रखने मौक़ूफ़ करते हैं। रोज़ा खोलने को "इफ़्तार" कहते हैं।

इस के बाद जिस दिन खाना खाते हैं उस दिन को रोज़ा खोलने की ईद कहते हैं। उस दिन मस्जिद में नमाज़ पढ़ने से पहले सदक़ा यानी ख़ैरात देते हैं। ईद-उल-फित्र का सदक़ा सिर्फ मुसलमानों पर महदूद है, किसी और को नहीं देते हैं। अगर कोई नमाज़ से पहले सदक़ा देने में तसाहुल करे तो उसे इतना सवाब नहीं होगा जितना कि पहले देने में होता। इस का सबब ये है कि अगर अव्वल रोज़ में ना दिया जाये तो ग़रीब लोग नमाज़ को मस्जिद में जाने से पेशतर आसूदा ना होंगे। सदक़ा अपनी ज़ात के वास्ते और अपनी नाबालिग़ औलाद के वास्ते और बांदी ग़ुलामों के वास्ते ख़्वाह मुसलमान हों या काफ़िर देते हैं, लेकिन बालिग़ औलाद या जोरू के वास्ते नहीं चाहीए। जुनूबी हिंद में ये दस्तूर है कि सदक़े में इतने चावल देते हैं कि एक आदमी शिकम सैर हो सके। जब ये हो चुकता है तो लोग मस्जिद को तक्बीर कहते हुए (ख़ुदा बड़ा है) जाते हैं। ईद की नमाज़ मिस्ल नमाज़ जुमा है बइस्तसना इस के कि ईद को सिर्फ दो रकअत पढ़ते हैं और ख़ुत्बा जो नमाज़ के बाद पढ़ा जाता है, सुन्नत है। बख़िलाफ़ इस के जुमा का ख़ुत्बा रकअत फ़र्ज़ से अव्वल होता है और इस का पढ़ना फ़र्ज़ है। ख़ुत्बा सुनने के बाद लोग इधर उधर जाते हैं। एक दूसरे से मिलते हैं, बड़ी ख़ुशीयां करते हैं। मामूली सूरत ख़ुत्बा ईद-उल-फित्र की जो अरबी में पढ़ते हैं, ये है :-

ख़ुत्बा ईद-उल-फित्र

بسم اللّٰہ الرحمٰن الرحیم

"ख़ुदाए रहमान व रहीम के नाम से शुरू करता हूँ।"

पाक है ख़ुदा जिसने रहमत का दरवाज़ा रोज़दारों पर खोल दिया और फ़ज़्ल-ओ-करम से उन्हें बहिश्त में दाख़िल होने का मन्सब अता किया। ख़ुदा सबसे बड़ा है और सिवाए उस के और कोई माबूद नहीं। ख़ुदा बड़ा है और सताइश के लायक़ है। वो अपने फ़ज़्ल व करम से रोज़ा रखने वालों को बदला देता है। उसने फ़रमाया कि मैं रोज़दारों को उक़्बा (आख़िरत) में

मकान और महल और बहुतेरी उम्दा नेअमतें दूँगा। ख़ुदा बड़ा है, ख़ुदा बड़ा है। पाक है उस की ज़ात जिसने ब-तहक़ीक़ क़ुरआन को रमज़ान में हमारे नबी अरबी पर नाज़िल किया और जो तमाम सच्चे मोमिनों के पास अमन देने के वास्ते तमाम मलाइका (फ़रिशते) भेजता है। ख़ुदा बड़ा है और तमाम सताइश के लायक़ है। इस ईद-उल-फित्र के वास्ते जो बड़ी बरकत है। हम उस की हम्दो सताइश करते हैं और गवाही देते हैं कि उस के सिवा और कोई माबूद नहीं। वो अकेला है। कोई उस का शरीक नहीं। उस की तौहीद पर जो हम गवाही देते हैं, वो यहां हमारी सलामती का बाइस होगी और उक़्बा (आख़िरत) में बहिश्त में दाख़िल होने का मूजिब होगी। मुहम्मद अरबी ख़ुदा की रहमत और सलामती उन पर और तमाम बड़े अम्बिया सब उस के बंदे हैं। वो सब जिन्न व इन्स का मालिक है। जब तक कि दुनिया क़ायम है उसी से रहमत व सलामती मुहम्मद अरबी पर और उनके घराने पर नाज़िल हुई है।

ख़ुदा सबसे बड़ा है, उस के सिवा और कोई नहीं, ख़ुदा बड़ा है, ख़ुदा बड़ा है और उसी को सब सताइश है। ऐ गिरोह मोमिनों के और ऐ जमाअत मुसलमानों की, हक़ तआला की तुम पर रहमत है। वो कहता है कि ये ईद तुम्हारे वास्ते बरकत और काफ़िरों को बमंज़िल-ए-लानत के है। जब तक सदक़ा ना दोगे, अपने रोज़ों का सवाब ना पाओगे और तुम्हारी नमाज़ें आस्मान पर पहुंचने से रुकी रहेंगी। (इस से मक़्सूद वो लोग हैं जिन्हों ने सदक़ा नहीं दिया है) ऐ जमाअत मोमिनीन सदक़ा तुम पर वाजिब है। नाज (अनाज का मुख़फ़्फ़फ़, ग़ल्ला) के चंद पैमाने या उस की क़ीमत मुहताज को दो। रमज़ान में नमाज़ तरावीह पढ़ना, ख़ुदा से आजिज़ी करना, एतिकाफ़ में बैठना और क़ुरआन पढ़ना तुम्हारा काम था।

रमज़ान के पहले दस रोज़ों में अहकाम दीन के बजा लाने से ख़ुदा की रहमत होती है और बाद के दस रोज़ों में उस की बख़्शिश होती है और अख़ीर के दस दिन उन लोगों को जो उस के बजा लाने वाले हैं, दोज़ख़ के अज़ाब से बचाते हैं। ख़ुदा ने रमज़ान को बरकत का महीना किया है, क्योंकि रमज़ान ही की रातों से किया एक रात लैलतुल-क़द्र नहीं है जो हज़ार रात से बढ़कर है? इसी रात जिब्रईल और मलाइका (फ़रिशते)

आस्मान से उतरे थे। वो रात जो तलूअ फ़ज्र तक बरकत से मामूर है। इस अम्र का फ़सीह बयान करने वाला और वाज़ेह सबूत कलाम ईलाही है। पाक है वो अल्लाह जिसने क़ुरआन में फ़रमाया है कि "ये कलाम ईलाही रमज़ान में नाज़िल हुआ।" ये हिदायत करने वाला आदमीयों का और फ़र्क़ करने वाला हक़-ओ-बातिल का है। ऐ मोमिनों ऐसे महीने में मुस्तइद हो और ख़ुदा का हुक्म बजा लाओ और रोज़ा रखो। लेकिन बीमार व मुसाफ़िर क़ज़ा कर के और दिनों में इतने ही रोज़े रखें और कहो कि ख़ुदा बड़ा है और उसी को सब तारीफ़ है। ख़ुदा ने रोज़े को तुम पर आसान किया है। ऐ मोमिनों क़ुरआन शरीफ़ की तहसील से ख़ुदा हमें तुम्हें बरकत देगा। उस की हिदायत हमारे तुम्हारे वास्ते मुनाफ़त है और हिक्मत से मामूर करती है। नेअमत देने वाला, पाक बादशाह, फ़य्याज़, मेहरबान, पालने वाला, बुर्दबार और रहमत वाला ख़ुदा है।

औरतों की जमाअतें इस ईद को जहां तक कि उनके इम्कान में होता है, पर्दे की हालत में ख़ूब ख़ुशीयां करती हैं। पर्दे की सवारीयों में वो औरों के यहां और उनके यहां मिलने को आती हैं। सबकी सब उस दिन की बड़ी ताज़ीम करती हैं। उम्दा उम्दा ज़ेवर और बहारदार लिबास पहनती हैं। तमाम ज़नानों से तहवार के गीतों की और बुलंद नग़मों की सदाएँ उठती हैं। दोस्त दोस्तों से मिल कर ख़ुश होते हैं। नौकर चाकरों को इनाम-ओ-इकराम दिए जाते हैं। मुहताजों की यादगारी होती है। ग़रज़ कि ईद के इस मुबारक दिन पर बहमा जिहत ख़ुशी के अस्बाब नज़र आते हैं और घर की बड़ी बीबी मुतवस्सिलों (मुतवस्सिल: वसीला बनाने वाला, नज़दीकी चाहने वाला) और कमीनियो (कमीना: उर्दू लफ्ज़ हे इसका मतलब नीच जात है) नीच ज़ात से डालियां और तोहफ़े तहाइफ़ लेती है और इनायत-ओ-नवाज़िश का इज़्हार करती हैं। (ज़ौजा हसन अली की किताब दरबाब हालात मुसलमानान हिंद, सफ़ा 92)

(6) बक़रईद

तमाम साल में यही एक बड़ा तहवार होता है। उसे" ईद क़ुर्बान" और "ईद-उल-अज़हा" भी कहते हैं और बिलउमूम "ईद-उल-अज़हा" (क़ुर्बानी

का तहवार) कहा करते हैं। तुर्की और मिस्र में इस को "मीराम" कहते हैं। अस्ल इस की यूं है। हिज्रत से चंद महीनों के बाद यानी मक्का को छोड़कर जब मदीना में मुहम्मद अरबी ने सुकूनत इख़्तियार की तो उन्होंने देखा कि यहूदी सातवें महीने की दसवीं तारीख़ कफ़्फ़ारे का रोज़ा रखते हैं। एक हदीस का ये मज़्मून है कि नबी ने उनसे पूछा कि ये रोज़ा क्यों रखते हैं तो उन्होंने कहा फ़िरऔन के हाथों से मूसा ने और बनी-इस्राईल ने ख़लासी पाई थी। इस वाक़िये की यादगारी में ये रोज़ा रखते हैं। इस पर मुहम्मद अरबी ने कहा कि उनकी बनिस्बत हमारा हक़ मूसा पर ज़्यादा है। चुनान्चे आपने यहूद के साथ रोज़ा रखा और अपने अस्हाब को भी इस का हुक्म दिया। अय्याम रिसालत में यही ज़माना था कि मुहम्मद अरबी यहूद मदीना से जो गाह ब गाह उनकी दावत इस्लाम में शरीक हुआ करते थे, दोस्ती रखते थे।

नबी अरबी भी कभी यहूद की इबादतों में जाया करते थे। इस के बाद क़िब्ला का तग़य्युर यरूशलेम यानी बैतुल-मुक़द्दस से मक्का की जानिब हुआ। क्योंकि यहूदी तब्दील मज़्हब पर ऐसे आमादा ना थे, जैसा कि मुहम्मद अरबी अव्वलन मुतवक़्क़े थे। दूसरे सन हिज्री में मुहम्मद अरबी और उनके अस्हाब फिर यहूद के रोज़े में शरीक ना हुए। क्योंकि उस वक़्त में मुहम्मद अरबी ने नया तहवार बक़रईद का मुक़र्रर कर लिया था। अरब के बुतपरस्त हर साल इन अय्याम में मक्का का सफ़र किया करते थे और क़ुर्बानी में जानवर चढ़ाना इस सफ़र की अख़ीर रस्म का एक जुज़्व (हिस्सा) था। इस जुज़्व (हिस्से) को कि इबारत इस से जानवरों की क़ुर्बानी है मुहम्मद अरबी ने ईद में दाख़िल किया जो उस वक़्त मदीना में बजाय यहूद के रोज़े के क़ायम की थी। इस से तमाम मक्के वाले राज़ी और तमाम अरब आपके हवा-ख़्वाह हो गए। मुहम्मद अरबी उस वक़्त तक मक्का का हज नहीं कर सकते थे। क्योंकि दोनों शहरों के बाशिंदों में अब तक अदावत चली आती थी, लेकिन दसवीं ज़ील-हिज्ज को ऐन उस वक़्त में कि मक्का के अरब ज़बीहों में मसरूफ़ थे, मुहम्मद अरबी ने मदीना से जहां कि उनका घर था चल कर और अस्हाब को जमा कर के ईद-उल-अज़हा यानी बक़र-ईद मुक़र्रर की। दो जवान बकरीयां आपके सामने हाज़िर की गईं। एक को आपने ये कह कर ज़ब्ह किया कि ऐ रब मैं इस जानवर को अपने तमाम लोगों के और उन सभों के नाम

पर ज़ब्ह करता हूँ जो तेरी तौहीद और मेरी रिसालत की गवाही देते हैं और ऐ रब ये मुहम्मद अरबी के और उस के घराने के नाम है।

इस ईद के मानने वाले को बड़ा सवाब मिलता है। आईशा से रिवायत है कि नबी ने एक मर्तबा फ़रमाया कि इन्सान का कोई काम ख़ुदा को ईद-उल-अज़हा के दिन ख़ून बहाने से ज़्यादा ख़ुश नहीं आता, क्योंकि बिलयक़ीन क़ुर्बान किया हुआ जानवर क़ियामत के दिन अपने सींग, बाल और खुर समेत आकर क़ुर्बानी करने वाले के नेक आमाल के पल्ले को भारी कर देगा और यक़ीनन उस का ख़ून ज़मीन पर गिरने से पहले ख़ुदा को मक़्बूल होता है। इस सबब से तुम्हें इस से ख़ुश चाहीए।

मुसलमान कहते हैं कि इब्राहिम नबी को इस्माईल की क़ुर्बानी का हुक्म हुआ था और ये कि कई मर्तबा उन्होंने अपने बेटे का गला काटने की ग़ैर मोअस्सर कोशिशें कीं यानी जब छुरी चलाई चल ना सकी तो इस्माईल ने बाप से कहा कि ये मुहब्बत पिदरी का तक़ाज़ा है कि आपके हाथ से छुरी ख़ता कर जाती है। आँखें बंद कर के मुझे ज़ब्ह करो। इब्राहिम ने इस सलाह पर अमल किया और आँखों पर पट्टी बांध कर और बिसमिल्लाह (بسم اللہ) कर के जो छुरी चलाई तो उन्होंने गुमान किया कि बेटे का गला कट गया, लेकिन देखिए इसी अस्ना में जिब्रईल ने लड़के को हटा कर एक मेंढा उस की जगह दिया था। चुनान्चे इस वाक़िये की याद ईद को होती है। ईद से एक दिन पहले अर्फ़ा होता है। तरह तरह का खाना पकवा कर अव्वल इस पर नबी के नाम की फिर मुर्दों के नाम की या और जिस किसी के नाम पर मंज़ूर हो या जिससे कुछ मुराद मांगी जाये उस के नाम पर फ़ातिहा देकर वो खाना दोस्तों को भेज देते हैं। ईद के दिन सुबह को दीनदार मुसलमान ईदगाह को और अगर ईदगाह ना हो तो किसी नामी मस्जिद को जाते हैं और रास्ते में तक्बीर "अल्लाहु-अकबर" اللہ اکبر ख़ुदा बड़ा है। لا الہ الا اللہ "सिवाए ख़ुदा के और कोई बंदगी के लायक़ नहीं" "वल्लाह अकबर" اللہ اکبر ख़ुदा बड़ा और "लिल्लाहिल-हम्द" للہ الحمد और उसी को सब तारीफ़ है। वुज़ू के वक़्त नमाज़ी को ये कहना चाहीए कि "ऐ ख़ुदा इस क़ुर्बानी को जो मैं आज करूँगा, मेरे गुनाहों का कफ़्फ़ारा कर और मेरे दीन को पाक कर और बुराई को मुझसे दूर कर।" ईदगाह या मस्जिद में जो

नमाज़ पढ़ते हैं, वो नमाज़-ए-जुमा की तरह दो रकअत फ़र्ज़ हैं। इस के बाद ख़ुत्बा पढ़ा जाता है। मगर ख़ुत्बा मुंदरिज-ए-ज़ेल से मालूम होगा कि चार और रकअतें पढ़नी मुस्तहब हैं।

ख़ुत्बा ईद-उल-अज़हा

بسم اللّٰہ الرحمٰن الرحیم

ख़ुदाए रहमान व रहीम के नाम से शुरू करता हूँ।" "अल्लाहु-अकबर" اللہ اکبر अल्लाह बड़ा है। सिवा ख़ुदा के और कोई माबूद नहीं। ख़ुदा बड़ा है और सब तारीफ़ के लायक़ है। वो पाक है। दिन रात हमें उस की सताइश करनी चाहीए। ना उस का कोई साझी है, ना कोई उस के बराबर है। सब तारीफ़ उसी को साबित है। पाक ज़ात उसी की है, जिसने अमीरों को सख़ावत दी है। जो आक़िलों को क़ुर्बानी मुहय्या करता है। वो बड़ा है। कोई उस के बराबर नहीं। सब सताइश का वही सज़ावार है। सुनो मैं शहादत देता हूँ कि ख़ुदा के सिवा कोई ख़ुदा नहीं। वो अकेला है। कोई उस का साझी नहीं। इस अम्र की शहादत ऐसी मुनव्वर है, जैसे फ़ज्र का मुत्ला`अ (बाख़बर) और ऐसी रोशन है, जैसे ईद का मुतबर्रिक रोज़। मुहम्मद अरबी उस के बंदे हैं, जिन्होंने उस का पयाम पहुंचाया। मुहम्मद अरबी पर और उनकी औलाद पर और उनके अस्हाब पर ख़ुदा की रहमत हो। (जीव)

ऐ मुसलमानों की जमाअत तुम सभों पर जो मौजूद हो हमेशा ख़ुदा की रहमत हो। ऐ ख़ुदा के बंदो सबसे पहले हम पर ये फ़र्ज़ है कि ख़ुदा से डरें और मेहरबान हूँ। ख़ुदा ने फ़रमाया है "मैं उनके साथ हूँगा जो मुझसे डरते हैं और मेहरबान हैं।" ऐ ख़ुदा के बंदो जान लो कि ईद के दिन ख़ुशी करनी पाकों और नेकों की पहचान है। ऐसों का मर्तबा बहिश्त दार-उल-क़रार में बुलंद होगा। ख़ुसूसुन हश्र के दिन उन्हें इज़्ज़त व मर्तबा हासिल होगा। उस रोज़ नादानी के काम मत करो। ये लाहो व लअब का वक़्त नहीं है। आज के दिन ख़ुदा की तारीफ़ (तस्बीह) करनी चाहीए। कलिमा, तक्बीर और तहमीद पढ़ो। ये बड़े तहवार का और ईद क़ुर्बानी का रोज़ है। अब तुम तक्बीर तशरीक़ पढ़ो। ख़ुदा बड़ा है, ख़ुदा बड़ा है, ख़ुदा के सिवा और कोई ख़ुदा

नहीं। ख़ुदा बड़ा है, ख़ुदा बड़ा है, सब तारीफ़ उसी को साबित है। अर्फ़ा की सुबह से हर फ़र्ज़ रकअत के बाद तकबीर अलतशरीह (تکبیرا لتشریح) पढ़नी मुस्तहब है।

अगर कोई औरत हो कि उस का इमाम मर्द हो या कोई मुसाफ़िर हो कि उस का इमाम मुक़ीम हो यानी सुकूनत मुस्तक़िल रखता हो तो उसे भी ये तक्बीर पढ़नी चाहीए और यौम ईद की नमाज़-ए-अस्र तक हर नमाज़ के वक़्त तक्बीर पढ़नी चाहीए। क्योंकि अय्याम-ऊल-तशरीक़ 3 दिन है। (सफ़ा 231) चंद मुहद्दिसों की राय इस बाब में नूर उल हिदाया जिल्द 4, सफ़ा 61 में मुंदरज है। अगर इमाम तक्बीर पढ़ना भूल जाये तो मुक़तदी को नहीं छोड़नी चाहीए। ऐ ईमान वालो जान लो कि हर आक़िल जो साहब निसाब है यानी 52 रुपये उस के पास हैं, उसे क़ुर्बानी करनी चाहीए। मगर शर्त ये है कि सरमाया सिवाए उस के सवारी, लिबास, हथियारों, असास-उल-बैत और ग़ुलामों के हो। हर शख़्स को अपने नाम की क़ुर्बानी वाजिब है, लेकिन अपनी औलाद के नाम पर वाजिब नहीं है।

एक बकरा या एक मेंढा या एक गाय सात आदमी पीछे क़ुर्बान करनी ज़रूर है और ये भी ज़रूरी है कि क़ुर्बानी का जानवर काना या अंधा या लंगड़ा या दुबला ना हो। अगर तुम फ़र्बा जानवर ज़ब्ह करोगे तो वो तुम्हारे ख़ूब काम आएगा और पुल सिरात से उतार ले जाएगा। ऐ मोमिनो नबी अरबी ने इस तरह फ़रमाया है कि क़ुर्बानी को अपने हाथों से ज़ब्ह करो कि ये सुन्नते इब्राहिम अलैहिस्सलाम की थी। किताब ज़ाद उल तकवा में आया कि ईद-उल-फित्र और ईद-उल-अज़हा के दिन ईद की नमाज़ फ़र्ज़ के बाद चार रकअत नफ़्ल भी पढ़नी चाहीऐं। अव्वल रकअत में सुरह फ़ातिहा के सूरतुल आला سورۃ الاعلیٰ (सूरत 87) दूसरी रकअत में सूरतुल शम्श سورۃ الشمس (सूरत 91) तीसरी में सूरतुल अज़हा سور ۃ الاضحیٰ (सूरत 93) और चौथी में सूरत इख़्लास سورۃ اخلاص (सुरह 112) पढ़ो।

ऐ ईमान वालो अगर तुम ऐसा करोगे तो ख़ुदा तुम्हारे पच्चास बरस के अगले पिछले सब गुनाह माफ़ करेगा। इन सूरतों के पढ़ने में इतना सवाब है, जितना कि उन तमाम किताबों के पढ़ने में जो ख़ुदा ने नबियों पर नाज़िल

की हैं। ख़ुदा करे कि हम भी उनमें शामिल हों जिन्हें उसने क़ुबूल किया है। जो उस की शरीअत पर अमल करते हैं, जिनकी आरज़ू आख़िरत के दिन बर आएगी, क़ियामत के दिन ऐसे लोगों को कुछ अंदेशा और इन्साफ़ के दिन इम्तिहान का कुछ ख़ौफ़ ना होगा। सब किताबों से बेहतर क़ुरआन मजीद है। ऐ ईमान वालो ख़ुदा हमें और तुम्हें क़ुरआन शरीफ़ के वसीले से हमेशा की बरकत अता फ़रमाए। इस की आयतें हमारी राहनुमा हों और ख़ुदा का ज़िक्र जो इस में दानाई के साथ है हम को राह रास्त पर चलाए। ख़ुदा से आरज़ू है कि सब ईमान वालों की (मर्द हों या औरत) बख़्शिश करे। ऐ ईमान वालो ख़ुदा से मग़फ़िरत माँगो। दर-हक़ीक़त ख़ुदा ग़फ़ूर व रहीम, बख़्शने वाला, मेहरबान, अबदी बादशाह, रहमान और रहमत वाला है। ऐ ईमान वालो ख़ुत्बा तमाम हुआ। हम सभों को आरज़ू है कि ख़ुदा की रहमत व सलामती मुहम्मद अरबी मुस्तफ़ा पर रहे।

फिर नमाज़ी अपने घरों को आकर क़ुर्बानी करते हैं। क्योंकि हर मुसलमान को इस ईद का मानना और एक जानवर अपने वास्ते क़ुर्बान करना वाजिब है। अगर जानवर की ख़रीद में क़र्ज़ लेने की ज़रूरत हो तो भी अंदेशा ना चाहीए, क्योंकि किसी तरीक़ से ख़ुदा उस की मदद करेगा कि क़र्ज़ अदा हो जाएगा। अगर ऊंट ज़ब्ह किया जाये तो चाहीए कि पाँच बरस से कम का ना हो और अगर मेंढा या गाय हो तो अक़ल्ल (निहायत कम) मर्तबा दूसरे बरस में हो और अगर बकरा हो तो छः माह से कम का ना हो। इन सब जानवरों में से किसी में कोई ऐब या नुक़्सान किसी क़िस्म का ना हो। ये सुन्नत है कि घर का बड़ा अपने हाथ से ज़ब्ह करे और अगर किसी सबब से मुतअज़्ज़िर (मुश्किल) हो तो क़स्साब से ज़ब्ह करा ले। लेकिन इस हालत में इतना ज़रूर है कि जब क़स्साब ज़ब्ह करता हो तो उस के हाथ पर अपना हाथ रख ले।

अगर ऊंट क़ुर्बान किया जाये तो उस का मुँह क़िब्ले की तरफ़ होना चाहीए। जानवर की अगली टांगें बांध कर ज़ब्ह करने वाले को इस के दाएं जानिब खड़ा होना और ऐसे ज़ोर से इस के गले पर छुरी फेरनी चाहीए कि जानवर फ़ौरन गिर पड़े और किसी तरह ज़ब्ह करना दुरुस्त नहीं। और जानवरों को भी इसी तरीक़ पर ज़ब्ह करना चाहीए और ज़ब्ह करने से ऐन

क़ब्ल क़ुरआन की ये आयत पढ़े "तू कह मेरी नमाज़ और क़ुर्बानी और मेरा जीना और मरना अल्लाह की तरफ़ है। उस का कोई शरीक नहीं और भी मुझको हुक्म हुआ और मैं सबसे पहले हुक्मबरदार हूँ।" (सुरह अनआम 6:163) ज़ब्ह करने वाला इस आयत के साथ इतना और कहता है اللھم منک والیک.بسم اللّٰہ اللّٰہ اکبر "ऐ मेरे अल्लाह तुझ ही से और तेरी तरफ़ से है। ख़ुदा के नाम पर ये करता हूँ, ख़ुदा सबसे बड़ा है" और जब ज़ब्ह कर चुकता है तो कहता है اللھم تقبل منی "ऐ मेरे अल्लाह तू इसे मेरी तरफ़ से क़ुबूल कर।" अव्वल इस से घर के वास्ते खाना तैयार किया जाता है। बाद उस के क़राबतियों और पड़ोसीयों मुहताजों को कुछ तक़्सीम किया जाता है।

हर शख़्स को पीछे एक जानवर की क़ुर्बानी के बड़ा सवाब है, लेकिन चूँकि इस में बड़ा सर्फ़ (खर्च) पड़ता है और हर कोई इस का मुतहम्मिल (बर्दाश्त करने वाला) नहीं हो सकता। इस वास्ते सब घर के वास्ते एक ही जानवर ज़ब्ह करना जायज़ है। हालत मज्बूरी में बहुत से लोग शरीक हो कर सब के वास्ते एक जानवर की क़ुर्बानी करें तो जायज़ है, लेकिन कुल शरीकों की तादाद 70 से हरगिज़ मुतजाविज़ नहीं होनी चाहीए और बाअज़ रिवायत के मुताबिक़ सात से ज़्यादा शरीक नहीं होनी चाहीऐं। इस ईद को सब मुसलमान जहां कहीं हों, ज़रूर ही मानते हैं। बक़रईद और ईद-उल-फित्र दोनों को ईदैन (मुसलमानों के दो बड़े तहवार) कहते हैं। जिस मुल्क में मुसलमान ईदैन को नहीं मान सकते, वो मुल्क फ़ील-फ़ौर दार-उल-हरब (लड़ाई का घर) हो जाता है और हर मुसलमान पर फ़र्ज़ होता है कि इस मुल्क के काफ़िर हुक्काम पर जिहाद करें।

मुसलमानों के ख़ास तहवार यही हैं। मगर बाअज़ रसूम जो हनूद से आई हैं, उनमें से एक ये भी है कि हिन्दुस्तान के मुसलमान बुज़ुर्गों के मज़ारों को दूर दूर से जाते हैं और मेला वग़ैरह उनके नाम पर करते हैं। सुन्नीयों में फ़िल-हक़ीक़त सिर्फ दो तहवार हैं, बक़रईद और ईद-उल-फित्र। लेकिन अब बहुत से और भी होने लगे हैं जिनमें से बाअज़ की तफ़्सील में बयान कर चुका हूँ। अब सिर्फ उन चंद तहवारों का नाम बताऊँगा जो हिन्दुस्तान से मख़्सूस हैं। "पीर" का लक़ब जो बुज़ुर्ग व दीनदार मुसलमान को दिया जाता

है हम-मअनी हनूद (हिन्दू) के "गुरु" के है। जो कोई दीनदार होना चाहता है तो किसी "पीर" हादी तरीक़त को इख़्तियार करता है।

वली शायर कहता है साया की मानिंद अपने पैर के नक़्श-ए-क़दम पर चल। वफ़ात के बाद पीरों को "वली" कहते हैं। पीरों की हीने-हयात (जीते जी) में अक्सर लोग उनके पास तावीज़ गंडों के वास्ते और दुआ कराने को जाया करते हैं। दिल्ली के क़ब्रिस्तान को दरगाह और मज़ार (ज़ियारत की जगह) और रौज़ा (बाग़) कहते हैं। जिन लोगों का ये पेशा है कि क़ब्रों पर क़ुरआन और नमाज़ें पढ़ा करते हैं, उन्हें "रौज़ा ख़वाँ" कहते हैं। ये दस्तूर हो गया है कि लोग मज़ारों पर बकस्रत जाते हैं और फूल, मिठाई और खाना फ़ातिहा देकर चढ़ाते हैं। मामूल ये है कि फ़ातिहा वली के वास्ते उस के नाम पर होती है। ये नहीं है कि उसी की ज़ात ख़ास को होती हों। ऐसी ज़ियारतों की तामीर को ज़मीन देना और जागीर इनायत करना बड़े सवाब का काम है। बहुत से पीरों का ज़िक्र जो उनके बारह मासे हैं और अफ़्सोस की आराइश-ए-महफ़िल में आया है। ज़ेल के इंतिख़्राब से रसूम मुरव्वजा का हाल मालूम होगा।

(1) मदार का मेला

कहते हैं कि बद्र उद्दीन क़ुतुब अलमदार इमाम हुसैन की औलाद से थे। मुक़ाम हलब वाक़ेअ असाए कोचक में क़रीब 1050 ई॰ के पैदा हुए और मुहम्मद अरबी से इजाज़त पा कर हब्स दम करने लगे। इसी सबब से उनकी उम्र ज़्यादा हुई। कहते हैं कि उनके 1444 बेटे थे और तीन सौ बरस से ज़्यादा हो कर वफ़ात पाई। मगर जो लोग माक़ूल पसंद हैं, वो कहते हैं कि बेटों से मुराद मुरीद हैं जो अज़राह इरादत बमंज़िला बेटों के थे। उम्र की दराज़ी का सबब इस तरह बताते हैं कि चूँकि हर आदमी को दम लेना पड़ता है, जो कोई देर में दम लेता है उस की उम्र ज़्यादा हो जाती है। वो मुद्दतों जीता है। जवान मौसूफ़ मेले के ज़िक्र में लिखता है कि मदार की क़ब्र मकुनपूर में कानपूर से क़रीब 40 मील के फ़ासिले पर है। जमादी अव्वल की सत्रहवीं को गांव में बड़ा मेला लगता है और ख़ूब रोशनी होती है। आग जलाते हैं और इस के आस-पास फ़क़ीर नाचते और "दम मदार दम मदार"

कह कर ख़ूब उछलते और कूदते हैं। फ़क़ीरों का एक गिरोह यानी "मदार शाह" को अपना पीर जानते हैं। दूर दराज़ मुक़ामात में जहां-जहां कि शाह मदार को मानते हैं। उनके नाम का इल्म निकालते हैं और और रसूम जोवन रोज़ों (दिनों) में मुरव्वज हैं, किया करते हैं। रातों को लोग उनके नाम पर जागते हैं।

(2) मुईन उद्दीन चिश्ती का मेला

इस बुजुर्गवार की क़ब्र अजमेर में है। ये सय्यद थे। हुसैन इब्ने अली की औलाद से जो सजसनां में क़रीब 537 हिज्री के पैदा हुए थे। जब पंद्रह बरस को पहुंचे तो उन के बाप ने क़ज़ा (इंतिक़ाल) की। चंद ही मुद्दत-बाद इस के एक मशहूर दरवेश इब्राहिम कंदज़ी के मुरीद हो कर तरीक़त की जुस्तजू करने लगे यानी मार्फ़त ईलाही के पोशीदा तरीक़ को ढूढ़ने लगे। 20 बरस के सन में अब्दुल क़ादिर जीलानी से मज़ीद हिदायत पाई। जब शहाब उद्दीन नूरी ने हिन्दुस्तान को फ़त्ह कर लिया तो इस के बाद मुईन उद्दीन ने अजमेर में गोशा-नशीनी इख़्तियार की और 636 हिज्री में बहालत तक़द्दुस वहां ही क़ज़ा (वफात) की। दूर-दूर से लोग उनके मज़ार पर जाते हैं। शहनशाह व रियाया ख़ास व आम सब बा यक दीगर इन बुजुर्गवार की ताज़ीम में सबक़त ले जाना चाहते हैं। अकबर ने भी हालाँकि सुन्नीयों के नज़्दीक बेदीन था, इस बुज़ुर्ग की ज़यारत को गया था और मिन्नत मानी थी कि मेरे लड़का हो और वो मुअम्मर हो। हिंदू भी इस ज़ियारत को आते हैं। उनमें अमीर लोग अक्सर चढ़ावे चढ़ाते हैं।

(3) सालार मसूऊद ग़ाज़ी

इस बुजुर्गवार की क़ौमीयत तहक़ीक़ नहीं है। बाअज़ कहते हैं कि हुसैनी सय्यद थे और बाअज़ कहते हैं कि पठान थे, मगर शहादत पाई थी। इन की ज़ियारत मुल्क ऊदा में है। इफ़्सोस ने वहां की ज़यारत करने वालों का हाल इस तरह बयान किया है। साल में एक मर्तबा तमाम अज़ला से लोग बकस्रत जमा होते हैं। सुर्ख़ झंडे होते हैं और हज़ारों ढोलक पर थाप पड़ती है। जेठ (मई जून) के पहले इतवार को उर्स होता है। लोगों के एतिक़ाद में ये उनकी

शादी का दिन था। कहते हैं कि जब शहीद हुए थे, शादी का लिबास पहने थे। इसी एतिक़ाद से एक रोग़नगर साकिन रुदौली ने चारपाई, पीढ़ी और आवर लवाज़म शादी के एक मर्तबा इस मज़ार पर उर्स के दिन भेजे थे। चुनान्चे उस की औलाद में अब तक यही दस्तूर चला आता है। अवामुन्नास गिर्दो नवाह के ज़यारत के दरख़्तों में रस्से डाल कर बाअज़ सीधे और बाअज़ उल्टे लटकते हैं और तरह तरह के रूप बनाते हैं। इस उम्मीद पर कि मुराद पूरी होगी। हिंदू इस बुज़ुर्ग की बड़ी ताज़ीम करते हैं और मुसलमान इस सबब से मुक़द्दस जानते हैं कि उन्होंने बुत-परस्त हनूद को क़त्ल किया था और इसी सबब से ग़ाज़ी (जंग करने वाला) का ख़िताब पाया था। हिंदू समझते हैं कि ये भी ख़ुदा की क़ुदरत थी कि उन्होंने ऐसी शुजाअत के काम किए।

(4) बैरा यानी ख़्वाजा ख़िज़र का मेला

मिस्टर डी टासी ने लिखा है कि "ख़्वाजा ख़िज़र" ऐसे शख़्स हैं कि उनकी निस्बत लोगों में राय का इख़्तिलाफ़ है। बहुतेरे उन्हें हारून का पोता "फ़नयास" क़रार देते हैं और बाअज़ के नज़्दीक "इल्यास नबी" को "ख़िज़र" कहते हैं। तुर्क समझते हैं कि "जॉर्ज वली" का नाम ख़िज़र है। बाअज़ इन मुख़्तलिफ़ आरा (रायों) को मुत्तफ़िक़ करने को कहते हैं कि एक ही रूह ने तीनों में हलूल किया था। बहर नहज मुसलमानों के नज़्दीक ख़िज़र वो शख़्स हैं जिन्हों ने आब-ए-हयात का चशमा पाया था और वही उस के मुहाफ़िज़ हैं। लोग उन्हें बड़ा नबी और समुंद्रों का निगहबान जानते हैं। पस इन ख़ूबीयों के सबब से उनके नाम का एक मेला होता है। जो इन ने इस तरह बयान किया है कि जिन लोगों की मुरादें पूरी होती हैं, वो भादों (अगस्त व सितम्बर) के महीने में ख़्वाजा ख़िज़र के नाम की नाव छोड़ते हैं और अपनी वुसअत के मुवाफ़िक़ दूध और दलिया चढ़ाते हैं।

इस महीने के हर जुमे को और बाअज़ मुक़ामात में हर जुमेरात को पुजारी बेड़ा तैयार कर के रात को दरिया के किनारे पर ले जाते हैं और बहुत सी रसूम होती हैं। छोटे बड़े सब चिराग़ और मशालें रोशन कर के अपनी अपनी नज़रें चढ़ाते हैं और कुछ तैरने वाले मिलकर बेड़ी को दरिया के

बीच ले जाते हैं और कभी ऐसा होता है कि चंद छोटे छोटे बेड़े चिकनी मिट्टी के बना कर दरिया में डालते हैं और चूँकि हर बेड़े पर चराग़ रौशन होता है इस वास्ते उन सब के देखने से अजब कैफ़ीयत पैदा होती है। कहते हैं कि जज़ाइर मालदीव के मुसलमान हर साल एक नाव बना कर और उस में मसालिहा, लोबान और ख़ुशबूदार फूल भर कर समुंद्र के मालिक के नाम पर कि मुराद इस से बिलयक़ीन "ख़िज़र" हैं, समुंद्र में छोड़ देते हैं। हवा जहां चाहती है, उड़ा ले जाती है और जो फ़ातिहा ख़िज़र के नाम पर पढ़ते हैं, इस का मतलब ये है कि ख़्वाजा ख़िज़र यानी बड़े नबी इल्यास के तुफ़ैल से सफ़ाई क़ल्ब (दिल) और बरकत के वास्ते उस से दुआ करता हूँ। जो सब आदमीयों की मुरादें सुनता है और तमाम बुराईयों से बचाता है।

(5) पीर दस्तगीर साहब की नयाज़

नयाज़ रबी-उल-सानी की ग्यारवें को होती है। सुन्नी इस बुज़ुर्ग की बड़ी ताज़ीम करते हैं। इन के नाम निनान्वें से कम नहीं हैं। बग़दाद में इस बुज़ुर्ग की क़ब्र है। रबी-उल-सानी की दसवीं तारीख़ को एक रस्म जिसे "संदल" कहते हैं, हुआ करती है और दूसरे रोज़ यानी ग्यारवें को उर्स होता है। उर्स के दिन मौलूद (चंद हालात मुताल्लिक़ विलादत), क़सीदे, दुरूद और फ़ातिहा उनके नाम पर पढ़ते हैं और मिन्नतें मानते हैं और जब कोई ख़ास वबा फैलती है, जैसे हैज़ा वग़ैरह तो इनके नाम का अलम निकालते हैं और खाने की क़िस्म से चढ़ावे चढ़ाते हैं। खाने पर फ़ातिहा दी जाती हैं। कहते हैं कि पीर साहब अपने मुरीदों को ख़्वाब में नज़र आते हैं और हिदायतें दिया करते हैं। जाफ़र शरीफ़ क़ानून इस्लाम का मोअल्लिफ़ अपना ज़ाती तजुर्बा इस बाब में इस तरह बयान करता है कि जब कभी हाजत के वक़्त मेरे दिल पर कुछ तक्लीफ़ होती तो मैं पीर साहब के बताए नाम पढ़ कर ख़ुदा तआला से ये इल्तिजा करता कि पीर साहब के तुफ़ैल से और अपनी रहमत से मेरी हाजत बरला। तो ग़ौस उल आज़म दस्तगीर रहमतुल्लाह अलैह ख़्वाब में ज़ाहिर हो कर मेरी तक्लीफ़ें दूर करते और हिदायतें फ़रमाते। सय्यद अहमद कबीर जो रफ़ाई दरवेशों के बानी हैं, इस बुज़ुर्ग के बिरादरज़ादा थे।

(6) क़ादिर वली साहब की नयाज़

जुनूबी हिन्दुस्तान के लोग इन्हें बड़ा बुज़ुर्ग जानते हैं। जमादी उल सानी की दसवीं तारीख़ इनका उर्स होता है। नाग पट्टन से 4 मील शुमाल को एक क़स्बा नागौर वाक़ेअ है। वहां इस बुज़ुर्ग का मज़ार है। संदल की रस्म और रसूम वही हैं जो ऊपर मज़्कूर हुईं। मल्लाह और नाख़ुदा इन्हें अपना मुरब्बी जानते हैं। मुसीबत के वक़्त इस तरह मिन्नत मानते हैं कि अगर बख़ैर किनारे पर पहुंच जाएं तो क़ादिर वली के नाम पर फ़ातिहा पढ़ेंगे। अवामुन्नास को इन बुज़ुर्ग की करामतों पर बड़ा एतिक़ाद है। चुनाचे क़िस्सा ज़ेल इनकी निस्बत लोग अक्सर बयान करते हैं :-

किसी जहाज़ में ऐसा सुराख़ हो गया कि क़रीब था कि डूब जाये। नाख़ुदा ने मिन्नत माअनी कि ऐ क़ादिर वली अगर ये सुराख़ बंद हो जाये तो मैं इस कुल जहाज़ की क़ीमत आपके नाम पर ख़ैरात करूँगा। इत्तिफ़ाक़ से इस वक़्त पीर साहब हजामत बनवा रहे थे, लेकिन अज़राह करामत इस बात से आगाह हो कर कि नाख़ुदा मारज़ ख़त में है। एक आईना जो इस वक़्त उनके हाथ में था ऐसा फेंका कि इस जहाज़ के नीचे सुराख़ पर जा के चिपट गया जिससे वो जहाज़ डूबने से बचा और बख़ैरीयत किनारे पर पहुंचा। ग़रज़ कि इस नाख़ुदा ने मुनासिब वक़्त पर वो मिन्नत अदा की और जब बुज़ुर्ग मौसूफ़ ने इस नाख़ुदा से कहा कि आईना हज्जाम को लौटा देना चाहीए तो उसने मुतअज्जिब हो कर कहा कि मैंने नहीं जानता कि वो कैसा आईना है, तो इस बुज़ुर्ग ने कहा कि जहाज़ के सुराख़ पर जाकर देखो। चुनान्चे नाख़ुदा ने वैसा ही किया और उस वक़्त जाना कि इस तरह उस का जहाज़ बुज़ुर्ग मौसूफ़ की मदद से बचा। इस से ज़ाहिर होता है कि हनूद की बातें किस तरह इस्लाम में पहुंचीं और निज़ ये के हनूद (हिन्दू) भी इन बुज़ुर्गों की बड़ी ताज़ीम करते हैं।

कहते हैं कि क़ादिर वली एक फ़क़ीर था जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों अपना पीर गरदानते हैं। इस से ये पाया जाता है कि उस की बातें दोनों के मुनासिब होती थीं। बाद वफ़ात के एक छोटी सी मस्जिद उस के मज़ार के क़रीब बनाई गई। रफ़्ता-रफ़्ता उस वली की शौहरत बढ़ गई और

एक हिंदू राजा ने ये मिन्नत मानी कि अगर मेरे बेटा पैदा हुआ तो मस्जिद को बढ़ा कर ख़ूब आरास्ता करूँगा। उस की मुराद पूरी हुई और वो ख़ुशनुमा इमारत जो बिलफ़अल है, वो हिंदू राजा ने बनवाई है और अब ये मज़ार ऐसा मशहूर हो गया है कि वहां के मुसलमान कहा करते हैं कि मक्का के बाद इस का मर्तबा है और जिस सबब से कि मुद्दत गुज़री हिंदू राजा ने चढ़ावा चढ़ाया था। इसी सबब से अब भी बहुतेरे लोग मिन्नतें मानते हैं। जुमेरात की शाम को जो मुसलमानों के सब्त का शुरू है, हनूद (हिन्दू) की औरात इस मज़ार पर बकस्रत जाती हैं। जिस रोज़ सालाना तहवार ख़त्म होता है, उस रात को नाग पट्टन से ताबूत निकालते हैं और बड़े बड़े चढ़ावे नागौर महल से इस मस्जिद को भेजे जाते हैं। इस तरह से हनूद का ताल्लुक़ इस तहवार से हमेशा क़ायम रहता है। इसी तरह बहुत से वली और पीर हैं जिनकी यादगार में बहुतेरी तोहम आमेज़ रसूम हुआ करती हैं। लेकिन इस्लाम में दरगाह पर जाना कुछ ज़रूरी नहीं।

तमाम मुल्क में जाबजा इस क़िस्म की दरगाहें हैं, जहां हर साल मैले तहवार हुआ करते हैं। मगर ऐसी दरगाहों की मज़ीद तफ़्सील ग़ैर ज़रूरी समझ कर क़लम अंदाज़ करता हूँ और अपने मज़्मून को इसी पर ख़त्म करता हूँ। अबवाब मासबक़ में मैं ने अक़ाइद इस्लामी की और उस के अहकाम की तफ़्सील की है। अब मैं चाहता तो ये बयान करता कि इस्लाम को यहूदी और ईसाई मज़्हब से क्या ताल्लुक़ है और किन किन बातों में मुख़्तलिफ़ है और मज़्हब ईस्वी में कौन सी ख़राब बातें थीं, जिनके इख़्तिलाफ़ का इक़रार इस्लाम ने किया है। अगर मैं चाहता तो ये भी बयान करता कि लोगों पर और लोगों के अख़्लाक़ पर और नीज़ जुदागाना हर शख़्स के चलन रवैय्ये पर और मुल्क पर इस मज़्हब से क्या असर पैदा हुआ, लेकिन ये मज़ामीन मुझे मेरे मतलब से बहुत दूर डालते हैं। मैं इसी पर इक्तिफ़ा करना बेहतर जानता हूँ कि मुसलमानों के अक़ाइद को उनकी किताबों से बयान कर दिया। अब पढ़ने वालों के इख़्तियार में है कि इस मज़्हब से मुक़ाबला कर के अपने वास्ते नतीजा निकालें, फ़क़त।

तमाम शुद